Rajasthan Journal of Sociology

ISSN 2249-9334

Volume 10 October 2018

Bilingual Journal of Rajasthan Sociological Association

Rajasthan Sociological Association

(Regd. No. 216/1973-74)
R.S.A. Website: www.rsaraj.org
Registered Office: Department of Sociology, University of Rajasthan, Jaipur.

Office Bearers

President: S. C. Rajora (Chittorgarh)
Vice President: Meenakshi Meena (Jodhpur)
Vice President: Ashutosh Vyas (Chittorgarh)
Secretary: Tribhu Nath Dubey (Kota)
Joint Secretary: Lalit Kumawat (Udaipur)
Treasurer: Mahesh Nawria (Jaipur)

Executive Members

Anant Vijaya Soni (Jaipur), Deepa Mathur (Jaipur), Manee Ram Meena (Udaipur), Manju Kumari (Jaipur), Paresh Dwivedi (Udaipur), Ruchika Sharma (Jaipur), Sharmila Kumari (Kota), Supriya Seth (Kota)

Editorial Board

Chief Editor: Naresh Kumar Bhargava
Co-Editor : Mridula Trivedi
Associate Editors : Manoj Rajguru, Shruti Tandon, Supriya Seth, Mridula Bairwa,
Associate Managing Editor : Lalit Kumawat

Editorial Advisory Committee

Mohan Advani (Udaipur), Aruna Bhargava (Jaipur), Rajeev Gupta (Jaipur), S.P. Gupta (Jodhpur), Shyam Lal Jaidia (Jaipur), Gunjeet Kaur (Kota), Sanjay Lodha (Udaipur), Indu Mathur (Jaipur), B.K. Nagla (Rohtak), Monika Nagori (Udaipur), S.C. Rajora (Chittorgarh), C.L. Sharma (Udaipur), K.L. Sharma (Jaipur), S.L. Sharma (Jaipur), Madhu Sudan Trivedi (Udaipur), Ashutosh Vyas (Chittorgarh).

Rajasthan Journal of Sociology is a refereed Journal of Rajasthan Sociological Association. It is an annual publication, published in October every year.

All rights are reserved except for brief quotations in scholarly works, No part of journal may be produced without permission of Rajasthan Sociological Association.

As per Constitution of the Rajasthan Sociological Association, all life members are entitled to receive a free copy of the journal.
Subscription rates: Individual Rs. 150, Institutional Rs. 350.

Rajasthan Journal of Sociology

Bilingual Journal of Rajasthan Sociological Association

राजस्थान जर्नल आफ सोश्योलॉजी

राजस्थान समाजशास्त्रीय परिषद् की द्विभाषीय पत्रिका

Volume 10 **October 2018**

संपादक का कथनः दस वर्ष **5**
नरेश भार्गव

Ethnographic Discourse on Tribals of Odisha **8**
Bibhu K. Mohanty

Impact Analysis of Health and Sanitation Initiatives in India **14**
Priyanka Mathur

Homosexuality - The Socio-Legal Perspective **19**
Saloni Ratnu & Meenal Seth

Globalization and Higher Education in India **26**
Shruti Tandon

देखभाल और देखभाल के कार्य का वैश्विक समाजशास्त्र **35**
ब्रिगट अलन हैकर
अनुवादकः नरेश भार्गव

समाजशास्त्रीय पाठ्य पुस्तकेंः तुलनात्मक विश्लेषण **39**
मधुसूदन त्रिवेदी

गणगौरः परंपरा और सांस्कृतिक स्वीकृति का एक प्रतीक **47**
श्याम एस. कुमावत

राजस्थान के ग्रामीण नेतृत्व प्रतिमानों के अध्ययन की पद्धतिशास्त्रीय समीक्षा (ओ.पी. शर्मा के योगदान के विशेष सन्दर्भ में) **58**
परेश द्विवेदी'

दक्षिणी राजस्थान की जनजातियों में दागना प्रथा **66**
प्रियंका चौबीसा

युवा और जेन्डर भेदभाव **72**
अनुकृति राव

बाल विकास के लिए कार्यरत संस्थाएं : एक समीक्षा **84**
वृतिका गुहिल

सिद्दी जनजाति के सांस्कृतिक पक्ष **92**
आरसी प्रसाद झा

महिला प्रस्थिति एवं स्तरीकरणः समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य **101**
महेश नावरिया

Discussion on Sociology in Rajasthan

Social Research and Sociology for Rajasthan **101**
Suresh C. Rajora

Sociology in Rajasthan: Status of Teaching and Research **112**
S.L. Sharma

Sociology in Rajasthan - Relevant Issues **113**
Tribhu Nath Dubey and Supriya Seth

Making Sociology Relevant in Rajasthan **115**
Mohan Advani

राजस्थान में समाजशास्त्र के सम्मुख चुनौतियां **117**
राजीव गुप्ता

राजस्थान में समाजशास्त्र : मुद्दों की तलाश **121**
नरेश भार्गव

Book Reviews

Ashutosh Vyas: Sociological Analysis of MGNREGA **123**
Reviewed by Kirti Rajimwale

Maitrayee Chaudhuri and Manish Thakur (eds.): Doing Theory: Locations, Hierarchies and Disjunctions **125**
Reviewed by Tribhu Nath Dubey

B. S. Nagi and A. M. Khan: Research Skill Development in Social Sciences, Communication and Management **127**
Reviewed by Gaurav Nahar

Madhu Nagla: Sociology of Health and Medicine **128**
Reviewed by Supriya Seth

N.K.Bhargav(ed.): Analyzing social Change and Development in India **130**
Reviewed by Sudeshna Parija

Veena Dwivedi, Avnish Nagar: Gender Discrimination and Harassment of Women at Workplace 131
Reviewed by Manish Yadav

Mridula Bairwa: Blindness among Tribals 132
Reviewed by Anant Sharma

ज्योति गौतमः भारतीय समाज में जेन्डर संरचना 134
समीक्षकः मोनिका नागोरी

बरदी चन्द ऐरवालः अनुसूचित जातियों पर छात्रवृत्ति का प्रभाव 135
समीक्षकः सुमित्रा शर्मा

श्याम एस. कुमावतः सामाजिक विचारक एवं विचारधारा – कार्ल मार्क्स 137
समीक्षकः श्रुति टण्डन

श्रद्धांजलि

योगेश अटल (1937–2018): एक बौद्धिक यात्रा 140
अरुण चतुर्वेदी

Guidelines For Contributors 144

Rajasthan Sociological Association acknowledges with thanks the Indian Council of Social Science Research, New Delhi for providing publication grant for this journal.

Rajasthan Sociological Association

(Regd. No. 216/1973-74)
R.S.A. Website: www.rsaraj.org
Registered Office: Department of Sociology, University of Rajasthan, Jaipur.

Subscription Form

Name : .....

Name of Institution : .....

Full Postal Address : .....

E mail : .....

Telephone- Land Line : .....

Mobile

Payment Mode : .....

Cash : .....

Cheque / Draft : No.....Amount .....Date.....

Bank Details : .....

Signature

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

संपादक का कथनः दस वर्ष

नरेश भार्गव

राजस्थान जर्नल ऑफ सोश्योलॉजी का यह अंक अपने प्रकाशन के दस वर्ष पूर्ण कर रहा है। दिसम्बर 2009 में जब जर्नल का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था, तब इसके प्रकाशन का जिनको भार सौंपा गया था, उनमें एक अजीब रोमांस और रोमांच था। राजस्थान में समाजशास्त्र की किसी पत्रिका का प्रकाशन हो, यह इच्छा प्रभावी थी और ऐसी पत्रिका का प्रकाशन हो, ऐसा प्रयास हो भी रहा था। राजीव गुप्ता ने अपनी अध्यक्षता अवधि में इश्यूज एंड इनसाइट्स पत्रिका को प्रारम्भ करने का प्रयास किया था। पत्रिका दुबली–पतली जरूर थी, पर अवधारणात्मक और सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य से भरपूर थी। यद्यपि यह एक श्रेष्ठ प्रयास था, पर धनाभाव तथा अन्य कारणों से यह बहुत समय तक चल नहीं पाया। एक अंक के प्रकाशन के बाद ही इसे समाप्त होना पड़ा। शायद समाजशास्त्रियों का संगठन भी इतना मजबूत नहीं था, जो इसे संभाल सकता।

इसी के साथ एक समानांतर संगठन 'समाजशास्त्रीय हिंदी कार्य समिति' ने समाजशास्त्र विवेचन नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह अपने आप में संपूर्ण पत्रिका थी और स्थानीय स्तर पर समाजशास्त्र के अनेक लेखक इसके साथ जुड़े हुए थे। इस पत्रिका का कलेवर बड़े आकार का था और हिंदी के कई स्मरणीय लेख इसमें प्रकाशित हुए। पत्रिका के संपादक बदलते रहे, जिनका संबंध उनकी विशेषज्ञता से था। सी. एल. शर्मा, मोहन आडवानी, ऊषा अग्रवाल, रमाकान्त शर्मा, बी. के लवानिया, पत्रिका के संपादकों के कुछ नाम हैं। लेकिन पत्रिका का प्रकाशन संयुक्त केन्द्रित प्रकाशन था। यह पत्रिका अभी भी प्रकाशित हो रही है। वर्तमान में इसके संपादक चक्रपाणी उपाध्याय हैं। पत्रिका ने कई विशेषांक निकाले, जिनके संबंध समाजशास्त्र की कुछ विशिष्ट शाखाओं से थे। अपने अंकों के प्रकाशन के लिए यह संस्था अभी भी प्रयासरत है। शायद वित्तीय संकट इस पत्रिका के प्रकाशन को प्रभावित कर रहा है।

समाजशास्त्र की पत्रिका के प्रकाशन की इच्छा धीरे–धीरे और भी बलवती होती गई और पत्र प्रकाशन के ये प्रयास बराबर जारी रहे। सी. एल. शर्मा (अध्यक्ष) और एस.एल.शर्मा (सचिव) के कार्यकाल में जर्नल को प्रारंभ करने के प्रयास प्रारम्भ हुए। पहले अंक के संपादन–संचालन का कार्य नरेश भार्गव, मोहन आडवानी और मृदुला त्रिवेदी के संयुक्त प्रयासों से संभव हुआ। पत्रिका की संरचना द्विभाषीय आधार पर थी। अंग्रेजी और हिंदी के लेख संयोजित किए गए और अंक की रचना की गई। इसके बाद आज तक जर्नल के आगामी अंक प्रतिवर्ष लगातार प्रकाशित होते रहे हैं।

पहले अंक से ही संपादकीय भार नरेश भार्गव को सौंपा गया और वर्तमान अंक तक वे इस कार्यभार को संभाल रहे हैं। उनके साथ मोहन आडवानी, मृदुला त्रिवेदी, तुलसीराम आमेटा, प्रज्ञा जोशी और ललित कुमावत ने आयोजन में साथ दिया। परिपक्वता आने लगी, संजय लोढ़ा और अरुण चतुर्वेदी, एन. प्रसाद, एस. एल. दोषी, ज्योति सिढ़ाना आदि लेखकों की पंक्ति में शामिल हुए। पुस्तक समीक्षाओं का प्रारंभ भी इसी अंक से हुआ।

चौथे अंक से, मोहन आडवानी के परिषद् के अध्यक्ष चुने जाने के बाद, संपादक मंडल में कुछ और लोग जुड़े–त्रिभूनाथ दुबे, मनोज राजगुरू और बाद में श्रुति टंडन। कई अन्य लेखकों की रचनाएं प्रकाशित हुईं। हिन्दी तथा अंग्रेजी में नए लेखक उभरकर सामने आए। चौथे अंक से ही राजस्थान से बाहर के समाजशास्त्रियों ने भी इस जर्नल में लेखकीय योगदान प्रारंभ किया। जवाहर लाल नेहरू

विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और बिहार के कई विश्वविद्यालयों के लेखकों ने अपने लेख प्रकाशित करने के लिए भेजने आरंभ किए। मैत्रेयी चौधरी, के. एल. शर्मा, जी. राम और ऐसे ही कई लोगों के लेख प्रकाशन के लिए जर्नल को प्राप्त हुए। इस अंक से जर्नल ने अपना औपचारिक रूप लेना प्रारंभ किया और अपने स्वरूप में कई अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं के स्वरूप ग्रहण करने प्रारंभ किए।

आगामी वर्षों में जर्नल ने अपना कलेवर बदलना प्रारंभ किया। इसमें तीन प्रयास प्रमुख थे। अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्रीय पत्रिकाओं यथा – करेंट सोश्योलॉजी, इन्टरनेशनल सोश्योलॉजी तथा ऐसी ही अन्य पत्रिकाओं के अंग्रेजी लेखों के हिंदी अनुवाद का प्रकाशन। ऐसे प्रकाशनों के तीन उद्देश्य थे– पहला, राजस्थान में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की अंग्रेजी पत्रिकाओं के प्रकाशन और पठन–पाठन की सीमाएं थीं। अंग्रेजी का प्रसार कम था और शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की ऐसी अंतर्राष्ट्रीय रचनाओं पर पहुंच बहुत कम थी। पत्रिका के संपादकों ने यह निश्चय किया कि हिंदी पाठकों तक अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्रीय लेखन को पहुंचाने में जर्नल एक प्रमुख माध्यम की भूमिका निभा सकता है। प्रकाशित सामग्री का हिंदी अनुवाद किया जाए तथा पाठकों के लिए प्रकाशित किया जाए। प्रयोग सफल रहा। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित लेखन को अनुवाद कर जर्नल में प्रकाशित किया गया और इस प्रकाशन के माध्यम से हिंदी पाठकों को अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र भेंट किया गया। इसका लाभ भी मिला। बहुत से विद्यार्थी और शिक्षक उन प्रवृत्तियों का समर्थन करने लगे, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित हो रही थीं। यद्यपि इन लेखों का परिवेश अंग्रेजी तथा यूरोपियन था, पर समाजशास्त्र के भारतीय सन्दर्भ में पाठक उन परिवेशों को समझने लगे थे, जिन्हें अन्यथा वे समझ नहीं सकते थे। दूसरा, समसामयिक मुद्दों से युवा पाठकों को अवगत कराना तथा तीसरा, लेखन के अंतर्राश्ट्रीय स्तर से सभी पाठकों को परिचित कराना। इस परंपरा को जर्नल ने जारी रखा हुआ है। अभी भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लिखे समाजशास्त्रीय लेखों को प्रकाशित किया जाता है।

एक अन्य नवीनता जो जर्नल में जोड़ी गई, वह थी देश और विदेश के मूर्धन्य समाजशास्त्रीय लेखकों के साक्षात्कार। अब तक जर्नल में छः ऐसे समाजशास्त्रियों के साक्षात्कार प्रकाशित किए जा चुके हैं, जो देश–विदेश में अपने लेखन के लिए ख्याति प्राप्त हैं। योगेन्द्र सिंह, ए. एम. शाह, कमला गणेश, आंद्रे बेते, योगेश अटल, के. एल. शर्मा, डी. एन. धनाग्रे और ऐसे ही विशेषज्ञों के विचार बिन्दु जर्नल में प्रकाशित किए गए हैं। समाजशास्त्र के संबंध में ये सभी वार्ताएं गंभीर थीं और भारत के समाजशास्त्र की विशद् चर्चाएं भी। ये सभी साक्षात्कार गहन थे, और लेखकों की आंतरिक दृष्टि को पहचानने का प्रयास थे। कभी–कभी इन साक्षात्कारों को अंग्रेजी से हिंदी में भी अनुवाद करना पड़ता था। किसी भी समाजशास्त्री की बात पाठकों तक पहुंचने से रुकने न पाए, यह प्रयास इन साक्षात्कारों का था। स्वयं हिंदी समाजशास्त्रीय भाषा का विकास हो, यह भी भावना उस समय थी।

एक समस्या यह भी थी कि राजस्थान में कैसा समाजशास्त्र विकसित किया जाए। समाजशास्त्र पूर्वी भारत में मानवशास्त्र के साथ विकसित हुआ था। जनजनतीय लोग ऐसे लेखकों के नायक थे। यह संयोग था कि प्रारम्भिक समाजशास्त्री, मानवशास्त्री भी थे। ऐसे समाजशास्त्री इस विधा या मिश्रित विधा दोनों का ही प्रयोग करते थे। इसीलिए प्रारंभिक समाजशास्त्री इसी जनसंख्या की और आकर्षित हुए। बाद में बंबई और लखनऊ विचारधारा ने अपने क्षेत्र बनाने शुरु कर दिए। जर्नल ने अपने परिवेश में एक ओर तात्कालिक प्रसंगों की चर्चा की तो साथ ही उन संदर्भों को भी देखना प्रारंभ किया, जो प्रारंभिक थे। प्रसंगों के रूपान्तरण में कई नई विधाएं साथ में जुड़ती गईं। लेखक अनुभववादी लेखन के थे और अनुभव सिद्ध करने के लिए सांख्यिकी से भरे पड़े थे। यह प्रकृति आज भी है और बहुत से लेख, जो प्रकाशन के लिए आते हैं, सांख्यिकी से भरे होते हैं। लेखन की यह विधा वर्तमान की विधा है और जर्नल ने कभी ऐसे लेखों को बहिष्कृत नहीं किया है। जर्नल ने समाजशास्त्र की विधाओं के भिन्न स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

जर्नल ने राजस्थान के परिवेश पर भी अधिक ज़ोर दिया है। यह इसलिए कि राजस्थान के सामंती समाज और बदलते परिवेश, दोनों को ही समझना आवश्यक है। शायद यह क्षेत्रीय समाजशास्त्र की भावना से प्रेरित हो। सामंतवाद के संदर्भ में राजस्थानी समाज क्या था और अब क्या है? यह समझना महत्वपूर्ण है। राजस्थान के विभिन्न भागों में जाति और वर्ग तथा तत्संबंधी संरचनाएं क्या हैं ? यह एक बड़ा प्रश्न है और शायद राजस्थान के समाजशास्त्र की रचना स्वयं राजस्थान में हो, यह राजस्थान के समाजशास्त्र को समझाने के लिए आवश्यक भी है। जर्नल राजस्थान का इतिहास नहीं बताता अपितु समाज और सामाजिकता को प्रस्तुत करता है। सामाजिक विभिन्नताओं के संदर्भ भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

पिछले पांच वर्षों में राजस्थान के कई समाजशास्त्रियों का निधन हुआ। ये समाजशास्त्र के विषद लेखक भी थे। राम आहूजा, बृजराज सिंह चौहान और योगेश अटल इनमें प्रमुख थे। योगेश अटल का जब जर्नल का संपादक मंडल साक्षात्कार लेने गया था, तो उनके हर्ष के साथ साक्षात्कार मंडल भी हर्षित हुआ। योगेश अटल और के. एल. शर्मा ने जर्नल के वर्तमान कलेवर पर न केवल सकारात्मक टिपण्णी की, अपितु साथ ही जर्नल का भविष्य का कलेवर कैसा हो, इस संबंध में भी अनेक सुझाव दिए। दोनों ने ही भाषा और प्रस्तुतीकरण के संबंध में भी अनेक सुझाव दिए। वे उत्सुक थे कि जर्नल का रूप ऐसा हो, जो अखिल भारतीय स्तर पर अपना प्रस्तुतीकरण कर सके। उन्होंने स्वयं ने साक्षात्कार की भाषा और प्रस्तुतीकरण को समझने का प्रयास किया। इन अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्रियों की रुचि जर्नल के लिए स्पष्ट दिखाई देती थी। इन्हीं वर्षों में दोषी स्मृति भाषणमाला में दिए गए भाषणों का प्रकाशन भी प्रारंभ किया गया। दोषी स्मृति भाषण न केवल क्षेत्रीय थे, अपितु जनजातियों की शास्त्रीय व्याख्याओं को भी छूते थे। मानवशास्त्रीय तथा समाजशास्त्रीय रचनाओं में ये भाषण महत्त्वपूर्ण थे और इन भाषणों को भी जर्नल ने प्रकाशित किया। जर्नल ने यह भी प्रयास किया है कि ऐसे भाषणों को मूल रूप में प्रकाशित किया जाए।

धीरे–धीरे जो अन्य विषय जर्नल में सम्मिलित होने लगे हैं, उनके संदर्भ कृषक संरचना, लोक और लोक आधारों के साथ जुड़े हुए हैं। लघु परंपराओं और दीर्घ परंपराओं दोनों पर ही लेख प्रकाशित हुए हैं। लघु परंपराओं का संदर्भ लोक कथाओं, लोक कथनों और लोक परंपराओं के साथ भी जुड़ा हुआ है अतः जर्नल के ये लेख जमीन की सतह के समाजशास्त्र के साथ जुड़े हुए हैं। समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए कई खंड हैं। जर्नल ने इन खंडों में एकाकी तथा समन्वयित लेखों के प्रकाशन का प्रयास किया है। वास्तव में यह ऐसे लेखों के प्रकाशन का प्रयास है, जो राजस्थान के जमीनी आधारों से जुड़े हों और राजस्थानी समाज को विकसित कर सकें। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम केवल राजस्थान तक सीमित रहते। समाजशास्त्र वृहद परंपरा का विषय है, इस परिवेश में बहुत सा सामाजिक विश्लेषणात्मक लेखन प्रस्तुत किया जा सकता है। जर्नल इन परंपराओं को भी ध्यान में रखेगा। हमारा अभिप्राय उन अखिल भारतीय परंपराओं से है, जिन्हें समझना आवश्यक है।

जर्नल का एक दशक, प्रयोगों तथा समाजशास्त्रीय संग्रहणों का दशक रहा है। यह एक प्रयोग भी है और प्रयास भी। हमें प्रशंसात्मक पत्र प्राप्त हुए हैं। इन पत्रों से हमारा उत्साह बढ़ा है और राजस्थान समाजशास्त्र परिषद् को इससे प्रसिद्धि भी प्राप्त हुई है। हम प्रशंसात्मक प्रसिद्धि की कामना नहीं करते, पर इस दसवें अंक तक हम यह प्रतीक्षा अवश्य कर रहे हैं कि हमें पाठकों का आलोचनात्मक आधार अवश्य प्राप्त होगा। मोहन आडवानी, मृदुला त्रिवेदी, त्रिभूनाथ दुबे, श्रुति टण्डन, मृदुला बैरवा, मनोज राजगुरु और ललित कुमावत के हम आभारी है। जो जर्नल की कार्यकारिणी और सम्पादन मंडल के सदस्य रहे हैं और सक्रिय रूप से काम करते रहे हैं। मधुसूदन त्रिवेदी, संजय लोढ़ा, अरुण चतुर्वेदी और अन्य सभी संपादकीय सलाहकारों का भी हम आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने संपादक मंडल की सहायता कर जर्नल को यह रूप प्रदान किया है। इन दस वर्षों के लिए हम आभारी हैं।

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

Ethnographic Discourse on Tribals of Odisha

Bibhu K. Mohanty

Abstract: Ethnographic discourse on various issues related to tribes of Odisha is unending. There are several arguments stating how slowly and steadily with advanced technology and stronger social organisation the Aryan speaking people penetrated India. There are linguistic and archaeological evidences to suggest that the pre-Aryan indigenous janas who were settled originally on the plains were not at the same stage of development. They spoke a variety of languages and belonged ethnically to a variety of physical types. Due to the pressure of Aryan speaking people these indigenous people slowly moved to relatively more inaccessible regions of the forest and hills and large mountain slopes which are referred to as atavika rajyas. Tribal inhabitation has immensely benefited the state socially and culturally.

Keywords: Schedule Tribes, Odisha, Development, Ethnographic Perspective, Tribals of Odisha, Government Perspective, Ethno linguistic Classification

It is argued that during the colonial period tribe as a social category got crystallized. The first official designation was "forest tribe" followed by "primitive tribe" (1931) "backward tribe" (1935), *adivasi* the original settlers (1948) and finally the Scheduled Tribes in 1950. Constitution of India defines Scheduled Tribe and reflects more about it in the Article 342. Scheduled Tribes are therefore officially recognised groups, who enjoy constitutional safeguards in the field of education and culture, economic safeguards, political safeguard, service safeguard etc., for their socio economic upliftment etc. The constitution allows notification of Scheduled Tribe from time to time through a meticulous administrative exercise originating from the state to the centre and finally getting the consent of President of India.

Tribal Groups of Odisha

The State of Odisha is home to 62 tribal groups out of which 13 are Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs). Interestingly, it is the third populous state of India in terms of tribal population. In Odisha each tribal group is distinguishable from the other on the basis of their unique culture which includes social organisation and language or dialect etc. In the recent past Ho, Kondh, Santal and Saura have developed their script. To understand the tribal scenario of Orissa we need to understand about them from bio-cultural perspective which may also include ecological perspective and linguistic perspective, the administrative mechanism in operation and the role of Government of Odisha and Government of India in socio-economic upliftment etc. The state is divided into four major geo-physical zones (Ota; 2009) which are narrated below-

The Coastal Tract: This zone covers 21.2 percent of the area and is relatively more advanced than other three zones. The soil of the region is more suitable for cultivation of rice and pulses. Currently the rivers of this area provide water for irrigation purpose. This jurisdiction is spread in between the river Rushikulya on the south to Subarnarekha in the north. Other important rivers of this area include Mahanadi, Brahmani, Baitarani, Birupa, Kathajodi, Kuakhai, Daya, Salandi etc. It is reported that nearly seven districts (partly or fully) are covered in this geo physical zone. Though it is not having thicker concentration of tribes, some of the important tribes found in this region are Santal, Ho, Munda, Savar and

Kondh. It is reported that these tribes have come from the districts, like Mayurbhanj, Keonjhar, Sundargarh Koraput, Gajapati and Kondhamal. Since most of them have migrated to this part, the main occupationare in the area of construction worker, earth work rickshaw pulling and industrial labour. This area is not home to any PVTG and no tribal developmental programmes like Integrated Tribal Development Agency (ITDA), Modified area Development Approach (MADA) or Cluster Pockets are operating.

Eastern Ghat Section: This section consists of Gondwana system and covers 29.2 percent of the total area. In this section mountains are some time discontinuous and cover districts like Koraput, Kondhamal, Kalahandi, and Gajapati district etc. The soil types are laterite. Khondalite which are highly metamorphosed sediments are found in Kondhamal region. Gneisases and Schist are found in Kalahandi. Koraput and Potangi area consists of alternating bands of Charnochite and Khondalite rocks. The Jaipur and Nawarangpur plateau consists of series of metamorphosed sediments intruded by granites, charanochite and dobrites. The eastern ghat has lost forest cover due to shifting cultivation practised by the tribal people. The mountain range varies from 3000 ft to 4000 ft. Some of the predominant tribal communities inhabiting the region are Kondh, Saora, Paraja, Koya, Gond and Gadaba ITDA is functioning in blocks of Thnsmul Rampur, Nawarangpur, Koraput, Jaipur, Malkangiri, Rayagada, Gunupur Paralakhemundi, Baliguda, Phulbani and Nilagiri. Interestingly Koraput district is home to Particularly Vulnerable Tribal Groups like Bonda, Didayi, Kutia Kondh, Dongria Kondh, Saora, Lanjia Saora, Chuktia Bhunjia.

Central Table Land: This zone covers 24 percent of the area. Important rivers flowing in this area are Mahanadi, Brahmani, Tel and their tributaries. The famous Gandha Mardan Hills located in this region and are bounded by Bolongir in North-West, Sambalpur in south and Kalahanali in south west. Some of the predominant tribal communities of this area include Gond, Kisan Desia Kondh, Savar. The Modified Area Development Approach (MADA) pockets are present in this zone. The Paudi-Bhuyan (PVTG) is present in this Zone.

The Northern Plateau: This Plateau covers 25.5 percent of the area. This lies in the range of 20 degree N latitude and 79 degree to 87 degree E longitude. The districts such as Mayurbhanj, Keonjhar, Sambalpur, Sundargarh, Kalahandi and Anugul covering an area of 15030 sq miles comes under this territory. The important hills of this region are the Simulia hills which has two prominent peaks, one at Similipal and the other at Meghasani (1162 mts). The plateau includes Rairangpur uplands and Rajgangapur upland. Upper Baitarani river flow in Keonjhar districts. In this part silt erosion is common. The plateau is rich in iron ore, lime stone and coal deposit. Thus it has a great potential for industrialization and today most of the cement factories are located in Rajgangapur area. This area is characterized by humid fixed forest. Semi evergreen species are predominant and below 3000 ft Sal is very common. Some of the prominent tribes of this area are the Santal, Kolha Munda, Bhuyan, Oraon, Gond, Kisan and Bhumij. The area is abode to PVTG like Juang, Hill Kharia Mankirdia, Lodha, Birhor, Paudi Bhuyan. The ITDA covers ten blocks in this area.

Economic Life of Tribes in Odisha

Generally tribal economy are subsistence economy and based upon gathering , fishing and hunting (e.g. Birhor, Hill Kharia) or sometimes in the shape of combination of gathering, hunting and shifting cultivation (e.g., the Juang, Hill Bhuiyan, Lannjia Saora, Kandha etc.). Behura (1996) while classifying the tribal economy. considers their eco-system, traditional

economy, supernatural beliefs and practices and recent impact of modernization into six types viz. (1) Hunting, collecting and gathering type (2) cattle herder type (3) simple artisan type (4) and shifting collecting type (5) settled agriculture type (6) Industrial urban worker type.

Hunting, Collecting and Gathering Type: Kharia, Mankidi, Mankirdia, Birhor living in the forest of Mayurbhanj Keonjhar and Sundargarh district are exclusively depending upon forest resources for their livelihood by practising hunting, gathering and collecting. They live in temporary tiny huts as constrains of resources forces them to lead a band life. Their technology is primitive and their life revolves around the forest. Their world view is fully in consonance with the forest eco-system. Their population is very small. Socio-politically they have remained inarticulate and therefore have remained in a relatively more primitive stage and are neglected too.

Cattle Herder Type: Koya is the lone pastoral and cattle breeder community of Odisha. This community has been facing the problem of pasture land after the rehabilitation of Bangladesh refugee in their habited in Malkan giri district.

Simple Artisan Type: In Orissa Mahali and Kol-Lohara practise crafts like basketry and black smithy respectively. The Lohars with their traditional skill manufacture iron and wooden tools for neighbouring tribes. Similarly Mahalis earn their living by making baskets for other communities. Both the tribes are having difficulty in getting the raw materials from the forest and are not able to compete with others in the market.

Hill and Shifting Cultivation Type: Many tribes of Odisha fall under this category. In northern Odisha the Juang and Bhuiyan and in southern Odisha the Kandha Saora, Koya, Parenga, Didayi, Dhurva and Bonde practise shifting cultivation.

Settled Agricultural Type: There are several large tribes under this category which includes Santal Munda, Ho, Bhumij, Oraon, Gond, Kandha, Mirdha, Savara etc. leading a life of settled agriculturist. Agricultural outcome of the tribal communities is unproductive and un-economic. Land alienation, indebtedness, lack of irrigation facilities coupled with problems related to want of record of right for land under occupation, land alienation, lack of power for irrigation, absence of proper communication facilities, intrusion of money lenders, traders, etc have made their life miserable. And lack of education has also supplemented to their problems.

Industrial Urban Worker Type: Presently a substantial number of tribal populations has moved to mining, industrial and urban areas for earning a secured living through waged labour, white coolar job, technical job etc. Mostly persons from advanced tribal communities such as, Santal, Munda, Ho, Oraon, Kisan, Gond, etc. have taken to these economic pursuits.

Spectrum of Social variation

The tribal mosaic of Odisha is anthropologically interesting from various dimensions. Foreign scholars especially the German scholars are working on kinship system due to its wide-ranging variation even in a single district like undivided Koraput. Saora tribe is reported to have no clan organisation but possess a system of descent known as birinda, lineage. The most interesting Particularly Vulnerable Tribal Group (PVTG) in the era of cyber age, who are still scantily dressed are the Bonda tribe. They have a dual social organisation and have moiety system and practice moiety exogamy. The Koya tribe

inhabiting along the Chhattisgarh border have two social divisions termed as phratries. Each phratries is further divided into exogamous clans. On the whole the tribal communities of Orissa are broadly divided into exogamous clans having totemic symbols and others having non totemic symbols. The totemic clan among the Bagata tribes are the elephant, monkey, God,flute,etc. Baiga clan names are associated with place names while Bathudi have clans like snakes, conch, wild grass, wild fruits etc. Both Bhotada and the Bhumia have senior and junior division and in each division there are Clans named after some animal species. The Chuktiya Bhunjia have moiety like social divisions. Dhruva tribe have clans and subclans. The Dongaria Kondh are divided into more than 30 Clans of which some are totemic and others are not. Each clan has its clan deity. Among the Gadaba tribe of Koraput district they are divided into four broad sections such as bado, sano, parenga and Olaro.

Ethno Linguistic Identity of Tribals in Odisha

Sachchidanand (1996) mentions that the tribal spoke a variety of languages and belong ethnically to a variety of physical types. Due to the pressure of Aryan speaking people these indigenous people slowly moved to relatively more inaccessible regions of the forest and hills and large mountain slopes which are referred to as atavika rajyas. It is argued that during the colonial period tribe as a social category got crystallized. Language of a community is a very important cultural factor in understanding a community and for building up a community. The tribal ethnography can never be complete without reference to their verbal behavior. The tribes of Odisha are ethno-linguistically classifiable (Table 1) into three groups namely.

Table 1 Ethno-Linguistic Classification of Tribals Groups in Odisha

Munda Group	Dravidian Group	Indo Aryan Group
Gata (Didayi)	Parji (Dharua) Desia	Gata (Didayi)
Gotaob (Gadaba)	Koya	Bhuyan
Juang	Kui(Kondh Kutia/Dongria)	Jharia
Koda	Konda/Kabi (Kondadora)	Bhatri
Birho (Mankidia)	Ollari (Gadabva)	Matia
Mundari (Mundari/Munda)	Kurukh/Oraon (Oraon)	Kondha
Santali	Gondi (Gond)	Laria
Saora (Saora,Lanjia, Juray,Arsi)	Madia	Bhuli
Gorum (Parenga)	Kuvi (Kondh,Jatapu)	Aghria
Remo (Bonda)	Pengu (PeongoKondh)	Kurmi
Kharia (Kharia/Mirdha)	Pengu (PeongoKondh)	Sounti
Korwa		Bathudi
Ho (Ho/Kolha		Sadri
Mahili (Mahali		Bhumija
		Bhunjia
		Halbi
		Bhunjia
		Halbi

The languages of each group are interrelated both genetically and structurally. They have a common source common ancestry and cultural heritage. In Odisha 62 tribes use a variety of languages and dialects and all are not of the same status. Linguists classify them into three broad categories. Some are identified as Autonomous Languages with definite tribal identity (eg. Santali Remo, Kurukh etc.) Semi-autonomous dialects with an established tribal identity are the Bhuyan, Bhatri, Bathudi etc. Still others are classified as

Semi-Autonomous dialects with no particular tribal identity but with inter-tribal functions eg. Desia, Sadri etc.

Table 2 Classification of Dialects in Odisha

Old Indo-Aryan → Middle Indo- Aryan → Apbharamsa → Regional Dialects

Language and Dialect

Literary Language	Non Literary Dialects		
	Southern	Northern	Western
Oriya	Desia	Bathudi	Sadri
Bengali	Jharia	Bhyan	Laria
Hindi	Matia	Kurmali	Bhuli
Marathi	Bhatri	Saunti	Aghria
Etc.	Halbi		Baiga
	Bhunjia		Banjara
			Kondhan

Literacy Trend

The literacy trend in Indian Census was calculated by deducting the population in the age group 0-4 years till the Census of 1981, whereas from 1991 Census it is calculated by deducting the population in the age group 0-6 years.

The literacy data of 2011 Census reveals that Kulis tribes have the highest percentage of literacy (78.88%) and the lowest i.e. 21.14% is recorded in Mankaria tribe. 33 tribes have reported to have more than50% literacy rate while only 12 tribes have more than 60%.

Governmental Perspective of Tribal Scenario

To understand how government is persuading administration in tribal areas and implementing various schemes, it is important to go back to the history of evolution of such policies. Britishers wanting to penetrate to tribal areas coined Scheduled Areas in the year 1874. In it they introduced Scheduled District Act to provide administration in Scheduled district. Special officers were appointed in the Scheduled districts to look into civil and criminal cases and provide justice to the people of the area. In the year 1919 the British Government introduced another act. The Scheduled District Areas were divided to fully Scheduled Areas were divided to fully Excluded Areas and Connected Excluded Areas. In the act of 1935 the division of Tribal Areas into two categories are referred to as Excluded Areas and Partially Excluded Areas. But the most important issue was that tribal areas were brought under the rule of the Governor, appointed by the President. These areas were not under the rule of the Parliament and assembly.

At the time of independence the Constituent Assembly constituted two sub-committee look at the problem of tribal people. The committee recommended for modification in tribal areas and thus evolved the Scheduled Area from the earlier Excluded and Partially Excluded Areas. The whole objective was to assist the tribes with moderate interference and to protect the interest of the Tribes of the area. So the administration in the Schedule Area had some salient features like (a) Special Privilege to the Governor (b) Report of the Governor to the President etc. Accordingly to section 'C' Para X of 5th Schedule “Scheduled Area” includes those areas which have been scheduled by Honourable President of India.

In Odisha Government aided development work is still a major activity for socio-economic upliftment of tribes in Odisha. Various schemes of Government are implemented for their development. After the implementation of scheduled Area order of seven entire districts of the state have come under its fold. These included Mayurbhanj, Sundargarh, Koraput Kandhamal, Nabarangpur, Malkangiri, Rayagad. Also parts of six districts came under "Scheduled Area" and the steps for development of tribal regions were initiated. The entire scheduled areas of the state come under the Sub-Plan Area.

In the TSP area Integrated Tribal Development Projects (ITDP) has been taken up in more than 110 blocks. The prime concerns of ITDA are to minimise the gap that exist between them and others of the society. Since many tribal people are living beyond Sub-Plan area Modified Area Development Approach (MADA) have been implemented in 52 units of 46 blocks. Even after under taking this there was a need to cover some pockets which had tribal concentration. The blocks covered under cluster are known as cluster approach in Seventh Plan are known as cluster pockets and are identified in different districts to cater to developmental needs of the tribal people. Orissa is home to 13 Particularly Vurnalable Tribal Group (PVTG). Some of them live in Tribal Plan area and few are outside the Sub-Plan area. So 17 micro projects are operating for all round development of these PVTG in districts.

Conclusion

Any account on the tribe or tribes while deciphering about the society /culture , also reveal the context of the non-tribals, the geo-ethnic background of the land (state), demographic discourses, cultural contrasts and continuity, and on the whole the empirical identity of the habitat. The narrations made in the paper have rightly justified all such factors. Through the cultural classification of the tribes the autochthonic primitiveness of the state has been enlightened. Similarly the linguistic classification too has also given the linguistic vividness of the state and in a similar manner all the rest tribal accounts has rightly advocated the zonal cultural disparity as well as unity of the state. On the whole, tribal habitation in the state in large number has immensely benefitted the state socially and culturally. Starting from Lord Jagannath Trinity to Goddess Tarini, in almost all aspects of religious activities of the state, close exchange activities have been greatly justified here between tribal and non-tribals. In the fields of folk art, folk dance, folk music, folk literature etc. also the state culture has been greatly complimented by its tribal counterparts. Unlike other states, Odisha has provided the testimony to highlight its glorious historical identity mostly through its rich tribal heritage. Though it is very difficult to elaborate all its tribal accounts accomplishing all the 62 tribal groups in Odisha, within a brief delineation, all efforts have been made in the paper to give every major thing in nutshell.

References

Behura, N. K. 1996. *"Planned Development and Quality Life among Indian Tribes",* R. S. Mann (ed.) Tribes of India, New Delhi: MD Publication

Ota A.B. et al. 2009. *Analysis of Scheduled Tribe Population in Orissa* Bhubaneswar, Scheduled Castes and Scheduled Tribes Research and Training Institute.

Sachchidanda et al. 1996. *Encyclopaedic Profile of Indian Tribes*, Delhi: Discovery Publishing House

Sethi B. and Chakoborty, M. 2016. *The Scheduled Tribes in Odisha*, Bhubaneswar, Indian Book Bazar

Bibhu K. Mohanty, Anthropologist & Head of Office, Anthropological Survey of India, WRC, Udaipur

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

Impact Analysis of Health and Sanitation Initiatives in India

Priyanka Mathur

Abstract: The article deals with global-specifically third world countries suffering from health and sanitation problems. Sanitation systems in the developed world require a vast amount of land, energy and water. Politicians at the international, national and local levels must put sanitation at the top of their agenda and reflect this in national planning and budgeting. SBM under TSC is one bold step in this direction. The government, communities, NGOs, researchers, academia, corporate and the private sector should come together to solve the complex sanitation issues. In India a specific programme has been launched to provide relief from the problem.

Key Words: Health, Sanitation, Political Parties, Global Government

Introduction

Sanitation is a global issue which affects the health and well-being of the human population, food production, and the environment. In underdeveloped areas of the world like parts of Africa and India, the levels of sanitation are inadequate and there is an ongoing effort among governments and non-governmental organizations worldwide to improve public hygiene in these areas. In India Problem of Improper Health and Sanitation facility in rural areas and slums is gigantic.

The Root Causes of this problem are: Unplanned Urbanisation, Environmental Degradation & Lack of Literacy and Awareness. The Total Sanitation Program initiated by GOI can be discussed and analyzed on the basis of few parameters: Open Defecation and Defecation Culture, Sanitation, Urban Development, Gender, Environment and Mother and child mortality (under 5).

Swachh Bharat Mission in India

Swachh Bharat Programme aims at increasing availability of individual household latrines (IHLs) and reducing the practice of open defecation in a community. The availability of IHLs would reduce the practice of open defecation.

Figure 1 : *Idea Flow Chart of Clean India Mission*

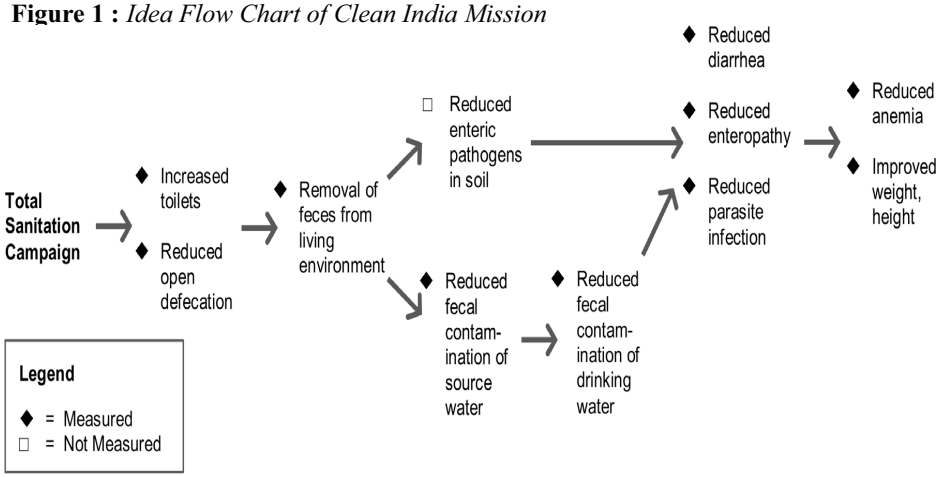

The Swachh Bharat Mission was launched on 2nd October 2014, as a national movement. The campaign aims to achieve the vision of a 'Clean India' by 2nd October 2019. It is the most significant cleanliness campaign by the Government of India. By inviting general people to participate in the Swachhta drive, the programme has revolved into a national movement. A sense of responsibility has been evoked among the people through the Clean India Movement. Citizens are now becoming active participants in cleanliness activities across the nation.

Sanitation Policies and Implications

Sanitation policies have been most successful when they also appealed to the value system and desires in people's lives like social decency, respect, comfort and religion. Cultural ignorance and lack of respect for local knowledge and practices of hygiene are major problems in successful implications of sanitation projects by both international organizations and local governments in low-income societies. Tiokou Ndonko's (1993 anthropological study) in Cameroon studied cultural and religious resistance against the government's sanitation policy. Hygiene is a purely medical concern which lies at the heart of culture and it is both a means of political control and resistance.

Since the inception of Swacchhta Mission in 2014 till year 2017 several states are working hard to attend the objectives of community hygiene. In this lieu the developmental story of Chhattisgarh sate is noticeable. The Urban areas of Chhattisgarh State has attained the title of Open Defecation Free this Rashtriya Swachhta Diwas – October 2, 2017 the rural areas with 90.31% sanitation coverage aims to eradicate open defecation completely by October 2, 2018. People don't get toilet incentives they have to construct the toilet with their own money, after using the toilet for 3 months they are entitled for the governmental incentive amount. Chhattisgarh has adopted unique Community Sanitation Model where when a village/block/panchayat goes ODF and gets the money as a part of their Swachh Bharat Abhiyan fund, it is not given to the authorities as the toilet construction fund; instead it is given to the community and is used within the society for its better future. Second approach that is being followed in Chhattisgarh is to motivate people to opt for Twin Leach Pit; the authorities give toilet incentive only to people who build Twin Pit toilet at home. The authorities are motivating people to opt for Twin Pit as it converts human waste into manure within the span of six months thereby reducing the faecal sludge management burden from the areas. Today, the villagers of Chhattisgarh have turned entrepreneurs; they are using human excreta as manure and selling it in the market

The problem of Health and Sanitation in India

Demand and availability of Safe and drinkable water are one of the parameters to measure the magnitude of the problem created due to unplanned urbanization. Population increase, rising incomes, and industrial growth are also responsible for this dramatic shift. Sectoral demands for safe water are growing rapidly in India and it is estimated that by 2025, more than 50% of the country's population will live in cities and towns. To ensure proper sanitation facility in urban areas National Urban Sanitation Policy has been framed in 2008. Ministry of Urban Development commissioned the survey as part of its National Urban Sanitation Policy in November 2008. No major city in India is known to have a continuous water supply and as a consequence, an estimated 72 percentage of Indian citizen still lack access to improved sanitation facilities even in metropolitan cities like Delhi and Mumbai.

Open defecation culture is one of the causes of community-level improper sanitation and it is compound with lack of water, Latrines, community participation. Open defecation refers to the practice whereby people go out in fields, bushes, forests, open bodies of water, or other open spaces rather than using the toilet to defecate. The practice is unbridled in India and the country is home to the world's largest population of people who defecate in the open and excrete close to 65,000 tonnes of fecases into the environment each day (Fewtrell et al, 2004).

Open defecation is a major cause of disease and Illnesses like diarrheal, worms, cholera, malaria, and diarrhoea. Diarrhoea alone is responsible for the deaths of 5,000 children a day. Providing sanitary conditions such as proper toilet facilities, clean running water and a means of safe garbage disposal can prevent the incidence of such widespread disease and death. The practice of open defecation is thought to be a major cause of the persistent worldwide burden of diarrhoea and enteric parasite infection among children below the age of 5 years (Sobsey et al, 2003). Reducing open defecation requires access to and use of improved sanitation facilities, which are defined as facilities that prevent human faces and pathogens from re-entering the environment.

A study conducted by UNICEF reported (in 2010) that an estimated 47% of the world's population did not have safe access to improved sanitation facilities. India alone accounts for a third of those without improved sanitation (814 million), nearly 60% of those who practice open defecation (626 million) and a quarter of the world's deaths from diarrheal diseases among children aged less than 5 years. According to the 2015 report of the Joint Monitoring Programme of the United Nations International Children's Emergency Fund and the World Health Organization, around 44 percent of Indians defecate in the open (Kumar, Kar, 2010).

In India, one out of two people have an excess of the toilet. About half of the population excretes more than 65,000 tonnes of poo outside every day. Only 11 percent of Indian urban families dispose of child feces safely. 80% children's feces are left in the open or thrown into the garbage every day, there is a very high risk of microbial contamination (bacteria, viruses, and amoeba) of water which causes diarrhea in children. Children under 5 years are weakened by frequent diarrhea episodes are more vulnerable to malnutrition, stunting, and opportunistic infections such as pneumonia. About 38 percent of children in India suffer from some degree of malnutrition. The fecal-oral route is an important polio transmission pathway. Open defecation increases communities' risk of polio infection.

On a national level, in terms of total cost, India suffers the most, with the US $ 106.7 billion wiped off the GDP in 2015. It is almost half of the total global losses and 5.2 percent of the nation's GDP. 2011 report published by Water Aid says that sanitation access lowered the odds of children suffering from diarrhea by 7-17 percent and reduced the mortality rate of children under the age of five by 5-20 percent. Water Aid is an international organization dealing with water, health and sanitation (Report UNICEF, 2012).

An analysis of Government Initiatives till 2017

A number of innovative approaches to improve sanitation facilities have been tested in India. Total Sanitation Campaign (TSC) lays strong emphasis on Information, Education, and Communication (IEC), capacity building and hygiene education for effective behavioral change with the involvement of nodal agencies, community-based organizations and

nongovernmental organizations (NGOs), etc. The key intervention areas are individual household latrines (IHHL), school sanitation and hygiene education (SSHE), community sanitary complex, Anganwadi toilets supported by Rural Sanitary Marts (RSMs), and production centers (PCs). The main goal of the government of India (GOI) is to eradicate the practice of open defecation by 2019. To give a fillip to this endeavor, GOI has also launched Nirmal Gram Puraskar to recognize the efforts in terms of cash awards for fully covered PRIs and those individuals and institutions who have contributed significantly in ensuring full sanitation coverage in their area of operation. The project is being implemented in taking district as a unit of implementation

Open defecation has lower down from 637 million people(54%) to 595(48%) and further 524 million people till 2017(JMP Report).The Govt. In India with the help of UNICEF India CATS (Community Approaches to Total Sanitation) pilots are introduced in six states under the flagship programme "Open Defecation Free" by 2019 under SBM mission. WASH in Health Centres in Schools: It map washes compliance in health facilities in the most deprived districts and is making recommendations to address non-compliance under flagship programme (https://washdata.org/report/jmp-2017-report-launch-version0).

Program Outcome: Statistical Analysis

1. Individual Toilet Availability:41.93%-63.98%(2014-2017)
2. Urban Individual Toilet Vs. Community Toilets: 3.1 million(88%) individual and 115,786(56%) community Toilets
3. Open Defecation Free Villages in India: 193,018 villages till May 22, 2017.
4. Toilet built Vs.Used: 36.7% Rural Household and 70.3% Urban Households; 48.4% of Overall households used improved sanitation facility + 51.6% household units did not use it
5. Each family saves over Rs 50,000 per year on account of avoided medical costs, time savings and lives saved. Additionally, there is a huge potential of generating wealth from waste through good solid and liquid resource management.

Governmental federal funding for the overall health budget has been hiked in 2017 from 1.15% to 2.5% of GDP, as part of a plan to improve care and meet a 2025 goal of rising health expenditure. GOI has allocated.48,853 Cr (23 % increased in FY2017-18t) to NHM through MOHFW. MOHFW allocated 9% to NRHM and 31% to NUHM. In total NHM received the fund of Rs. 26,691 cr in 2017-18. Additionally, there is a huge potential of generating wealth from waste through good solid and liquid resource management (Unicef report 2017). Faecal free village campaign each family saves over Rs 50,000 per year on account of avoided medical costs, time savings and lives saved. Additionally, there is a huge potential of generating wealth from waste through good solid and liquid resource management.(Unicef report 2017).Full immunization coverage for children and pregnant women has increased by 5% -7% under Indradhanush in phase III. In Phase IV (2017) has resulted in a 6.7 % annual expansion in the immunization cover till date.

Conclusion

Sanitation systems in the developed world require a vast amount of land, energy, and water. They are expensive to build, maintain and operate. Innovation is a key to solving the

sanitation crisis. It is not limited to designing new sanitation hardware but there should be planning in place so that sanitation products should reach the end consumers. It should deliver human-centric innovation that enhances people's living spaces.

Politicians at the international, national and local levels must put sanitation at the top of their agenda and reflect this in national planning and budgeting. SBM under TSC is one bold step in this direction.

The government, communities, NGOs, researchers, academia, corporate and the private sector should come together to solve the complex sanitation issues. This approach enables each stakeholder to efficiently leverage their core skills, thereby ensuring that effective programmes can be taken to scale up with the necessary speed. This needs not only construction of toilets, but usage. Managing liquid and solid wastes are also important that needs special care. Innovative technologies with low-water usage can be of great help in this regard.

References

Fewtrell L, Colford JM and Jr.Water. 2004. *"Sanitation and Hygiene in Developing Countries: Interventions and Diarrhoea-A Systematic Review and Meta-Analysis",* The International Bank for Reconstruction and Development/The World Bank, Washington, DC, USA.

Sobsey MD and Bartram S. 2003. *"Water quality and health in the new millennium: the role of the World Health Organization Guidelines for Drinking-Water Quality",* US National Library of Medicine/National Institute of Health, US. (online) **https://www.ncbi.nlm.nih.gov** Accessed on 6/02/2018

Kumar SG and Kar Sitanshu Shekhar. 2011. *"Sustainable behavioural change related to environmental sanitation in India: Issues and challenges",* Indian Journal of Occupational and Environmental Medicine, 15(3), Medknow Publication, India.

UNICEF and WHO. 2012. *Joint Monitoring Report: World Health Organization and United Nations Children's Fund Joint Monitoring Programme for Water Supply and Sanitation (JMP),* UN Water Publication, New York and Geneva. (Online) http://www.unwater.org/jmp/ Accessed on 6/02/2018

https://washdata.org/report/jmp-2017-report-launch-version Accessed on 6/02/2018

https://healthyliving.azcentral.com/why-is-sanitation-important.html Accessed on 6/02/2018

Dr. Priyanka Mathur, Assistant Professor, JECRGC Foundation, Jaipur

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

Homosexuality - The Socio-Legal Perspective

Saloni Ratnu & Meenal Seth

Abstract : Homosexuality is evolved to be one of the most distinct and contemporary socio-cultural identity in today's world. Homosexuality is a feeling or desire involving sexual attraction to people of one's own sex. In common usage, the term homosexual is used to refer to both same-sex oriented males and females. The homosexuals- the gays and the lesbians are associated with several stereotyped images and ideas. The historic landmark verdict of the supreme court of India on September 6, 2018 scraped the controversial section- 377, a 158 year old colonial law on consensual gay sex. The accomplishment of LGBT goals is a work in progress. It is too early to celebrate as many unfinished tasks lie ahead. The present article is based on the findings of the empirical study conducted by the authors.

Keywords: Homosexuality, gays, lesbians, LGBT, bisexual, transgender, human rights, heterosexuality, homophobic, victimization.

Homosexuality is a feeling or desire involving sexual attraction to people of one's own sex. In common usage, the term homosexual is used to refer to both same-sex oriented males and females. The word 'Gay' is often used as a synonym for male homosexual behaviour while the term 'Lesbian' is referred to a woman who is sexually attracted to another woman. In terms of sexual orientation of individuals, a bisexual person is sexually attracted to both men and women. Transgender people have a gender identity or gender expression that differs from their assigned sex. Anyone whose gender identity varies in a way from that pattern is transgender. They have one set of organs but identify as the other gender. Gays and lesbians emphasise the cultural, social and identity aspects of homosexuality.

Thus the LGBT community, commonly referred to as the gay community, is a loosely defined grouping of lesbian, gay, bisexual, and transgender. These communities generally celebrate pride, diversity, individuality, and sexuality. LGBT activities and sociologists see LGBT community-building as an antidote to heterosexism, homophobia, biphobia, transpholia, sexualism, and conformist pressures thought to exist in the larger society.

Sexologists and sociologists are becoming increasingly aware that society cannot be divided into compartments such as homosexual and heterosexual, gay and lesbian, male and female. There is an entire sexual spectrum out there including bisexuals, transsexuals and transgendered people. In fact, sexuality is turning out to be a complex mix of biology, behaviour and identity.

Although homosexuality has a long history is India, the gay movement is relatively nascent. Until recently, most homosexuals in India did not have many social and cultural avenues to express their sexuality. This is changing now due to greater awareness, education and legal rights. Many men of homosexual orientation are choosing to identify themselves as 'gay' and embracing a lifestyle that resists marriage and other conventions of an otherwise heterosexual society. They remain largely invisible and form networks that shy away from the public glare for fear of social and familial backlash.

The word 'Gay' is associated with several stereotyped images and ideas, like the way they act and dress. Thus, whether correct or not, we have certain awareness of gays in our

consciousness, like feminine men wearing tight, leopard prints. However, there is no real image of lesbians in our consciousness. They are denied any kind of identity and it could just as well be that they don't exist at all. Female sexuality has always been a taboo-something not to be discussed, something which is a matter of the "domestic sphere". This new angle to female sexuality will obviously be hard to accept. Furthermore, this also punctures male supremacy as the need for the males get rejected here.

Foucault's landmark book *History of Sexuality* (1978) is a four volume study of sexuality in the western world in which the author examines the emergence of "sexuality" as a discursive object and separate sphere of life and argues that the notion that every individual has sexuality is a relatively recent development in western societies. Foucault criticizes the "repressive hypothesis", the idea that western society suppressed sexuality from the 17th to the mid-20th century due to the rise of capitalism and bourgeois society. He argues that discourse on sexuality in fact proliferated during this period, during which experts began to examine sexuality in a scientific manner, encouraging people to confess their sexual feelings and actions. He said that in the 18th and 19th centuries society took an increasing interest in sexualities that did not fit within the marital bond. He strongly believed that sexuality, including homosexuality, is a 'social construction'.

Halperin (1990) addresses the constructive-essentialist debate on gay history from a constructive point of view. He admits that the social constructionist view would be proven false if it could be shown that sexual orientation is innate. Alderson (2000) focuses on the 'gay esteem'. He believes that many gays manage to construct positive self-esteem where as some gays never overcome their low-esteem. In his great work on Christianity and homosexuality Tushet (2014) discusses about the gay and catholic identities. He draws on historical records of vowed friendship.

Richardson (2015) justifies that legalizing same-sex marriage can contribute to ending the discrimination and social stigma faced by the LGBT community. With this environment and backdrop, the Lesbian/ gay movements have crawled along with their initiatives for their sustenance and growth. For a better understanding of the different facets of homosexuality, there is a need to visit the conceptual, cultural, social and legal aspects of homosexuality as well as to ascertain its acceptance status in various countries.

Historical background

Homosexuality has an ancient history in India. Ancient scriptures like Rig-Veda which dates back around 1500 BC and sculptures and vestiges depict sexual acts between women as revelations of a feminine world where sexuality was based on pleasure. The description of homosexual acts in the Kamasutra, the Harems of young boys kept by muslim nawabs and hindu aristocrats, male homosexuality in the medieval muslim history, evidences of sodomy in the tantric rituals are some historical evidences of same sex relationship.

However these experiences started losing significance with the advent of Vedic Brahmanism and later on of British colonialism. The Aryan invasions began to suppress homosexuality through the emerging dominance of patriarchy. In the Manusmriti there are references of punishments like loss of caste, heavy monetary fines and strokes of the whips for gay and lesbian behaviour.

The Issues related to Identities of LGBT

The present article is based on the findings of the empirical study conducted by the authors. Human sexuality is complex. The acceptance of the distinction between desire, behaviour and identity acknowledge the multi-dimensional nature of sexuality. The fact that these dimensions may not always be congruent in individuals suggests complexity of the issues. Medicine and Psychiatry employ terms like homosexuality, heterosexuality and trans-sexuality to encompass related issues, while current social usage argues for lesbian, gay, bi-sexual and transgender (LGBT) which focuses on identities.

The cultural environment has been hostile to gays and lesbians in India. They are afraid to cross the boundaries and 'come out' for fear of physical violence, and social opprobrium and there is not much literature dealing with same-sex love. Any cultural expression of lesbianism/gayism engenders anger and retaliation, especially among the right wing forces, which display abhorrence and complete intolerance of homosexuality in art and literature.

Gays and Lesbians – Life-Style and Leisure

Homosexuality is evolved to be one of the most distinct and contemporary socio-cultural identity in today's world. Due to globalisation and technological advancement, homosexuals across the globe are being exposed to the western life-style. Although the difference in identity, life-style and behaviour of homosexuals within the western countries is significant, an emerging trend of concreting the homosexual identity stereotype is not only pervading the western discourse, but also saturating different cultures in different parts of the globe. Some of the typical stereotypes include a taste for fashion, beauty and luxury, an active and enviable sex life and an existence of pride within the inner self. Formation of this stereotypical identity has its roots in the western culture. Prior to the internet, the print and electronic media used to provide the world with the insights regarding homosexual identity and culture.

The present study shows that the maximum number of homosexuals indulge themselves in on-line dating in India due to secrecy and confidentiality, it avoids stigma, hides identity. 76% homosexuals believe that gay life-style is the best. Few studies have used perspectives drawn from the sociology of leisure. Much of so-called 'gay life-style' revolves socializing with other gays, cruising for sexual partners, travel and attending the operas. The study found that there is no such thing as 'the gay life-style'. In fact, there are many different gay life-styles just as there are many different life-styles in the heterosexual community. 90% homosexuals are of the opinion that most of the things gay people do on a daily basis are not particularly exciting. A lot of what gays do is not really gay. Going to work, preparing supper, cleaning the house, and mowing the lawn are not activities unique to the gay community. People think that gay life style is what they see on a ten second news report, is a 'gay-pride parade'. One day in a year is not a life-style-Majority of homosexuals believe that the gay life is not all about sex and shopping.

The gay and lesbian night life in India is far behind international standards but with more and more gay and lesbian tourists coming to India, quite a few places are tagging themselves as 'gay friendly'. The 'VOODOO Club', gay Bombay', 'Pause' in Mumbai and 'Ginger' in Kolkata 'Go Pink' in Goa are some of the gay lesbian clubbing destinations. Interestingly, it has been found that homosexuals are very 'brand' conscious. They try to attract each other by

connecting themselves with brands, branded clothes, chunky jewellery and peculiar sunglasses. Luxury products are meant to provide users with a sense of pleasure and personal fulfilment. Such feelings are stimulated more by the emotional benefit, which is subjective in nature, rather than the functional benefits which are objective in nature. Moreover, the homosexuals have preference for 'Customized Gay Tours' where they can find partners with whom they can socialise.

Social world of the Homosexuals

Homosexuality is considered 'unnatural'. The homosexuals in many countries are not allowed to exist in their normal manner. Maintaining secrecy and hiding themselves is a necessity for them. They face discrimination at work place, suffer from psychological dysfunction and have impaired judgement in crucial situations. They lack self-confidence and suffer from a feeling of insecurity. Indian society is homophobic and has hostile reactions towards homosexuals. Lesbians and gays experience victimization and discrimination which results in the significant risks to the ageing and health of older gays and lesbians. Island and Letellier (1991) throw light on the incidence of domestic violence amongst gays and lesbians. There are several issues related to homosexuals–problems and challenges they face in their daily lives. They appear to have higher cases of anxiety, depression, mental disorders and suicidal behaviour. Most gays in India lead a life of constant fear and solitude. Their social world is scorned and condemned by society.

Gays and lesbians are inflicted with pain at school, at the work place and at home which at times results in irreparable profound self-hatred image which drive them to commit suicide. Intimate partner abuse and violence include humiliation, threatening to disclose HIV status, with holding HIV therapy and harming pets.

Human Rights Perspective - The Global Perspective

The study of acceptance of homosexuality at global level is interesting, enigmatic and at times defies logic. Globalisation tends to bring consensus and uniformity by smothering rough edges and makes human beings as well as nations move in a positive direction of understanding, peace, cordiality and enlarging areas of cooperation. This does not apply to homosexuality where standpoints are irreconcilable and poles apart. At one end of the spectrum is total acceptance with connotations of normal human behaviour while at the other end it is viewed as a sin/crime to be crushed ruthlessly. There is no dialogue and reconciliation between the two extreme ends. A historical study of the subject shows that homosexuality was never accepted by the state as well as religion till the twentieth century and was always regarded as a crime. However with the march of time the negative view of homosexuality has been eroding with more and more states accepting it as a normal human behaviour and has been treating homosexuals as equal citizens with the same right and privileges as enjoyed by other citizens. This metamorphosis is attributable to human right movements and a relook at religious concepts. The Roman Catholic Church, once in the forefront of oppositions is gradually moving towards permissiveness and conciliations. The acceptance of homosexuality as a part of society has made giant strides. No country in Europe has a law against homosexuality. Although Russia has no laws against homosexuality, yet it enacted and anti-gay propaganda law in 2013 prohibiting any positive mention of homosexuality in the presence of minors including online transmissions.

13 states mostly in Europe and Latin America have granted legal status to same-sex marriages. In U.S.A. and Mexico, all the federal units have not granted legal status to same-sex marriages. Hence the acceptance of homosexuality is only partial. 79 countries have anti-homosexuality laws. Hence same-sex marriages are illegal and punishable.

The Indian Scenario

Homosexuality was considered a criminal offence under section 377 of the Indian penal code, 1860. This made it an offence for a person to voluntarily have 'carnal intercourse against the order of nature' In 2009, the Delhi High Court decision found section 377 and other legal prohibitions against private, adult, consensual and non-commercial same sex conduct to be in direct violation of fundamental rights provided by the constitution of India. On 23 February 2012, the Ministry of Home Affairs expressed its opposition to the decriminalisation of homosexual activity, stating that in India, homosexuality is seen as being immoral. On 11 December 2013 the Supreme Court set aside the 2009 Delhi High Court order decriminalising consensual homosexual activity within its jurisdiction. On January 28, 2017 Supreme Court dismissed the review petition filed by the Central Government, NGO Naz Foundation and several others against its December 11th verdict on section 377 of IPC.

The 10th of December ever year is the International Day of Human Rights. The concept of human rights is an old and ancient concept of 'natural rights' based on law of 'natural rights' based on law of nature. The universal declaration of human right (article 2) says "everyone is entitled to all the rights and freedoms set forth in this declaration, without distinction of any kind such as race, colour, sex, language, religion, political or other opinion, national or social origin, property, birth or other status".

The concept of privacy is so broad that no comprehensive and all encompassing definition of the term can be given. In the case National Coalition for Gay and Lesbian V/s Ministry of Justice, the South African Court held that privacy recognizes that we all have a right to sphere of private intimacy and nurture human relationships without reference from the outside community. Even at the international level, the right to privacy has been recognised in favour of homosexuals. Several organisations and NGOs fighting for the rights of homosexuals joined hands to repeal an anti sodomy law (IPC 377) which has been on books since long.

The Historic Judgement by Supreme Court in India

On September 6, 2018 in a landmark verdict, the Supreme Court scrapped the controversial section-377 a 158 year old colonial law on consensual gay sex. The law against homosexuals has been read down which has legalised gay sex. The law against gay sex, known as 'Section 377" was introduced during the British rule in India more than a century and a half ago. The law banned "Carnal intercourse against the order of nature with any man, woman or animal" The landmark judgement says "Section 377 has resulted in a distasteful and objectionable collateral effect, which are neither harmful to children nor women and are performed by persons from LGBT community, have been woefully targeted". It is further said that Section 377 is violation of the fundamental right of freedom of expression including the right to choose a sexual partner. It becomes a weapon in the hands of the majority to seclude, exploit and harass LGBT Community.

Still a Long Way To Go

At present the whole situation is in a flux moving towards dwindling opposition. Despite apex court verdict, social stigma and the fear and hesitation to come out still persists. The world media has hailed the overturning of a colonial -era-law, saying the landmark ruling was a boost for gay rights not only in the world's largest democracy but also across the world.

There is nothing more powerful than an idea whose time has come. This is the only rational explanation of the epochal victory snatched by the LGBT community against an insurmountable and colossal opposition put up by religion, state, society and their own families. The winning idea that every individual in a civilized society has rights to freedom and human dignity brooks no limitations and restrictions. It is interesting to note that Delhi High Court, the Supreme Court as well as the Union Government unanimously rejected the plea of the LGBT community filed by Naz foundation in 2001. The Union Government argued that gay sex is immoral and reflects a perverse mind. The same three institutions subsequently accepted the plea of the LGBT community and the change of heart was so complete that Justice Indu Malhotra of Supreme Court wrote in her order that 'History owes an apology to the LGBT community and their families'. The Supreme Court judgement on section 377 has set the law for legal acceptance of the LGBT community as equal and honourable citizens of society without any discrimination. Its immediate impact was felt all over the country wherein all cases of extortion, blackmail and threat filed by police were dropped in one stroke and lost their sting forever.

While absorbing the full implications of the Supreme Court judgement, it is an opportune moment to take stock of ground situation and crystal-gaze into the future. The LGBTs are as old as the human species. They have moved with time and space but in a subdued and covert manner. It is only in the Twentieth Century that their feelings and aspirations came out in public domain. It is revealing that there is no state, no society and no profession where the foot prints of LGBTs are not visible. They have academicians, writers, journalists, scientists, artists, doctors and engineers in their fold. On the social scale, this rainbow coalition is all inclusive with royalty/elite at one end and commoners at the other end. The LGBT movement tasted success only after they organised themselves at national and international levels. In India, Naz Foundation Trust, Humsafar Trust, Udaan Trust and MINGLE (Mission for Indian Gay and Lesbian empowerment) have done commendable work in spearheading the LGBT movement. It goes to the credit of Naz Foundation Trust for filing a public interest litigation suit in 2001 in Delhi High Court. This was the start of the legal battle and the rest is history for all to see.

The accomplishment of LGBT goals is a work in progress. It is too early to celebrate as many unfinished tasks lie ahead. The first and foremost is the stigma attached to the community and the widespread prejudice against the LGBTs. The Supreme Court has taken cognisance of this fact and has directed the state to start campaigns to reduce stigma and create wide awareness that sec 377 will not apply to consensual sex between homosexual, heterosexuals, lesbians and other sexual minorities. The Supreme Court has further directed that all government officials especially police personnel will be given periodic sensitization and awareness training. While the Supreme Court is firm in holding the morality of constitution, the government is vacillating and fidgety due to societal compulsions. It has informed the Supreme Court that it is against same sex marriage and other LGBT rights. This

dichotomy between two organs of the state (i.e. judiciary and executive) portends a long drawn out struggle for the LGBT community to obtain their civil rights at par with other sections of society. The state has to gear up and finetune its response to a plethora of social and legal issues emanating from LGBT rights in the form of marriage, inheritance, succession, and surrogacy and so on. In the absence of precedents, all formulations tend to be de novo on a blank slate.

References

Alderon, Kavin. 2000. Beyond coming out: Experiences of Positive Gay Identity, Insomniac.

Foucault, Michel. 1978, *History of Sexuality*, Gallimard.

Halperin, David M. 1990. *One hundred years of Homosexuality and other Essays on Greek love,* Routledge.

Island and Letellier, 1991. *Men Who Beat the Men Who Love them: Battered Gay Men and Domestic Violence*, Oxford.

Richardson, Louise. 2015. *Justifying Same Sex Marriage: A Philosophical Investigation*, Routledge.

Ruth, Vanita and Kidwai, Saleem. 2001. *Same-Sex Love in India*, Palgrave Macmillan.

Tushnet, Eve. 2014. *Gay and catholic*, Maria Press.

Dr. Saloni Ratnu, Assistant Prof, Kanoria College, Jaipur

Dr. Meenal Seth, Post Doctoral Fellow, ICSSR, New Delhi

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

Globalization and Higher Education in India

Shruti Tandon

Abstract: Impact of globalization is seen on Indian higher education through the complex processes of commoditization, commercialization and privatization. It is a result of economic pressures and concomitant political 'moves' to reform or modernize public services. The ways and means of providing higher education are changing. They are shaping the content of higher education and exercising an influence on the nature of institutions that impart higher education. The recent development in communication technologies have helped to cross the barriers of time and distance. Although there are good reasons for supporting globalization and free trade in higher education, yet there are numerous disadvantages as well which call for our immediate attention and regulation.

Keywords: Globalization, Indian Higher Education, Markets and Globalization

Education, like family, marriage, religion, law and politics is one of the important institutions of society which play pivotal role in maintaining and developing social system (Tandon, 2016). Education is the most important way for empowerment and for sustainable development. Improvements in educational attainments are accompanied by improvement in health and longevity of the population and the country's economic growth. The agricultural, industrial and scientific growth of any country depends upon creating a corpus of well-trained professionals in a variety of academic disciplines and this can happen only with good quality higher education (Rangrajan, 2003).

At present, we are facing both quantitative and qualitative changes; quantitative in terms of economic growth and technological innovations, and qualitative in terms of a new paradigm of an evolving society governed by altogether different values and ethos. In this context, a country like India with continental dimensions cannot ignore the changes that are occurring in the rest of the world. While it is difficult to predict what the future holds, we can perceive at least three strongly emerging trends. First, technological changes are going to be even faster. Second, the new century will see greater integration of the economies as the process of globalization gathers further momentum. And third, the wave of rising expectations will surge even further (Rangarajan, 2003). Thus, it is important to investigate about higher education in the age of Globalization with special reference to India.

Globalization in India

After Independence, our country was not on smooth roads. Along with Independence, countrymen were also facing trauma of partition, socio-economic and political conditions were not properly settled. At the same juncture India had to make a standpoint in the world platform also and India was also getting influenced by the world activities happening around. All these have given us reason to question whether we also are now “at the turn of the tide”, at a juncture in history where one order passes away and a new order comes into being.

It is at such moments in history that new concepts, new ideas, bearing new paradigms and new understandings and perspectives on human experience will make their entry into public consciousness and in this context Globalization appears (Gills, 2006). Globalization in India started with the new economic policy in July 1991. Then onwards, India has made

tremendous progress in information technology, media sectors and banking. In this context, Globalization competitiveness and liberalization came to India as a booster and through the backdoor of 'economic reforms'. Globalization in India, as a phenomenon, involves access to two different entities –

1. Finance capital through MNCs and
2. New technologies such as computers and telecommunications

It was viewed that the growth and internalization of finance capital is good and desirable for projects because it promotes growth of technology. Globalization provides a useful means to develop technologies, which are necessary for the production of goods and services that improve our well-being (Nagla, 2010).

The new institutional innovates that Globalization may bring about in society are:

1. Market, trade and finance
2. Communication and media
3. Science and technology
4. Migration and inter-cultural transactions.

These are related issues of tourism, migration of professionals and the emergence of diasporic sub-culture.

Higher Education in India

All India Survey Report on Higher Education (AISHE-2017-18) is based on details shared by 882 universities, 38061 colleges and 9090 stand alone institutions out of the total 903 universities, 39050 colleges and 10011 stand alone institutions. They clearly reflect that the gross enrollment ratio (GER) in Higher Education in the country has slightly increased to 25.8% as compared to 25.2 last year, As India's economy continues to grow, a huge number of first generation learners will deemed access to higher education. As per 2011 census, about 8.15 percent (68 million) of Indians are graduates, with Union Territories of Chandigarh and Delhi topping the list with 24.65 percent and 22.56 percent of their population being graduates respectively. Indian higher education system has expanded at a fast pace by adding nearly 20,000 colleges and mare than 8 million students in a decade from 2000-01 to 2010-11.

Thus, there is a paradigm shift in recent times in this sector. One viewed largely as a charitable or philanthropic activity, it has since metamorphosed into an 'industry' in its own right. According to a report by rating agency CARE Ltd, the market size of the Indian education industry is pegged around USD $ 2 million and is expected to reach US $ 5.7 billion by 2020. Education industry is thus attracting sizeable investment, most notable in higher education. Further, education sector had attracted FDI worth US $ 1.64 billion during April 2000 to June 2017, according to the data released by the Department of Industrial policy and Promotion .

Today, India's higher education system is the world's second largest in terms of students enrolment. Around 35.7 million students were enrolled in higher education in India during 2016-17. Government of India has a target of Gross Enrolment Ratio (GER) of 30 percent for higher education to be achieved by 2020 to drive investments (UGC Annual report, 2013-14). The education industry in India is estimate to reach US $ 144 billion by 2020 (UGC Annual report, 2014-15, figure 1).

Figure 1

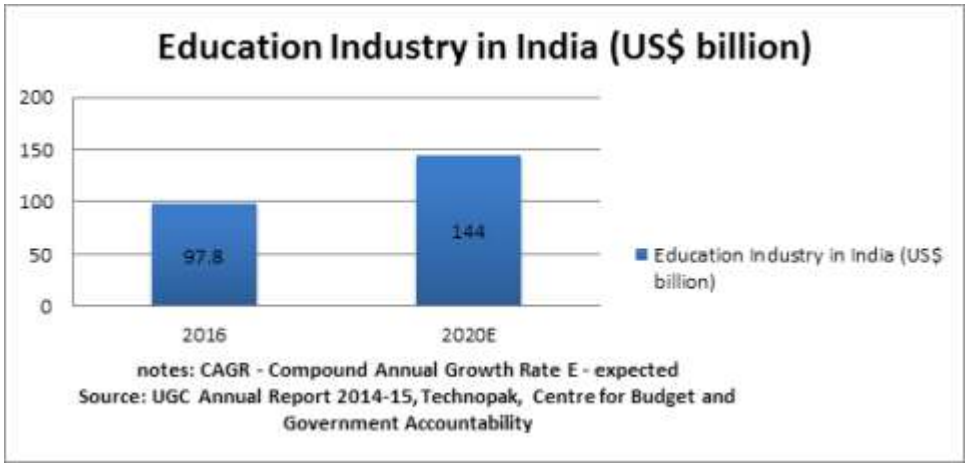

It is clear that Indian higher education system is facing an unprecedented transformation in the coming decade. This transformation of education is being driven by economic growth and demographic change and politics: by 2020, India will be the world's third largest economy, with a correspondingly rapid growth in the size of its middle class. Currently, over 50% of India's population is under 25 years old. India will outpace China as the country with the largest tertiary-age population (British council, 2012) by 2020. India will have one of the youngest populations in the world, with an average age of 29 years (ILO, 2011). Wider global factors are influencing higher education like the rapid internalization of education, global competition for talent and research funding and the commoditization of education.

Globalization and Higher Education in India

Now arises an obvious question that How can this process of Globalization relate to or influence the world of higher education? The simple answer is in two factors underlying the process of Globalization. For one, Globalization is driven by market forces, whether the threat of competition or the lure of profits. For another, Globalization is driven by technological revolution in transport and communications, which has set aside geographical barriers so that distance and time matter little (Nayyar, 2013).

India's commitments under the WTO's General agreement on trade in service (GAT) lead to the opening up of banking, insurance and telecom services. The discussion in these services has died down, due to the productivity and quality improvements witnessed since their liberalization and it has shifted to education services. There is a growing and welcome realization amongst the developing countries like India that education is the key to development, an integral part of the social infrastructure an essential component of social consumption. In this attribute, education in general and higher education in particular, was not significantly different from services as distinct from goods. Services possess two unique characteristics. First, the production of a service and its consumption are, as a rule, simultaneous, because services cannot be store. Second, the producer and the consumer of a service must interact with each other because the delivery of a service requires physical proximity.

Two of the strategic and long term questions that Globalization poses to the higher education system in India are:

i. Commoditization' – the use of knowledge as a purchasable and saleable good.

ii. Alternative providers' with profit motive of higher education's landscape that are engaged in the transmission of knowledge using Information and Communication Technologies.

Now in India, there is heavy demand for higher education. Demand-pull for higher education in India arises primarily from two-source from the actual beneficiaries and from expected industrial growth. No doubt India has tremendous potential to transform itself into a knowledge economy. India has made substantial progress in increasing literacy 63% in 2001 to 75% in 2016,(Census 2011 Ministry of HRD, UGC, AICTE, NCTE, MHRD and INC, UGC Annual Report 2013-14) and access to basic education over the last few decades which proved helpful in increasing enrollment in higher education.

The framework of time and space, the forms of funding and administration, the moral environment and the social relations which defined education in India are all subject to reconstruction within an epidemic of global reforms. Education is being reconceived and what it means to be educated is changing as a result. It is being tied even more tightly to the needs of economic competition and the knowledge economy. What is more, social hierarchies change, knowledge becomes a 'symbolic capital' (Bourdieu, 1984) and knowledge workers appear to be high-value producers at the top of the social pyramid. Higher Education is increasingly subject to complex process of commoditization, commercialization and privatization both as a result of economic pressures and concomitant political 'moves' to reform or modernize public services.

Globalization has a multidimensional impact on the Indian higher education system. As a result of globalization, the opportunities in the field of higher education in India now appear to be immense. Globalization enriches the teaching-learning process and enhances the quality of education. By globalization, students' learning is facilitated in such a way that local and global resource, support and networks can be brought in, to maximize the opportunities for their development during the learning process.

Students can learn from the world class teachers, experts and peers drawn in from the different parts of the world as due to the use of modern communication technology, it would be possible to put up the 'best teaching-learning material on the website for the use of teachers and students from anywhere in the world. Such a global open access may amount to a sort of 'commoditization' of higher education, learning to a substantial lowering of the unit cost (Thangamuthu, 2007).

Markets and Globalization

Thus now in higher education sector of India, markets and Globalization are beginning to influence universities and shape education, not only in terms of what is taught but also in terms of what is researched. In the sphere of teaching, there is a discernible departure from the liberal intellectual tradition where education was about learning across the entire spectrum of disciplines. The choices of students were shaped by their interest. The employability of students is not simply a force that is pushing to create more places for vocational course in higher education. It is also inducing universities to introduce new

course for which there is a demand in the market, because these translate into lucrative fees as an important source of income. Similarly, markers are beginning to exercise an influence on the research agenda of universities for research in life sciences, medicine, engineering or economics are abundant, while resource for research in philosophy, linguistics, history or literature are scarce. There is a premium on applied research and a discount on theoretical research (Nayyar, 2013).

India has also emerged as an educational hub and attracts global learner from all over the world. Students, faculty and employers now flock to India to learn and recruit as India dons the mantle of a higher education leader and emerges the role model for delivering high quality education to vast number at low cost (Higher education in India : vision 2030)

Globalization has its impact on teaching as well. It is through the globalization that multiple sources of teaching are available and the teaching can become a world class teaching. Teachers can achieve a global outlook by participating in international development and research programmes. A new professional culture can grow and they can share professional practice and research. Their teaching can become networked teaching. Even the curriculum acquires a new gloss in globalization. The curriculum becomes relevant to globalization of technology, economy, social development, culture and learning. The curriculum pools in the world class materials and designs for the learning and teaching processes and maximizes the global relevance and exposure to the future development of the individuals and the society (Panneerselvan, 2004).

Due to the process of globalization, the culture of quality consciousness is growing in the educational sector. There is an improvement especially in the quality of higher education due to competition. The access to higher education is increasing day by as a large number of agencies are providing opportunities for the higher education, both domestically as well as internationally. Globalization will make easy access to higher education particularly in the developing countries since the government in these countries is finding it difficult to provide additional resource to higher educational institutions to meet the increasing demand.

Disadvantages of Globalization

Although there are good reasons for supporting globalization and free trade in higher education, yet there are numerous disadvantages as well which call for our immediate attention and regulation. The impact of globalization on higher education in developing countries like India would be different from that of the developed countries. The countries that are yet to achieve hundred percent literacy, provide access of higher education to its large population, establish institutions for promoting different types of programs of interdisciplinary and multi-disciplinary nature, introduce credit transfer system, internal assessment system, semester system and so on. The impact of globalization in their case would certainly be different from those where all these facilities are fully available. However the pitfall is that ignorant parents and students may fall prey to the attraction of foreign courses and programs that provides all these facilities and in the process may get uprooted from their own national links to seek employment and higher education, thereby becoming incompetent to compete in the world market.

The commercialization of higher education in India may penalize the participation of brilliant students coming from poor background. In nation building, an overwhelming emphasis on commercialization and competition also involves risk of undermining the

inculcation of higher values of sacrifice, service and commitment to the country, a loss that may be difficult to overcome. Besides, it may contribute to materialism and self-centeredness of students. There is possibility of erosion of national values, norms, ethos, art and culture by imbibing the alien culture (Singh, 2006).

The best talents groomed in the national institutes and universities migrate to the advanced countries in search of better facilities and lifestyles. The favourable service conditions and lucrative pay packages may draw the best teachers and researchers towards developed countries. The huge sum of money invested on them for providing quality and advanced education pales into insignificance and the advanced countries that utilize their services get the expertise without spending a penny from their exchequers. Effective measures have to be adopted to prevent this brain-drain. On the other hand, India which is attracting only a few thousand students and that too mostly from developing and its neighbouring countries is suffering a severe setback in this regard (Dongaonkar and others, 2006).

Challenges for higher educational system in India

India's higher education gross enrolment ratio (GER) at 18% is currently well below the global average of 27% (2010 figures). The government plans to increase GER in higher education to 30% by 2020. This will require a transformational change at pace and scale never seen before. As India currently has 26 million students enrolled in tertiary education, by illustration, it would need another 800 universities and over 40,000 colleges in the next eight years to provide the planned additional 14 million places (40 million places by 2020).

India recognizes that the new global scenario poses unprecedented challenges for the higher education system. The university Grants Commission has appropriately stated that a whole range of skills will be demanded from the graduated of humanities, social sciences, natural science and commerce as well as from the various professional disciplines such as agriculture, law, management, medicine or engineering.

India can no longer continue the model of general education as it has been persisting in for the large bulk of the student population. Rather, it requires a major investment to make human resource productive by coupling the older general disciplines of humanities, social sciences, natural science and commerce to their applications in the new economy and having adequate field based experience to enhance knowledge with skills and develop appropriate attitudes (Singh, 2006).

Challenges for higher education fall into four broad categories:

- The low quality of teaching and learning
- The supply-demand gap
- Uneven growth and access to opportunity
- Constraints on research capacity and innovation.

Other then these- inadequate infrastructure and facilities, large vacancies in faculty positions which are not filled, outmoded teaching methods, declining research standards, unmotivated students, overcrowded classrooms and widespread regional, income, gender and ethnic imbalances. Apart from concerns relating to deteriorating standards, there is reported exploitation of students by many providers. Ensuring equitable access to quality higher education for students coming from poor families is a major challenge. Students from

poor background are put to further disadvantage since they are not academically prepared to crack highly competitive entrance examinations. Still there are great reserves of untapped ability in the society, if offered the chance they can raise to the top. A great deal of talent of the highest level is, in fact, lost by an in egalitarian system of education (Balachander, 1986). As per the data provided by the NAAC, as of June 2010, "not even 25% of the total higher education institutions in the country were accredited. And among those accredited, only 30% of the universities and 45% of the colleges were found to be of quality to be ranked at 'A' level

Many studies have been made and they have said that the possible reasons for wastage could be:

- A heavy and outdated curriculum. There is absence of a well- informed reform agenda for higher education.
- Lack of necessary aptitude for the course among the concerned students and lack of effort to develop the same. There is lack of adequate funding to meet the demands of various novel innovative programmes.
- Lack of meaningful and purposeful interface between the universities, National Research Laboratories, industries and society.
- Relaxation of admission criteria for admission.
- Limited use of technology as a teaching medium in the institution/universities.
- Teaching profession unattractive to youth for pecuniary considerations leading to shortage of qualified faculty.
- Training programs for improvement of the faculty are rarely initiated which affects the quality of teaching.

Efforts for Imparting Quality Education

- Today industry feels that a substantial section of the graduates are not aware of the business environment and do not have the essential business skills, as a consequence of an outdated curriculum. Industry expects that the recruits should be well versed in contemporary areas have the ability to apply knowledge therein and possess technical and soft skills. So there is an urgent need to update curriculum according to present needs and to provide proper training to aspirants.
- Higher education institutions need to improve quality and reputation so there is a need to implement innovative approach to make Indian educational system more relevant and competitive.
- With good infrastructure there is a need to focus on the graduate students by providing them courses in which they can achieve excellence, gain deeper knowledge of subject so that will get jobs after recruitment in the companies which would reduce unnecessary rush to the higher education.
- There is a need to build stronger relationships and increase mutual understanding in higher education by increasing support and participation in platforms (conference, workshops, seminars) which enable debate and dialogue with other countries of the world (British Council, 2014)
- As some of the students are often first or second-generation learners. They need special orientation/remedial course to be brought on par with the other students. Special remedial courses for non-urban/non-elite students should be focused because of schooling and even college study in the local vernacular, these students in

management or engineering colleges often ask the teacher to explain the terms in the local language. This affects the quality and progress of education.

- It has been observed that while a student is pursuing a particular branch he /she has an aptitude in another branch of professional study. Unfortunately our professional course are not flexible and do not allow lateral switch. There should be a multidisciplinary approach in higher education so that students' knowledge may not be restricted only up to their own subjects.
- Production of different teaching material and teaching aids involving use of information technology should be started. Proper care should be given accreditation.
- Government must promote collaboration between national Indian higher education institutions and top International institutions and also generates linkage between national research laboratories and research centers of top institutions for better quality and collaborative research.

Conclusion

As an emergent economy, India needs higher education to be able to grow in several directions. In addition to skilled person-power, it needs sound intellectual capital. It needs men and women well equipped in terms of knowledge and technological skills to deal with the challenges posed by globalization and the information revolution. It is an enormous task to educate and train all the youth in the relevant groups in a country with a population over one billion. It is beyond the reach of the Government, and beyond the reach of the private sector. There is no other alternative, but to forge partnerships between public and private, national and international institutions engaged in the business of higher education through the latest technology and distance education can be cost effective in the long run, it requires huge resources in the initial stages. Therefore India has come out with a novel scheme of self-financing colleges and self supporting courses. Now, a new paradigm of higher education must evolve that is developmental, human-centered, environmentally sound, and all – inclusive, so as to prepare learners to be contributors to knowledge and not just mere recipients of knowledge.

References

AISHE Report, 2017-18, mhrd.gov.in

Balachander, (1986). *Higher Education in India: Quest for Equality and Equity,* Mainstream.

Bourdieu, P. (1984). *Distinction: A Social Critique of the Judgment of Taste*, London : Routledge and Kegan Paul.

British Council, (2014). *Understanding India - The Future of Higher Education and Opportunities for International Cooperation.*

Dongaonkar, Dayanand, Negi, Usha Rai and Anand, R.D. (2006), *"Internationalization of Higher Edcuation,"* University News, Vol. 44, No. 48. Education sector in India, available at http://www.ibef.org/industry/education- sector-india.aspx.

Estimates and projections of the economically active population: 1990-2020', International Labour Organization (2011)

Fact sheet on Foreign Direct Investment From April 2000 to June 2017, available at http://dipp.nic.in/sites/default/files/FDI-Factsheet-June2017-2-9.pdf.

Gill, (2006). *The Turning of the Tide* In Dasgupta Samir and Kiely Ray, Globalization and After, New Delhi: Sage.

Nagla, B.K. (2010). *"Globalization and its impact on culture with special Reference to India"* in Mehta, S.R. Socio-Cultural Diversities and Globalization (ed.) Shimla: Indian Institute of Advanced Study.

Nayyar, D. 2013. *"Globalization, History and Development: A Tale of Two Centuries",* Cambridge Journal of Economics

Panneerselvn, S.K. (2004). *"Impact of Globalization on Human Development and Education in the 21st Century,"* University News, 42 (21).

Rangaranjan, C. (2003). *"Globalization and its impact"* in Kapila Uma. Indian Economy Since Independence, New Delhi: Academic Foundation.

Singh (2006). *"Challenges of Globalization on Indian Higher Education."* University News, 44(19).

Statistics- ministry of Human Resource Development, 2016-17 (PDF). mhrd.gov.in

Tandon, S. (2016), *Teachers in the Making*, New Delhi, Classical.

Thangamuthu, C. (2007). *"The Indian Higher Education Retrospect and Prospect,"* University New, 45(6).

UGC. (2005). *Research Handbook: Towards nurturing research culture in higher education institutions in India.* University Grants Commission. New Delhi.

UN Population source, cited in the shape of Things to come: British Council (2012).

Dr. Shruti Tandon, Assistant Professor, Dept. of Sociology, Govt. M.G. College, Udaipur

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

देखभाल और देखभाल के कार्य का वैश्विक समाजशास्त्र

ब्रिगट अलन हैकर
अनुवादक :नरेश भार्गव

सारः यद्यपि देखभाल का कार्य समाज में मूलभूत सामाजिक महत्व का कार्य रहा है पर इसे सामाजिक महत्व नहीं दिया गया है और न ही समाजशास्त्र के वर्तमान परिवेश मे इसे कोई तरजीह दी गई है। इस विषय मे हम लेख के माध्यम से देखभाल और देखभाल के वैश्विक समाजशास्त्र के सन्दर्भों को समझना चाहते हैं। लेख में सैद्धान्तिक तथा अनुभवात्मक आधार, दोनों की चर्चा है, देखभाल संबंधों का वर्णन है और प्रत्यक्षवादी पद्धति के आधार पर इसे समझने का प्रयास किया गया है। इन गत्यात्मकताओं को समझने के लिए देखभाल के संगठनों द्वारा उपजे विभिन्न पक्षों को भी वर्णित किया गया है। देखभाल के समाजशास्त्र को स्पष्ट करने के लिए तीन प्रवृतियों के इर्द–गिर्द इस लेख की रचना की गई है जो इस प्रकार हैं–1. देखभाल और देखभाल के कार्य का व्यापारीकरण तथा उसका पदार्थीकरण 2. श्रम और नीतियों का सुदूर राष्ट्रव्यापी प्रतिस्थापन 3. शासन के नवीन स्वरूप और सामाजिक राज्य व्यवस्था के सूत्र। इस लेख में वर्तमान मे वैश्विक स्तर पर देखभाल के कार्य की स्थिति, व्यवस्थाओं, देखभाल और शासनों के शोधकार्य की चर्चा भी की गई है।

संकेत शब्दः देखभाल के कार्य, नीतियां, पदार्थीकरण, राष्ट्रीयकरण की सार्वजनिकता।

देखभाल स्वयं के लिए और अन्यों के लिए जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है, साथ ही इसे सामाजिक सहअस्तित्व के लिए भी स्वीकार किया गया है। इसकी अवहेलना व्यक्ति और समाज के लिए घातक है। यद्यपि देखभाल और देखभाल का कार्य मूलभूत रूप से सामाजिक महत्ता रखता है परन्तु इसे ना तो सामाजिक मान्यता मिली और ना ही समाजशास्त्र ने इसकी ओर कोई ध्यान दिया है, लेकिन अब इस परिस्थिति में परिवर्तन हो रहा है। देखभाल और उसके कार्य वर्तमान में उभरते महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। समाजशास्त्र के लिए बड़ा प्रश्न यह है कि अब इसमें जो रूचि जागृत हो रही है उसे कैसे समझा जा सकता है? इसके माध्यम से सामाजिक विकास को किस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है?

देखभाल और देखभाल का कार्य संयुक्त रूप से सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रियाओं के साथ सम्बद्ध किए जा सकते हैं। इस प्रक्रिया को 1970 में दुनिया के उत्तरी भागों मे पनपे पूंजीवाद के साथ जोड़ा जा सकता है। 1980 के आसपास समाजवाद क्षीण होने लगा था और अगले चरण में भूमण्डलीकरण पांव पसार रहा था। एक और तथ्य यह भी था कि सन् 2008–2009 के आसपास विश्व में वित्तीय संकर आ गया था। जैसे ही यह स्थिति सामने आई, विश्व के उत्तरी गोलार्द्ध में, विशेष रूप से पश्चिम, पूर्व और दक्षिणी यूरोप मे स्थायी देखभाल की स्थिति हिल गईं, टूट गईं और रूपान्तरित हो गई। दुनिया के अन्य भागों मे देखभाल के नवीन शासन उभर कर आए। इन्हीं के परिणामस्वरूप देखभाल और देखभाल के कार्य का वैश्विक समाजशास्त्र बना।

बाजारीकरण, वृहद् राष्ट्रीयकरण और प्रबन्धन के नए रूप के तत्वाधान में देखभाल और देखभाल के कार्य के वैश्विक समाजशास्त्र की ओर कोई भी कदम महत्वकांक्षी होता है, क्योकि देखभाल और देखभाल के कार्य को कैसे संगठित किया जाए, इसको लेकर कई सामाजिक–स्थानिक अंतर हैं। यह बात देखभाल और देखभाल के कार्यों की अलग–अलग विशेषताओं से और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। इस कार्य की संगठनीय व्यवस्था की तीन प्रवृतियां हैं, जिनकी हम पहले चर्चा कर चुके हैं। देखभाल

और देखभाल के कार्य का पदार्थीकरण उनमें से एक है। जब राष्ट्रवाद व्यापक हुआ तो किसी एक ही राष्ट्र में नहीं, अन्य राष्ट्रों में भी इसका विस्तार हुआ और सामाजिक राष्ट्रवाद की कुछ नई स्थितियों का जन्म हुआ। सामाजिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण विकास है। कभी–कभी सारे विश्व में सामाजिक विकास समानान्तर ही विकसित होते हैं और ऐसा लगता है कि हम इन प्रवृतियों को सारी दुनिया में एक साथ विकसित और प्रभावित करते हैं। इन प्रवृत्तियों के अपने परिवेश हैं, जिन्हें हम विकसित और संयोजित करते हैं। इन परिवेशों की जटिलता को हम स्वीकार करते हैं और वहन करते हैं।

देखभाल और देखभाल के कार्य का बाजारीकरण और सामाजिक प्रतिरोध

अन्य प्रकार के कार्यों की अपेक्षा देखभाल और देखभाल के कार्यों का संगठन प्रकार्यात्मक विभाजन और श्रम विभाजन पर आधारित है। ये कार्य समाज तथा क्षेत्र विशेष की ऐतिहासिक आवश्यकताओं और सामाजिक–स्थानिक परम्पराओं पर केन्द्रित हैं। राज्य की अर्थव्यवस्था और घर, परिवार, नातेदारी और सामाजिक ताने–बाने सभी इसे प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के कार्य मे धन निहित है भी और नहीं भी। इसका संगठन और कार्यक्षेत्र ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सीमाबद्धता के अनुसार संगठित होता है, जो कि श्रम विभाजन से परिष्कृत हुआ। यह लिंग, नृजाति और वर्ग के द्वारा विभक्त होता है जिसका प्रभाव कार्यों पर पड़ता है। देखभाल और देखभाल के कार्यों के लोगों ने अपनी अलग–अलग सीमाएं तय की हैं। महत्वपूर्ण रूप में, उन तरीकों को विकसित किया गया जो इस कार्य की सरलता और सुगमता को सुचारू बना सकें इसीलिए बाजारीकरण ने कई नए तरीकों पर ध्यान केन्द्रित किए हैं, जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय देखभाल के समाजशास्त्र में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रश्न उठने लगे हैं।

इस प्रकार जब हम बाजारीकरण, पदार्थीकरण या पदार्थीकरण से मुक्ति की चर्चा करते हैं तो यह स्पष्ट है कि ये विकास के एक विस्तृत और प्रायोगिक स्वरूपों के परिणाम हैं और ये औद्योगिक आधार उन आर्थिक सिद्धान्तों के परिणाम हैं, जिन्हें नए तरीकों में ढ़ाला जा रहा है। देखभाल के कार्य के साथ नवीन तकनीकी प्रवृतियां दिखाई देती हैं, जिनमें अंकीयकरण सम्भव है। पदार्थीकरण की वृद्धि ने और अर्द्धबाजारीकरण ने बाजार के स्वरूप भी बदले हैं और जिस क्षेत्र में बाजारीकरण नहीं था, वहां भी बाजार उभरने लगे हैं। यांत्रिक रूप में नए वित्तीय आधार स्थापित हुए, जिससे प्रतियोगिता बढ़ी। एक वस्तु का पदार्थीकरण, दूसरी वस्तु के विपदार्थीकरण के संग होना प्रारम्भ हो गया। तभी यह विभाजन होने लगा कि किस कार्य का दाम लगाया जा सकता है और किस काम का नहीं। साथ ही सार्वजनिक, निजी और अन्य तीसरे प्रकार के सभी खण्डों में राज्य, परिवार, नातेदारी और सामाजिक ताने–बाने के स्वरूपों की चर्चा होने लगी।

इस अंक के पहले भाग के लेखों में भुगतान करने वाले और भुगतान नहीं करने वाले कार्यों की चर्चा है, फिर बाजार और राज्य की सीमाओं की, फिर तीसरे खण्ड में घरेलू इकाइयों की। ऑस्ट्रेलिया का उदाहरण देते हुए माइकेल डी. फाइन और डेविडसन ने स्वीकारा कि देखभाल के कार्यों में प्रतियोगिता का एक नया आधार पैदा हो गया है। यह सार्वजनिक देखभाल के स्वरूप में परिवर्तन पैदा कर देता है। जर्मन और ऑस्ट्रियन उदाहरणों को ब्रिगेट, फेबिन और रिग्राफ ने देखभाल के सर्वे बाजारों और नगरीय समाजों की चर्चा करते हुए दिया। बलोफिल्ड और जोकिला ने विशेषरूप से अमेरिका में एक लम्बे समय तक वृद्धों की देखभाल का अध्ययन किया और सामाजिक संगठनों, देखभाल और देखभाल के संगठनों की रचना में अपना योगदान दिया है। हमने ये उदाहरण इसलिए दिए हैं क्योंकि पैरेडीमानुसार यह बाजारीकरण और पदार्थीकरण को समझने में समर्थ है और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आजकल पदार्थीकरण को शिथिल करने के प्रयासों में इसका योगदान क्या है? साथ ही यह प्रश्न भी जुड़ा हुआ है कि किस प्रकार देखभाल का काम किया जाना चाहिए और कैसे इसी के साथ गुणात्मकता

का संदर्भ भी जुड़ जाता है। इसमें श्रम और नौकरियों के प्रश्न उठ खड़े होते हैं। देखभाल के वैकल्पिक स्वरूप क्या हो सकते हैं? श्रम और नीतियों के भूमण्डलीकरण के आधारों का परिवर्तन, घरेलू देखभाल और सामाजिक निवेश की प्रवृतियों को प्रभावित करता है। देखभाल और देखभाल के कार्यों के बीच लिंग, नृजातीय और वर्ग की विसंगति को भी स्पष्ट किया जा सकता है।

देखभाल के कार्य और नीतियों का भूमण्डलीकरण

ऐतिहासिक दृष्टि से देखभाल के कार्य का रूपान्तरण औपनिवेशिक काल से प्रारम्भ हुआ। देखभाल के कार्यों को करने वाली जन–संस्थाओं का विस्तार हुआ। 19वीं शताब्दी में यूरोप में स्त्रियों और लड़कियों के घरों में काम करने की व्यवस्था प्रारम्भ हुई। उन्होंने देखभाल और वृद्धों की सुरक्षा के लिए कार्य करने के लिए यूरोपीय देशों में आना–जाना प्रारम्भ किया। यह कार्य वस्तुतः नौकरी की तलाश थी। बच्चों और अवैध सन्तानों की देखभाल का कार्य ये लोग करते थे। 21वीं शताब्दी में सारी दुनिया में देखभाल के इस व्यवसाय के लिए स्त्रियों ने एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाना प्रारम्भ कर दिया था (आई.एल.ओ.,2015)। जैसा कि लिखा जा चुका है, वैश्विक देखभाल और संस्थागत देखभाल संस्थाओं में राज्य का हस्ताक्षेप स्थापित हो गया था। परम्परागत रूप से ऐसे व्यवसाय निम्न माने जाते थे। देखभाल का बाजारीकरण पहले ही स्थापित हो चुका था। देखभाल यदि करवानी है तो उसके लिए प्रावधान पहले से ही हो चुका था (विलियन्स, 2010)।

विश्व के बहुत से देशों में प्रवासियों में से देखभाल करने वाले लोगों को ढूंढना प्रारम्भ किया गया। बहुत से देशों मे यह श्रमजन संस्था का मूल था। घर के अपने काम को भी कम करना या समाप्त करना बड़ा आकर्षण बना, जिसमें महिलाओं को पैसा देकर घर मे कार्य करवाया जाता। इससे घर की देखभाल का काम हल्का हो जाता है (बोयड, 2017 लूट्ज, 2017 माईकल और पेंग, 2016)। यह प्रवृति सामान्य है कि देखभाल के इन पात्रों का पलायन दक्षिणी गोलार्द्ध से उत्तरी गोलार्द्ध की ओर हुआ। यही दृश्य दुनिया के दक्षिण भाग से उत्तरी भाग की ओर पलायन का है। इस संबंध में नीतियां बनी हैं पर उनमें बहुलता है। देखभाल का काम इस प्रकार अंर्तर्राष्ट्रीय कार्य बन गया है। इसका अपना ही स्वरूप बन गया है। यदि देखभाल के काम मे कोई कमी आती है तो कम कुशल देखभाल का काम करने वालों का स्थानान्तरण भी किया गया है।

वस्तुतः इस संबंध में परा देशी व राष्ट्रीय देखभाल के कार्य तथा नीतियों के बारे में बहुस्तरीय विश्लेषण की आवश्यकता है। इस विश्लेषण से बहुपक्षीय संदर्भों का परीक्षण किया जा सकेगा। देखभाल के लिए परीक्षण स्थानीय तथा वैश्विक प्रबंधन के नए स्वरूप में होगा। (रेगराफ तथा थियोबाल्ड, 2010)।

शासन के नए रूप और बदलते देखभाल के शासन

लिखे गए लेख प्रत्यक्ष रूप से तीन पक्षों के ऊपर केन्द्रित हैं। प्रथम पक्ष में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि देखभाल सेवाओं के सार्वजनिक, निजी और पारिवारिक आधारों को कैसे समझा जाए। किस प्रकार की देखभाल की सामाजिक व्यवस्था की जाए और बाजारी देखभाल की सेवाओं को किस प्रकार समझा जाए। दूसरे, ऐतिहासिक रूपान्तरण की प्रक्रियाओं के माध्यम से देखभाल की व्यवस्थाओं और देखभाल की सामाजिक व्यवस्था को किस प्रकार पुनर्गठित किया जाए। रूपान्तरण की प्रक्रियाओं के प्रभावों को कैसे देखा जाए और इन गैर बराबरियों को कैसे उभरने न दिया जाए। तीसरे, देखभाल और असमानता को तब तक सही ढंग से नहीं समझा जा सकता, जब तक हम समाजों के बीच की असमानता ना समझें। जैसे हम वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण को नहीं समझते (एयूलेनबेचर, 2014)।

गैर–बराबरी और देखभाल की सामाजिक व्यवस्था दोनों ही एक–दूसरे से मिले हुए हैं। दक्षिण

अफ्रीका इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। देखभाल व्यवस्था का यह स्वरूप सामाजिक तनावों को जन्म देता है। अर्जेन्टाइना भी इसका बड़ा उदाहरण है। देखभाल के क्षेत्र में एक बड़े संगठन एल.बी.जी.टी. ने देखभाल व्यवस्था के लिए एक बड़ा रूपान्तरण स्थापित किया है। किस प्रकार सामाजिक–सांस्कृतिक पक्ष इस सारी प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, लेख में यह स्पष्ट किया गया है।

ब्रिगट अलन हैकर, कायर विश्वविद्यालय ऑस्ट्रिया हेल्मायुद्ध, गोयेठ विश्वविद्यालय चयर्भनी, निरर्भट रेग्राफ, पीयनोन विश्वविद्यालय

देखभाल और देखभाल कार्य के वैश्विक समाजशास्त्र की स्थापना के प्रयास के संदर्भ कृपया करेन्ट सोश्योलॉजी, वॉल्यूम 88 नं. 44 जुलाई 2018 के अंक में देखें।

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

समाजशास्त्रीय पाठ्य पुस्तकें: तुलनात्मक विश्लेषण

मधुसूदन त्रिवेदी

सार: पाठ्य पुस्तक लेखन एक अलग प्रकार की कुशलता की मांग करता है क्योंकि इसमें पाठक की रुचियों और बोध को ध्यान में रखते हुए विषय की पूर्णता को सरल और सुबोध भाषा में व्यक्त करना होता है। प्रस्तुत लेख में समाजशास्त्र में पाठ्यपुस्तक लेखन के कुछ श्रेष्ठ और सफल प्रसंगों द्वारा भारत में समाजशास्त्रीय पाठ्य पुस्तकों की स्थिति पर विचार करने का प्रयास किया गया है। भारतीय पाठ्यपुस्तकों के विवेचन से यह पता लगता है कि हमारी स्थिति बहुत उत्साहवर्धक नहीं है और उत्तरोत्तर इसमें गिरावट आई है। यह लेख इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास है कि अन्य कारणों के अतिरिक्त भारत में, और विशेष कर हिंदी में, प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा पाठ्यपुस्तक लेखन को हीन दृष्टि से देखे जाने के मूल्यबोध के कारण समाजशास्त्रीय पाठ्यपुस्तकों की स्थिति ग्राह्यता, बोध, विषय निरूपण और गुणवत्ता की दृष्टि से अच्छी नहीं हो पाई है।

संकेत शब्द: पाठ्य पुस्तक, प्रासंगिकता, वैश्विक संदर्भ

पाठ्य पुस्तक लेखन कष्टदायक, दुरूह एवं जिम्मेदारीपूर्ण कार्य है। यह इसलिए क्योंकि ऐसी पुस्तकें विद्यार्थियों, विषय में रूचि रखने वालों, विषय को समझना चाहने वालों और नए पाठ्कों को ध्यान में रखकर लिखी जाती हैं। यहां मैं संदर्भ देना चाहता हूं दो पाठ्य पुस्तकों का, प्रथम, आर. एम. मकाइवर एवं चार्ल्स एच. पेज (2001) की पुस्तक सोसायटी: एन इन्ट्रोडक्ट्री ऐनेलिसिस इंग्लेण्ड से प्रकाशित हुई और, दूसरी, हैरी एम. जॉनसन (1960) की पुस्तक सोश्योलॉजी जो अमेरिका से प्रकाशित हुई। दोनों ही पुस्तकें वर्षों तक समाजशास्त्र परिचय के रूप में पढ़ाई जाती रहीं। मकाइवर एवं पेज की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद विश्वेश्वरैया ने तो जॉनसन की पुस्तक का अनुवाद योगेश अटल (1970) ने किया और भारत में ये दोनों अनुवाद वर्षों तक विद्यार्थियों द्वारा पढ़े गए। इन दोनों पुस्तकों के मूल लेखक प्रोफेसर थे और दोनों को 25 से 30 वर्ष का अध्यापन अनुभव था।

जॉनसन की पुस्तक सोश्योलॉजी का आमुख रॉबर्ट मर्टन ने लिखा था। मर्टन इस पुस्तक की तारीफ करते हुए लिखते हैं कि ''... वे (जॉनसन) जो कहना चाहते थे, वह स्पष्ट और सुन्दर ढंग से कह सके। उन्होंने विद्यार्थियों को अपने समकक्ष मानकर लिखा है, हीन (अज्ञानी) मानकर नहीं।'' मर्टन बिना हिचक के यह स्वीकार करते हैं कि ''इस पुस्तक के लिए मेरे उत्साह को छिपाने का कोई तुक नहीं था, क्योंकि सम्भवतः ऐसे प्रयास में (पाठ्य पुस्तक लिखने के) मैं स्वयं सफल नहीं हो पाता।''

मर्टन ने जिस गम्भीरता से पाठ्य पुस्तक लेखन पर अपनी असमर्थता जाहिर की, वह कई विद्वानों पर लागू होती है। अच्छा विद्वान एक अच्छी पाठ्य पुस्तक लिख सके, यह आवश्यक नहीं है क्योंकि एक अच्छी पाठ्य पुस्तक सरल भाषा व स्पष्टता से लिखी होती है। यह एक अलग प्रकार के कौशल की मांग करती है। एक अच्छी पाठ्य पुस्तक का लेखन विद्यार्थी एवं विषय में रूचि लेने वाले पाठकों के स्तर पर और विषय को आसानी से समझने में सहायक होना चाहिए। जटिल एवं शाब्दिक आडम्बर पाठक की रूचि को समाप्त कर सकते हैं। वास्तव में पाठ्य पुस्तक 'अध्यापक की अनुपस्थिति में अध्यापक की तरह' होती है।

विज्ञान के इतिहासकार डोनाल्ड फ्लेमिंग (1986) ने एक बार यह कहा था कि एक आदर्श पाठ्य पुस्तक ''प्रबुद्ध मतों की सहमति को प्रस्तुत करती है, उसका उद्देश्य नवीन विचारों का दमन करना नहीं होता, वरन् वह उसका स्थान निश्चित करती है और उन्हें प्रोत्साहित करती है ताकि वे स्वीकार्य हो

सकें।'' इस प्रकार पाठ्य पुस्तक में विषय के आधारभूत सिद्धान्तों का विधिवत वर्णन किया जाता है और विविध समाजशास्त्रीय अवधारणाओं एवं तथ्यों की व्याख्या करने के लिए इन सिद्धान्तों का विधिवत और संगत उपयोग किया जाता है।

सामान्यतः ख्यातिप्राप्त समाजशास्त्री पाठ्य पुस्तक लिखने से बचते रहे हैं। शायद वे हिन्दी में लिखने को हीन मानते हैं। उन्हें लगता है, इससे प्रतिष्ठा कम होगी। सच तो यह है कि हिन्दी के प्रकाशक भी लेखक को उतना पैसा नहीं देते जितना अंग्रेजी में प्रकाशित होने पर मिलता है। ख्यातिप्राप्त समाजशास्त्रियों की प्राथमिकता अनुसंधान के क्षेत्र से जुड़ी होती है और सैद्धान्तिक योगों को गढ़ने अथवा अधिक पैना करने में होती है। प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्रियों ने भी इस अभ्यास को अपनाया है और विद्यार्थियों (ग्राहकों) की आवश्यकताओं की पूर्ति अन्यों पर छोड़ दी है।

लेकिन फिर भी भारत में कुछ समाज वैज्ञानिक हैं जिन्होनें इस क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है। दो प्रसिद्ध सामाजिक मानवशास्त्रियों डी.एन. मजूमदार और टी. एन. मदन (1950) की चर्चा करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होगा, जिन्होंने 'सामाजिक मानवशास्त्र' पर प्रथम परिचयात्मक पुस्तक लिखी जो सामाजिक मानवशास्त्र के विद्यार्थियों में पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ी जाती रही है। इसके पश्चात् श्यामाचरण दुबे ने हिन्दी में 'मानव और संस्कृति' पर इसी तर्ज पर पुस्तक लिखी। ये पुस्तकें आज भी अपना महत्त्व रखती हैं और इन पुस्तकों की आज भी मांग है। इस विषय की पाठ्य पुस्तकों में एस.एल. दोषी का नाम भी राजस्थान में सामान्यतः स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त अक्षय देसाई और अरविन्द शाह ने कई आधारभूत विषयों पर गुजराती में पाठ्य पुस्तकें लिखी थीं, जो आज भी गुजरात में समाजशास्त्र के विद्यार्थियों द्वारा पढ़ी जाती हैं। दोनों प्रोफेसर्स जानते थे कि अंग्रेजी में कमज़ोर गुजराती विद्यार्थियों में समाजशास्त्र की रूचि बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है। इसी प्रकार देश के अन्य राज्यों की क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तकों को देखा जा सकता है, लेकिन क्षेत्रीय भाषाओं में विद्वान समाजशास्त्रियों का योगदान नगण्य है।

'समाजशास्त्र परिचय' पर हिन्दी में प्रारम्भिक लेखन रविन्द्रनाथ मुखर्जी, गोपाल कृष्ण अग्रवाल, रामनाथ शर्मा और हरिकृष्ण रावत आदि ने किया है। लेकिन इनके बाद के पाठ्य पुस्तक लेखक समाजशास्त्र विषय के स्तर को विषय के विकास के साथ ऊंचा नहीं उठा सके या कहा जाए कि विषय में ज्ञान वृद्धि के साथ नया ज्ञान इन पाठ्य पुस्तकों में नहीं जोड़ा गया। साल–दर–साल वही प्रकाशित होता रहा। राजस्थान में दो विद्वान प्रोफेसर– राम आहूजा और नरेन्द्र सिंघी और पटना विश्वविद्यालय के जे. पी. सिंह की पुस्तकें उच्च स्तरीय रही हैं और उन्हें विद्यार्थियों द्वारा पढ़ा भी जाता रहा है। हरिकृष्ण रावत का योगदान मौलिक एवं बहुआयामी है। शेष अनेक लेखकों द्वारा पाठ्य पुस्तकें लिखी जा रही हैं, लेकिन उनमें गहराई नहीं हैं। विश्लेषण का सर्वथा अभाव देखा जा सकता है। लिखी जा रही अधिकांश पुस्तकें परीक्षा में पास होने के लिए हैं। राजस्थान के प्रकाशक 1970–80 में 500–500 रूपए देकर पीएच.डी. करने वाले विद्यार्थियों से पासबुक, वनवीक और 'वनअवर' क्रम की पुस्तकें छपवाने लगे थे। आज परिणाम यह है कि विद्यार्थी पाठ्य पुस्तक न खरीदकर पासबुक खरीदते हैं।

योगेश अटल ने अध्यापन व्यवसाय के दौरान कई वर्षों तक लिखना चाहकर भी पाठ्य पुस्तक नहीं लिखी। लेकिन उन्होंने जॉनसन की लिखी पाठ्य पुस्तक सोश्योलॉजीः अ सिस्टेमेटिक इन्ट्रोडक्शन का हिन्दी अनुवाद तीन वर्ष की मेहनत के बाद 1970 में प्रकाशित करवाया। यह अनुवाद उस समय के विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों की आवश्यकता थी। इस हिन्दी अनुवाद को पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात आदि क्षेत्रीय भाषायी राज्यों में भी पढ़ा गया। वर्तमान (2012) में योगेश अटल ने 'सोश्योलॉजीः अ स्टडी ऑफ द सोशल स्फीयर' पियरसन प्रकाशन से प्रकाशित करवाई, जिसे उन्होंने हिन्दी में 'समाजशास्त्रः समाज की समझ' भी लिखकर प्रकाशित करवाया है। यह पाठ्य पुस्तक दोनों ही भाषाओं अंग्रेजी एवं हिन्दी लेखन में एक नया स्वरूप लिए है।

पाठ्य पुस्तक किसी सिद्धान्त पर निबंध नहीं है और ना ही किसी विद्वान के योगदान का मूल्यांकन। इसका उद्देश्य विषय में नवीन प्रवेशार्थी और रूचि रखने वालों का विषय से परिचय करवाना है। पाठ्य पुस्तक, विषय को समझने में मार्गदर्शन भी करती है। मूलतः यह समाजीकरण का एक यंत्र है जो विषय में प्रारम्भिक स्तर पर प्रवेश करने वालों को समाजशास्त्र की विभिन्न अवधारणाओं से परिचित करवाता है। अच्छे लेखन का कार्य एक अच्छा अनुभवी समाजशास्त्री ही कर सकता है। पाठ्य पुस्तक किसी भी विशिष्ट विषय की विषयवस्तु में निहित मूल अवधारणाओं और आधारभूत सिद्धान्तों को सुव्यवस्थित या क्रमवार प्रस्तुत करने और प्रघटनाओं की विविधताओं को स्पष्ट करने और समझने में सहायक होती है।

यह कार्य मात्र परिपक्व विद्वान ही अच्छी तरह कर सकता है। स्पष्टतः कहा जाए तो पाठ्य पुस्तक लेखन अध्यापन में नवप्रविष्ट या अल्प अनुभवी प्राध्यापक अच्छी तरह सम्पादित नहीं कर सकता। एक अच्छी पाठ्य पुस्तक लिखने के लिए वर्षों के अध्यापन का अनुभव और विषय से सात्मीकरण की आवश्यकता होती है। उसके बाद ही लेखक नवीन प्रवेशार्थियों या अध्ययनकर्ताओं को विषय का सरल, सुस्पष्ट एवं व्यवस्थित परिचय दे सकते हैं। योगेश अटल ने अपनी पहली पाठ्य पुस्तक में लिखा भी है कि ''70 वर्षों के लम्बे अनुभव के बाद अब (2012 मे प्रकाशित) मैंने यह पुस्तक लिखी है। मेरे पास कई प्रस्ताव वर्षों से आते रहे हैं, लेकिन मैंने अनुसंधान कार्य को प्राथमिकता दी।'' भारत में प्रतिबद्ध अध्यापक एवं गम्भीर विद्यार्थी विदेश में प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग करते रहे हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय समाजशास्त्रियों की अंग्रेजी एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखी पाठ्य–पुस्तकों में अध्ययन सामग्री मिल भी जाती है तो उनमें प्रयुक्त शब्दावली एवं कई बार वाक्य रचना विद्यार्थियों के लिए ही नहीं प्राध्यापकों के लिए भी दुरूह होती है।

समाजशास्त्र की सभी पाठ्य पुस्तकों एवं सम्बन्धित साहित्य को देखें तो इसके प्रारम्भ के योगदानों में संस्थापक जनक के लेखन को इतिहास के रूप में लिखा जाता रहा है, तत्पश्चात् यह 'विचारों के सम्प्रदाय' में उभरा अर्थात् समाजशास्त्र का अभ्यास करने वाले विभिन्न सम्प्रदाय के रूप में, और तीसरे स्तर पर यह निदर्शात्मक लड़ाई (Paradigmatic Battles) के रूप में स्थापित हुआ। धीरे–धीरे मुख्य अवधारणाओं, अन्वेषण की विधिशास्त्र और मध्यस्तरीय सिद्धान्तों की परिभाषा पर सहमति उभरने लगी। पाठ्य पुस्तक लेखकों का दायित्व है कि विशिष्ट विचारधारा या सैद्धान्तिक (दार्शनिक) दुराग्रहों से विद्यार्थियों की रक्षा करें और उन्हें समझाने व वैचारिक बहस करने के लिए प्रेरित करें। किसी विचारधारा या सिद्धांत के अंधभक्त न बनें।

पाठ्य पुस्तक इतनी सुलझी होनी चाहिए कि उसको पढ़ने के पश्चात् पाठक में अध्ययन विषय की सूक्ष्म दृष्टि विकसित हो सके। पाठ्य पुस्तक एक ऐसी ठोस आधारशिला प्रदान कर सके जो विषय की विशिष्ट शाखाओं में विशेषज्ञता विकसित करने में सहायक हो सके। यह विद्यार्थियों को विभिन्न उपागमों एवं पेराडाइम से इस प्रकार परिचित करवाने में समर्थ हो जिससे इन्हें स्वीकार या अस्वीकार किया जा सके।

पाठ्य पुस्तक के लेखन में विभिन्न विचारधाराएं एवं सिद्धान्तों का वर्णन एवं विश्लेषण देखते हैं, लेकिन लेखन ऐसा होना चाहिए कि पाठक विचारधारा को लेकर अंधभक्त (Disciples) न हो जाए। सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्ष समाहित हों। इसको पढ़ने के बाद विद्यार्थियों में विवेचनात्मक विश्लेषण करने की योग्यता विकसित हो, आदर या श्रद्वा नहीं। उदाहरण के लिए 'अपराधशास्त्र' या 'अपराध का समाजशास्त्र' पाठ्य पुस्तक एक ओर अपराध व अपराध करने वालों को समझने और कानून व व्यवस्था बनाए रखने में सहायक होती है, तो दूसरी ओर अपराधियों को समझने में। पाठ्य पुस्तक दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी होनी चाहिए, तभी यह एक वैज्ञानिक विषय बन सकता है। इसे अच्छे या बुरे व्यवहार की नियमावली के रूप में नहीं होना चाहिए।

समाजशास्त्र में कई पाठ्य पुस्तकें हैं, अतः यह पूछना स्वाभाविक है कि और पाठ्य पुस्तकें क्यों? प्रत्येक विषय निरंतर ज्ञान वृद्धि की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विकसित होता है। वह वास्तविक ज्ञान के कोष में वृद्धि करता है, विशेषकर उसमें अध्ययन की जा रही प्रघटनाओं को समझने में अवधारणात्मक व्याख्याओं को समृद्ध करता है और अन्वेषण तथा प्रस्तुतीकरण की तकनीक को विकसित करता है। विकास का यह क्रम पुराने और यहां तक कि शास्त्रीय ज्ञान की प्रासंगिकता में कमी या बदलाव ला सकता है। हालांकि उनके ऐतिहासिक मूल्य एवं महत्त्व बने रहते हैं, कम नहीं होते।

समय के साथ संदर्भ बदलने लगता है और कुछ सामग्री अप्रासंगिक हो जाती है या अपना महत्त्व खो देती है। अतः वह पाठ्य सामग्री से बाहर हो जाती है और कई नए बिन्दू या विषय सामग्री जुड़ने लगती है। यह स्थिति इस बात की आवश्यकता पैदा करती है कि नए विषयों को परिवर्तन के साथ जोड़ा जाए एवं पुरानी और अप्रासंगिक विषय सामग्री को पाठ्यक्रम से हटा दिया जाए। ऐसे समय में नई पाठ्य पुस्तक या पुरानी पाठ्य पुस्तक के नवीन संस्करण की आवश्यकता होती है।

मकाइवर एवं जॉनसन की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। अब मैं विलियम एफ. ऑगबर्न एवं मेयर एफ. निमकॉफ द्वारा लिखित पुस्तक (1958) के तृतीय संस्करण (18 वर्ष बाद 1976) को उद्दृत करना उपयुक्त समझता हूं। इसके आमुख में वे लिखते हैं कि – ''वर्तमान में ज्ञान का विस्तार तेजी से हो रहा है। अतः ज्ञान अपार है। प्राकृतिक विज्ञानों के विस्तार के साथ ही समाज विज्ञानों के ज्ञान में भी विस्तार हो रहा है, विशेषकर भूगोल, मानवशास्त्र और राजनीति विज्ञान में। इसी प्रकार समाजशास्त्र पाठ्यक्रम के क्षेत्र का विस्तार पा रहे अध्ययन क्षेत्र को भी विचार या अवधारणा तक सीमित नहीं रखा जा सकता। समाजशास्त्र में पाठ्य पुस्तक की मूल आवश्यकता विद्यार्थियों को ज्ञान देना है ताकि कोई भी व्यवसाय हो। समाजशास्त्र से प्राप्त ज्ञान काम आए। ज्यादातर विद्यार्थी जो समाजशास्त्र विषय लेते हैं उनमें से कुछ व्यावसायिक समाजशास्त्री बनते हैं। सभी को यह जानने की आवश्यकता होती है कि सामाजिक विश्व में चतुराई से कैसे रहना है और सामाजिक समस्याओं से सामना किस प्रकार करना है। यह विषय पाठकों को सामाजिक जीवन और मुद्दों से मुकाबला करने के लिए संतुलित परिप्रेक्ष्य या दृष्टि देता है।'' समाजशास्त्र के सि़द्धान्तों को विस्तार देने के लिए सभी सामाजिक विज्ञानों से अन्तःसंबंध जोड़ने की बात ऑगबर्न व निमकॉफ ने 1950 में की थी। आज यह अधिक प्रासंगिक हो चुकी है।

भारत में विषय का परिचय करवाने वाली पुस्तकें एक निश्चित परम्परा के आधार पर प्रकाशित होते देखते हैं। देश की आजादी के बाद से आज 21 वीं शताब्दी की दूसरी दशाब्दी तक भी समाजशास्त्र की पाठ्य पुस्तकों की विषय–सामग्री एवं उसके प्रस्तुतीकरण में (शैली में) वही एकरसता विद्यमान है। इस एकरसता को तोड़ने का कार्य योगेश अटल की सोश्योलॉजी– अ स्टडी ऑफ द सोशॅल स्फीयर (2012) में देखा जा सकता है। उसमें वैश्विक गंध है। उन्होनें जगह–जगह पर चित्र एवं रेखाचित्र, भारतीय विद्वानों (समाजशास्त्रियों) के चित्र, फोटोग्राफ, अपेण्डिक्स और नोट्स, बॉक्स, आदि (समझने के लिए जहां जो भी उपयुक्त था) दिए हैं।

भारत और पश्चिमी देशों में समाजशास्त्र की पाठ्य पुस्तकों में अन्तर है। प्रारम्भिक दौर में, ऑगबर्न एवं निमकॉफ की प्रसिद्ध पुस्तक अ हेन्डबुक ऑफ सोश्योलॉजी (1947) की बात करें तो उसमें 26 अध्याय थे और हर अध्याय में यथासंभव फुटनोट्स, रेखा चित्र, सारणियां आदि थीं। हर अध्याय में सारांश अवश्य था एवं कुछ प्रश्न और अन्य अध्ययनों के संदर्भ थे। भारत में प्रारम्भिक पुस्तकों में यह सब था। लेकिन धीरे–धीरे यह बहुत ही सीमित रह गया और विशेषकर हिन्दी पाठ्य पुस्तकों में। आलेख के इस हिस्से में हम पश्चिमी जगत में प्रकाशित एवं प्रतिष्ठित कुछ पाठ्य पुस्तकों की दो स्तर पर बातें करेंगे। प्रथम, कुछ लेखकों की पुस्तकों की विशेषता और द्वितीय, लेखकों द्वारा एक ही पुस्तक के विभिन्न संस्करणों की विशेषता।

इन दोनों तरीकों के विश्लेषण से हमें यह पता लगेगा कि भारत और अमेरिका की पाठ्य पुस्तकों में क्या अंतर है? भारत में 1950 से आज 2018 तक की 68 वर्षों में हुए राष्ट्रीय विकास को देखा है लेकिन भारत में लिखी गई समाजशास्त्र की पुस्तकों की विषय–वस्तु अब भी लगभग वही है। शायद जो हमारे प्राध्यापकों ने पढ़ा वही हमने भी पढ़ा और लगभग वही हमारे बाद की पीढ़ियां पढ़ रही हैं। कुछ अध्याय कुछ लेखकों ने नए जोड़े हैं। समस्या यह है कि प्रोफेसर स्तर के कुछ समाजशास्त्रियों को छोड़ दें तो किसी (प्रोफेसर) ने पाठ्य पुस्तक लिखना उचित नहीं समझा, विशेषकर हिन्दी में विद्वान प्रोफेसर द्वारा पाठ्य पुस्तक लेखन को हेय दृष्टि से देखा गया है। ज्यादातर पाठ्य पुस्तकें अल्प अनुभव वाले एवं सहायक प्राध्यापकों द्वारा लिखी गई हैं।

अब हम उपर्युक्त दो बिन्दुओं की चर्चा करते हैं। मैं कुछ अमेरिकी लेखकों की पाठ्य पुस्तकों की चर्चा करूंगा, जिन्हें संदर्भ पुस्तक के रूप में भी सम्पूर्ण विश्व के समाजशास्त्री उद्घृत करते हैं। ऑगबर्न एवं निमकॉफ (1947) की पुस्तक अ हैण्ड बुक ऑफ सोश्योलॉजी अपने समय की बेहतरीन पुस्तक थी और उसके कई प्रकाशन एवं संस्करण प्रकाशित हुए। मकाइवर एवं पेज की पुस्तक सोसायटीः एन इन्ट्रोडक्टरी एनेलिसिस 1950 में पहली बार प्रकाशित हुई। उसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। भारत में पहली बार इसका प्रकाशन 1974 में हुआ। तत्पश्चात् कई संस्करण 2001 तक भारत में प्रकाशित हुए एवं बिके। राबर्ट बियरस्टीड ने द सोशल आर्डर पहली बार 1957 में प्रकाशित की और वह पसंद की गई। तत्पश्चात् हैरी एम. जॉनसन की पुस्तक सोश्योलॉजी 1960 में आई जिसका हिन्दी अनुवाद 1970 में भारत में कई संस्करणों में बिका। रिचर्ड शेफर की पुस्तक सोश्योलॉजी का पहला संस्करण 1983 में प्रकाशित हुआ और अब 13वां संस्करण प्रकाशित हो चुका है। जोआन फेरांते की पुस्तक सोश्योलॉजीः अ ग्लोबल पर्सपेक्टिव का 2014 में नवां संस्करण प्रकाशित हो चुका है। प्रथम प्रकाशन 1992 में हुआ था। इसी तरह मेकिओनिस और प्लमर की पुस्तक सोश्योलॉजी– अ ग्लोबल इन्ट्रोडक्शन 1997 में प्रकाशित हुई और विद्यार्थियों को बेहद पसंद आई। वर्तमान (2014) में इसके पांच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सर्वोत्तम की श्रेणी में पांच सितारा प्राप्त है और अब यह पुस्तक (2014) भारत में पियरसन प्रकाशन ने प्रकाशित की है। इसी प्रकार बहुत सी और भी पुस्तकें हैं जो अमेरिका में प्रसिद्ध हैं। लेखक जिस विश्वविद्यालय में होता है वहां उसकी पुस्तक नहीं चलाई जाती। दूसरे विश्वविद्यालयों में वह पाठ्य पुस्तक के रूप में चलती है और प्रत्येक विद्यार्थी उसे खरीदता है या विश्वविद्यालय से लेकर पढ़ता है। महाविद्यालय के बुक सेंटर से अमेरिका के अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग लेखकों की पुस्तकें चलती हैं। यह विभाग के सदस्य, चेयरमेन और पढ़ाने वाला प्राध्यापक तय करता है कि कौनसी पुस्तक चलानी है, जो बेहतर है।

अब हम पुस्तकों में अन्तर्वस्तु की बात करेंगे लेकिन यह बात हम संशोधित एवं अद्यतन (Revised and Updated) संस्करण को ध्यान में रखकर करेंगे। मैं जोआन फेरांते की बात करना चाहता हूं। यह सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री लेखिका 'नोर्दर्न केनटकी' विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। वे कहती हैं कि मैंने यह पुस्तक अपने विद्यार्थियों की समझ एवं योग्यता बढ़ाने के लिए ही नहीं लिखी वरन् मैं उन्हें वैचारिक स्तर पर उन की विवेचनात्मक विश्लेषण करने की क्षमता में भी वृद्धि होते देखना चाहती हूं। उनकी इस पाठ्य पुस्तक में प्रत्येक अध्याय वैश्विक परिप्रेक्ष्य में लिखा और विश्लेषित किया गया है। वे हेरियट मार्टिनी (1802–1836) एवं ड्ब्ल्यू.ई.वी.ड्यूबॉय (1868–1963) दोनों के योगदान की बात करती हैं। दोनों समाजशास्त्री व सामाजिक कार्यकर्ता थे और दोनों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। फेरांते की पुस्तक में कुल 16 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में किसी–न–किसी देश को आधार बनाकर वैश्विक परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है।

पुस्तक का प्रथम अध्याय 'सोश्योलॉजिकल इमेजिनेशन' पर है जो समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य को

समझाता है। जोआन फेरांते बताती हैं कि 2001–2002 की उनकी प्रथम कक्षा में 133 छात्र थे और उनसे उन्होंने तीन प्रश्न पूछे। प्रथम, क्या आपके पास अपना सेलफोन है? दूसरा, अगर हां, तो इसे खरीदने का निर्णय क्यों लिया? और तीसरा, वे कौन तीन लोग हैं जो आपको सबसे ज्यादा फोन करते हैं? 133 मे से 109 (82:) के पास सेलफोन थे और ये उन्होंने गाड़ी चलाना प्रारम्भ किया, उसके बाद खरीदे। सबसे ज्यादा फोन इनके पास इनके मित्रों, मां और सबसे अच्छे मित्रों के आते थे, उसके बाद बॉयफ्रेन्ड, गर्लफ्रेन्ड और पिता के।

फेरांते की यह पूछने की रूचि इसलिए थी कि वे जानना चाहती थीं कि इन उपकरणों का बहुत दूर स्थित देश 'डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कोंगो (डी.आर.सी.)' से क्या संबंध है? यूनाइटेड नेशन्स सीक्योरिटी कोंसिल की 2001 की रिपोर्ट में डी.आर.सी. के सदस्य सात अफ्रीकी देशों में प्राकृतिक स्त्रोतों की धातुओं का विस्तृत स्तर पर दोहन अमेरिका और अन्य यूरोपीय देश (विशेषकर फ्रांस) कर रहे थे। परिणामस्वरूप एक युद्ध हुआ। इसमें एक प्रमुख धातु टेंटेलम भी है, जो यहां प्रचुर मात्रा में खानों से निकाली जाती है। जिसका प्रयोग सेलफोन निर्माण में होता है। डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कोंगो के लोग इसे अफ्रीका का प्रथम विश्व युद्ध कहते हैं। इस भूमिका के बाद फेरांते 'कष्ट' और 'मुद्दे' पर आती हैं। यानि व्यक्तिगत एवं सामाजिक पक्षों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझाती हैं। अध्याय का प्रारम्भ तथा आगे का विवरण इसी प्रकार विद्यार्थियों को समझाने के लिए प्रयोग करती हैं। यह तरीका सभी अध्यायों में प्रयुक्त करती हैं और प्रत्येक अध्याय अलग–अलग देशों के उदाहरण से जुड़ा है।

एक और उदाहरण 'सामाजिक संगंठन' के अध्याय–5 का देना उपयुक्त रहेगा। इसमें इन्होंने मेकडोनाल्ड के उदाहरण को आधार बनाया है। वृहत् एवं अंतर्राष्ट्रीय बहुउद्देशीय कोर्पोरेशन के उद्भव, संरचना, विकास और कार्यों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है। मेकडोनाल्ड का मुख्यालय अमेरीका में (ऑकब्रूक, इलिनोइस) स्थित है। मेकडोनाल्ड की श्रृंखला 121 से अधिक देशों में फैली है। इसकी 27,699 से ज्यादा इकाइयां पूरे विश्व में हैं। 1955 से प्रारम्भ हुए, इस कॉर्पोरेशन में प्रतिदिन लगभग 450 लाख लोग खाने आते हैं (वर्ष में 1 अरब 61 करोड़)। इसमें विश्वभर मे 11 लाख 50 हजार लोग कार्य करते हैं। इसी प्रकार वॉल मार्ट भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का वृहद् संगठन है।

जनसंख्या वाले अध्याय में भारत को आधार बनाया है। इसमें चीन की बात भी की है और अमेरिका से तुलना की है। यानि फेरांते ही नहीं अमेरिका, इंग्लैण्ड, यूरोप, केनेडा एवं आस्ट्रेलिया आदि में प्रचलित पाठ्य पुस्तकें वर्तमान में वैश्विक परिप्रेक्ष्य लिए हैं। ऊपर वर्णित विषय–वस्तु के अतिरिक्त प्रत्येक अध्याय में संबंधित एण्ड नोट्स, फोटोग्राफ्स, रेखाचित्र व चित्र, थिंकिग क्रिटिकली, सारणियां, नक्शे, फर्दर रीडिंग्स, इंटरनेट लिंक्स आदि के अलावा प्रत्येक पाठ्य पुस्तक की वेब साइड्स, विजुअल एक्सप्रेशन्स, पावर पोइंट, आनलाईन सम्पर्क आदि की सुविधा भी होती है। फेरांते की तरह कई लेखक 'टेस्ट बैंक' और 'टीचिंग गाइड' (प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों) भी उपलब्ध करवाते हैं। अर्थात् पाठ्य पुस्तक लेखक पाठ्य पुस्तक के प्राध्यापकों के लिए टीचिंग गाइड एवं पावर पोइंट स्लाइड और विद्यार्थियों के लिए टेस्ट बैंक एवं नेटवर्क के अलग से देते हैं। कई बार ये प्रोफेसर्स 'आनलाईन' उपलब्ध होकर विद्यार्थियों की समस्याओं का भी समाधान करते हैं।

ये विशेषताएं गिडन्स और मेकिओनिस व प्लमर की पुस्तकों में भी विद्यमान है वरन् उन सभी पाठ्य पुस्तकों में है जिनके कई–कई संस्करण एवं संशोधित संस्करण छप चुके हैं। संस्करण तो वास्तव में पुनर्मुद्रित होता है जबकि संशोधित संस्करण में कुछ अध्याय समकालीन महत्त्व के आधार पर जोड़े जाते हैं और शेष अध्यायों का पुनर्लेखन किया जाता है। फेरांते, गीडन्स एवं मेकिओनिस व प्लमर की पाठ्य

पुस्तकें इसी श्रेणी में आती हैं।

गिडन्स कहते हैं कि सोश्योलॉजी पुस्तक लिखने का उद्देश्य समाजशास्त्रियों की नई पीढ़ी को उत्साहित करना है और उसके लिए कुछ बहुत उत्तेजित करने वाले सामजशास्त्रीय अनुसंधानों को (जो विविध प्रकार के विषय क्षेत्र से हैं) सम्मिलित किया गया है, लेकिन पाठ्य पुस्तक में समाजशास्त्रीय अवधारणाओं का अत्यधिक अमूर्त विचार–विमर्श नहीं किया गया। इसमें विचारों को उद्धृत किया है, अवधारणाओं और सिद्धान्तों को ठोस उदाहरण देकर समझाया है, जिन्हें विभिन्न समाजशास्त्रीय अध्ययनों एवं अन्य स्त्रोतों से लिया है। साथ ही शाब्दिक जाल से बचा गया है। पुस्तक के लेखन में क्रमबद्धता एवं लय का ध्यान रखा गया है। लेकिन फिर भी पाठक इसे अपनी सुविधा या रूचि के अनुसार अध्ययन में लचीलापन देखेगा। प्रथम अध्याय के पश्चात् अपनी रूचि के अनुसार किसी भी अध्याय को पढ़ा जा सकता है। क्रमबद्धता अनिवार्य नहीं है।

गिडन्स द्वारा संशोधित दूसरे, चौथे और सातवें संस्करण को तुलनात्मक रूप से देखें तो कुछ परिवर्तन देखते हैं। उन्होने सभी अध्यायों को न सिर्फ नए तरीके से लिखा है वरन् कई जगह नए उदाहरण देकर समझाया है। अध्यायों के क्रम भी परिवर्तित किए हैं। स्तरीकरण एवं वर्ग सरंचना (अध्याय 7) की जगह 'सामाजिक असमानता' अवधारणा का प्रयोग किया है। 'इथनिसिटी एंड रेस' अध्याय–8 में 'स्थानान्तरण' अवधारणा को जोड़ा गया है। 'ग्रुप्स व आर्गेनाईजेशन' अध्याय–9 में 'आधुनिक संगठन एवं नेटवर्क' जोड़ा है। द्वितीय संस्करण के बाद चतुर्थ संस्करण में उन्होंने कुछ नए अध्याय जोड़े हैं, जिनमें 'प्रोपर्टी, वेलफेयर एवं सोशल एक्सक्लूजन', 'एजिंगः चेंजिंग वर्ल्ड' महत्त्वपूर्ण हैं जबकि सातवें संस्करण में 'आस्किंग एण्ड आन्सरिंग सोशियोलॉजिकल क्वेस्चन्स', ग्लोबल इनइक्वलिटी और 'नेशन, वार एण्ड टेरेरिज्म' समकालीन विषय जोड़े गए हैं।

इसी प्रकार जान मेकिओनिस और केन प्लमर की पाठ्य पुस्तक सोश्योलॉजीः अ ग्लोबल इन्ट्रोडक्शन की बात करें तो यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों लेखकों ने प्रत्येक अध्याय का पुनः लेखन कर वर्तमान संदर्भ में लिखा है और चार नए अध्याय जोड़े हैं। ये अध्याय हैंः 1. थिंकिंग सोश्योलॉजिकली, थिंकिंग ग्लोबली, 2. ग्लोबल प्रोपर्टी/ग्लोबल इनइक्विलिटी, 3. साइंस, साइबर स्पेस एण्ड द रिस्क सोसाइटी, और 4. लिविंग इन द 21st सेंचुरी।

इस प्रकार बहुत ही सारांश में बताया जाए तो पश्चिमी देशों में लिखी गई पुस्तकों की अन्तर्वस्तु का ढ़ांचा विस्तृत, स्थानीय एवं वैश्विक है। प्रत्येक अध्याय में समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य या समाजशास्त्रीय दृष्टि स्पष्टतः नजर आती है। 'समाजशास्त्रीय परिचय' वाली पुस्तकें इस विषय का प्रवेश द्वार हैं जहां से हम विषय में प्रवेश करते हैं और आगे उच्च स्तरीय गम्भीर सैद्धान्तिक एवं वैज्ञानिक सोच को पुख्ता करती है। पुस्तकों की विशेषता मात्र विषय की अन्तर्वस्तु में ही नहीं है, वरन् वह विद्यार्थियों के लिए सुग्राह्य भी है। समाजशास्त्रीय विद्वान (लेखक) विषय के साथ ही छात्रों की योग्यता, कुशलता, समझ एवं विश्लेषण के लिए मेहनत करते हैं। वे न सिर्फ प्रश्न बैंक देते हैं और ऑनलाईन उपलब्ध रहते हैं वरन् विद्यार्थियों की प्रत्येक समस्या का समाधान करते हैं। साथ ही अध्यापकों के लिए पावर पाइंट एवं अध्यापक गाइड भी तैयार करते हैं। दक्षिणी भारत के कुछ विश्वविद्यालयों में इन पुस्तकों का प्रयोग होने लगा है। यह इस बात से स्पष्ट है कि गीडन्स की पुस्तक का सातवां संस्करण और मेकिओनिस और प्लमर की पुस्तकों के भारतीय प्रकाशन अब भारत में उपलब्ध हैं। अब कमी है तो उन भारतीय घटनाओं को इन पुस्तकों में जगह देने की जो समाज को प्रभावित कर रही हैं। उदाहरण के लिए नोटबन्दी, यौन उत्पीड़न एवं अपराध आदि–आदि।

References

Atal, Yogesh. 2012. Sociology : *A Study of The Social Sphere.* NewDelhi: Pearson

Bierstedt, Robert. 1970/1957. *The Social Order.* , New Delhi: Tata McGraw-Hill.

Ferrante, Joan. 2003. Sociology: *A Global Perspective*, USA: Wadsworth (Thomson).

Fleming, Donald. 1986. *Glimpses of Harvard Past.* Harvard, USA.

Giddens, Anthony. 1993/1989. *Sociology* , Polity, U.K.

Giddens, Anthony. 2001/1993/1989. *Sociology* , Polity Press.

Giddens, Anthony and Philip W. Souten (eds.). 2013. *Sociology (Indian Edition)*. New Delhi: John Wiley and Sons.

Macionis, John J and Ken Plummer. 2014/2012/1997. *Sociology: A Global Introduction*. New Delhi : Prentice Hall Inc.

MacIver, R.M. and Charles H. Page, 2001/1950. *Society: An Introductory Analysis*. Delhi: Macmillan.

Merton, Robert K. 1960. "Forward", in *Sociology* by H.M. Johnson , New York.

Ogburn, Willian F. and Meyer F. Nimkoff. 1972/1966. *A Handbook of Sociology.* New Delhi: Eurasia Pulishing House.

दोशी, एस. 1970. सामाजिक मानवशास्त्र, दिल्लीः हिमांशु

दुबे, एस. 2016. मानव और संस्कृतिः सांस्कृतिक मानवविज्ञान की परिचयात्मक रूपरेखा, जयपुरः राजकमल

जॉनसन, हैरी 1970. समाजशास्त्र, अनुवादित– योगेश अटल, दिल्लीः कल्याणी

मजुमदार, डी. एन. और मदान, टी. एन. 1985. सामाजिक मानवशास्त्र परिचय, हिन्दी अनुवादित, नई दिल्लीः नेशनल

प्रोफेसर मधुसूदन त्रिवेदी, 173 नवरत्न कॉम्पलेक्स, बेदला रोड, उदयपुर

mstrivedisocio@gmail.com

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

गणगौरः परंपरा और सांस्कृतिक स्वीकृति का एक प्रतीक

श्याम एस. कुमावत

सारः सामाजिक इतिहास के संदर्भ उन लोकरीतियों, जनरीतियों तथा विश्वासों के साथ जुड़े रहे हैं, जो परंपराओं के संदर्भ में आज जोड़े जाते हैं। परम्पराएं वे प्रचलन और व्यवहार हैं, जिनकी मान्यता उनके व्यवहारों, मान्यताओं ओर प्रवजन की स्वीकारोक्तियों के साथ जुड़े हुए होते हैं। इनकी अभिव्यक्तियां हैं और मान्यताएं हैं। लोक की स्वीकारोक्तियां भी हैं। प्रायः ये अभिव्यक्तियां लोकगीतों, लोकनाट्यों, पारंपरिक लोक कथाओं, नाट्यों तथा इसी प्रकार की कई अभिव्यक्तियों से स्पष्ट होती हैं। राजस्थान की गणगौर इसी प्रकार की अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत लेख इसी अभिव्यक्ति 'गणगौर' की व्याख्या है।

संकेत शब्दः लोकरीति, स्त्री–केन्द्रित पूजा, सांस्कृतिक प्रचलन, लोकनाट्य, देवता।

लोकरीतियां न केवल किसी क्षेत्र को पहचान देती हैं बल्कि वे उसकी संस्कृति का परिचायक भी हैं। यह प्रश्न उठाया गया है कि भारतीय या किसी भी क्षेत्रीय संस्कृति के स्त्रोत क्या संभव हैं? कोई भी सांस्कृतिक तत्त्व अपने–आप नहीं उपजता। उसके निर्मति के स्त्रोतों को समझा जाना चाहिए। यह सामाजिक परिवेश पर भी निर्भर करता है कि किस प्रकार की परंपराएं तथा सांस्कृतिक समझ किसी पंरपरा अथवा सांस्कृतिक स्वीकारोक्ति में निहित है। प्रायः संस्कृति के आधार मिथकीय तथा रहस्यात्मक होते हैं। इन्हीं मिथकों से पटकथाएं गढ़ी गई हैं और उन्हें कल के अन्य आधारों के साथ जोड़ा गया है (मुखर्जी, 1948)। ये आधार ही सामाजिक प्रक्रियाओं की रचना भी करते हैं। किन्हीं संदर्भों में यह लोक अभिव्यक्ति इतिहास भी है और पहचान भी, तथा कभी–कभी समाज की अस्मिता का साधन भी बन जाती है (भारतीय, 2014)।

संस्कृति के दो सबल पक्ष हैं– शिष्ट संस्कृति व लोक संस्कृति। दोनों संस्कृतियां एक–दूसरे से प्रभावित रहती हैं। जो लोक जीवन में है, उसमें परिष्कार करते हुए शास्त्रसम्मत बनाकर शिष्ट संस्कृति अपना स्वरूप निर्धारित करती है। जो शास्त्रों में हैं, शिष्ट संस्कृति है, उसे अवचेतन में रख, लोक संस्कृति का सृजन होता रहता है। लोक जीवन और लोक संस्कृति की जड़ें माटी से जुड़ी होती हैं पर शिष्ट संस्कृति से सम्बद्ध भी रहती हैं। लोक संस्कृति लोक तरंगों का कोलाज होती है। उसमें लोक संस्कार, लोक परम्पराएं, लोक विश्वास, लोक साहित्य और लोक उत्सव के विविध रूप– लोकगीत, लोक संगीत, लोक नाट्य और लोक कला सभी कुछ होते हैं–जीवंत और अत्यंत गतिशील। इन्द्रदेव (1985) ने अपने लेख में लोक संस्कृति एवं लोक महोत्सव का उद्‌गम कृषक समाज की मौखिक परम्पराओं में माना है। मुखर्जी (1942) का विचार है कि हम परम्पराओं से कभी भी मुक्त नहीं हो सकते। हमारे गांव–गांव, ढ़ाणी–ढ़ाणी परम्पराओं से इस भांति बंधे हुए हैं कि इनसे अलग होना हमारे लिए सम्भव नहीं है। मुखर्जी ने परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। दुबे ने अपने लेख 'लोक परम्परा और लोक संस्कार' (2003) में लिखा हैं कि लोक एक परम्परा है। परम्परा सतत विकसित मूल्य–बोध है। इसके सातत्य में सृजनमूलक समस्त अनुष्ठान अगली पीढ़ी के लिए हस्तांतरित होते रहते हैं और पीढ़ी–दर–पीढ़ी इसमें कुछ नया जुड़ता रहता है। परम्परा का विकास एक तरह से सांस्कृतिक समुन्नयन भी है, इसलिए यह एक क्रियाशील जीवित प्रणाली है, जो सामाजिक प्रकार्यों को गति देती है (रेडफील्ड, 1955)।

राजस्थान की सांस्कृतिक बनावट में गणगौर, विशेष रूप से स्त्रियों के लिए, एक उत्साहपूर्ण

त्योहार है (चुण्डावत, 1994)। यह उत्सव मुख्यतः महिलाओं द्वारा आयोजित तथा संचालित होता है। लोक महोत्सव 'गणगौर' मेवाड़ की परम्परा एवं सांस्कृतिक थाती से जुड़ा हुआ है। तीज त्योहारों वाले मेवाड़ में गणगौर पर्व शीर्षस्थ है। यह राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत का भी प्रतीक है। राजस्थान के अलावा उत्तर भारत, विशेषकर मध्यप्रदेश में भी यह पर्व मनाया जाता है। 'गण' शिव को कहते हैं और 'गौरी' उनकी पत्नी पार्वती का नाम है जो दांपत्य का प्रतीक है। आदर्श महिला के प्रति भक्ति और आदर ही इस पर्व की अभिव्यक्ति है। लोकजीवन में अब गणगौर का अर्थ केवल पार्वती तक ही सीमित रह गया है। शिव की जगह यहां 'ईसर' शब्द प्रचलित है, अतः अब गण–गौर की जगह गणगौर–ईसर शब्द ही सुनने को मिलता है। गणगौर संबंधी लोकगीतों तथा कथा किवंदतियों में गणगौर के कई नाम सुनने को मिलते हैं। इन नामों में गौर, गिणगौर, गवरल, गौरल, गवरजा, गवर, गौरा, गऊर, गौरज्या, गवरदि, गवरी आदि नाम मुख्य हैं।

उत्पत्ति की कथा

गणगौर पूजा कब प्रारम्भ हुई इस संबंध में ठीक–ठीक कोई ज्ञातव्य नहीं मिलता परन्तु शिव–पार्वती की पूजा की परम्परा हमारे यहां अति प्राचीन काल से चली आ रही हैं। गौरी की निष्ठा एवं उसका पतिव्रत धर्म देखकर ही शिव ने उनका पति होना स्वीकार किया था। उन्होने शिव को पतिरूप में पाने के लिए कठोर तपस्या की थी। उन्हें तपस्या से विचलित करने के लिए उनकी परीक्षा ली गई थी जिसमें वे सफल रहीं। यह त्योहार अनादिकाल से ही राजस्थान एवं उत्तर भारत की विवाहित महिलाएं और कुंवारी कन्याएं मनाती रही हैं। कुंवारी कन्याएं सुशील पति की कामना और विवाहित स्त्रियां अपने पति के स्वास्थ्य, लंबे जीवन और कल्याण की कामना करती हैं।

राजस्थान में कुमारियों का ऐसा विश्वास है कि इस व्रत को करने पर उनको श्रेष्ठ पति मिलेगा। लोकगीतों में यहां तक वर्णन मिलता है कि यदि तू रूठी हुई कन्या इस त्योहार को मनाएगी तो तुझे रूठा पति मिलेगा। सधवा (विवाहित) स्त्रियों का यह विश्वास रहता है कि उनका पति चिरायु होगा। विधवाओं का इस समारोह में भाग लेना निषिद्ध है। नवविवाहित स्त्री के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि वह सोलह दिन तक पर्व के नियमों का पालन करे। नवविवाहिताएं गौर बिनौला निकालती हैं। वे अपनी साथिनों को भोजन के लिए आमंत्रित करती हैं साथ ही वे छह, आठ या दस कुंवारी कन्याओं को बबूल का दातून भेजकर भोजन के लिए निमंत्रण भेजती हैं। वे उसके साथ पूजा के दौरान मौजूद रहती हैं। मुख्य पूजक को मिलाकर सभी पूजकों की संख्या विषम होनी चाहिए। सालों–साल प्रसाद चढ़ाए जाते हैं। यह व्रत के लिए निर्धारित अवधि तक चलता रहता है। यह त्योहार बड़ी उमंग और उत्साह से मनाया जाता है। चैत्र कृष्ण पक्ष अष्ठमी से घुड़ला, उत्सव होता है, जिसमें कुम्हारिन के घर से छेदों वाली मटकी में दीया रखकर महिलाएं गीत गाती हुई साथ चलती हैं। इसी दिन घरों से बालिकाएं और किशोरियां, जौ–गेहूं बोकर जवारों के रूप में अपने हाथों से फसल का रोपण करती हैं। जौ–गेहूं के किसलय नव अंकुर को जवारा कहते हैं। पौराणिक और धार्मिक दृष्टि से भी इन जवारों का बड़ा महत्त्व और उपयोग रहा है। नवरात्रि पूजन, गंगोत्सव, पथवारी पूजन, गंगोज, गौरीपूजन जैसे मांगलिक महत्त्व के कार्यों में जवारे शुभ, कल्याणकारी तथा आरोग्यमूलक समझे गए हैं (वर्मा, 1957)।

गणगौर का सिंझारा (दांतणहेला): गणगौर के पहले वाले दिन को 'सिंझारा' कहते हैं। गौर के त्योहार पर चूड़ा और चूनड़ी अत्यन्त आवश्यक है। इस अवसर पर विवाहित स्त्रियों को उनके माता–पिता सिंझारा (पूजा के लिए वस्त्र एवं भेंट) भेजते हैं। सधवा स्त्रियां अपने पति के घर रहने की आशा करती हैं। इस दिन महिलाएं और किशोरियां अपने हाथ–पांवों में मेहन्दी लगाती हैं। मेहंदी मांडनों में प्रायः वे ही अंकन उभारे जाते हैं जो गणगौर से संबंधित होते हैं। महिलाएं गणगौर की पूजा चूंदड़ पहनकर करती हैं तो मेहंदी में भी यही चूंदड़, भात बनाया जाता है। इस दिन घेवर, शक्करपारा, गुणों का

जोड़ जैसे मिष्ठान बनाए जाते हैं। मेहंदी में भी इन्हें मंडित किया जाता है। चौपड़ इस त्योहार का मुख्य खेल है, अतः यह चौपड़ हथेलियों में भी बनाया जाता है। मेवाड़ में यह दिन बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता हैं यहां इसे दांतणहेला का दिन भी कहते हैं। संध्या को औरतें नए परिधानों तथा आभूषणों से सजी गीत गाती हुईं तालाब की पाल पर जाती हैं, जहां हथगोड़ में खेलती, नाचती मनोविनोद करती हैं। घर लौटते समय वे अपने–अपने हाथों में आम की छोटी–छोटी डालियां ले जाती हैं। ये डालियां आम का दांतण (दतौन) कहलाती हैं। इसी दांतण को गणगौर के मुंह पर लगाकर उसके दातून करने की रस्म पूरी की जाती हैं।

मेवाड़ की राजशाही गणगौर सवारीः गणगौर का एक सामंतवादी स्वरूप मेवाड़ की गणगौर से मिलता है। मेवाड़ में छठी शताब्दी से गौरी पूजा के प्रमाण मिलते हैं। मेवाड़ के शिलालेखों में, राजमहलों में इस पर्व को मनाने के प्रमाण 17वीं शताब्दी के मिलते हैं। चैत्र शुक्ला तृतीया से छठ तक गणगौर त्योहार मनाया जाता हैं। मेवाड़ में यह त्योहार उदयपुर, नाथद्वारा तथा गोगुन्दा में विशेष रंगोल्लास के साथ मनाया जाता है। उदयपुर की गणगौर की विशेषता एवं प्रसिद्धि महाराणाओं की भव्य एवं कलात्मक सवारी के कारण जानी जाती थी। इसे देखने के लिए विभिन्न रियासतों के राजशाही अतिथियों को भी आमंत्रित किया जाता था, साथ ही दूर–दराज के लोग भी उमड़ पड़ते थे। गणगौर पर्व पर प्रतिदिन सायंकाल चारों दिनों तक राजशाही सवारी निकाली जाती थी। इसका वर्णन करते हुए भाणावत (1977) लिखते हैं–

''इसमें सबसे आगे निसांण का हाथी रहता था जिस पर एक व्यक्ति निसांण लिए बैठा रहता। यह निसांण पताका के रूप में सुनहरी रंग की जरी का होता है जिस पर सफेद कपड़े के चांद तथा सूरज लगे होते थे। इस हाथी के पीछे बैंड वाले गणगौर गीतों की धुनें बजाते हुए चलते थे। इनके पीछे राईफलें लिए पलटन होती थी। इनके बाद हाथी पर सवार दरबार के हाजरवासी होते। प्रत्येक हाथी पर फारकी कसी हुई होती जिसमें चार–चार व्यक्ति बैठे रहते। इन हाथियों की संख्या आठ–दस तक होती। इन हाथियों के पीछे घोड़े होते जिन पर राजकीय प्रतिष्ठित लोग– मेहता, मुसद्दी, दीवान, उमराव, चारण आदि होते। इनके पीछे तीन हाथी होते जो सोने–चांदी के होदों तथा बेशकीमती जेवरों से सजे होते। इनमें एक हाथी एकलिंगजी की सवारी का होता जिस पर सोने का नागफण सुशोभित रहता। इन हाथियों के पीछे रणकंकण बाजे वाले चलते। यह बाजा भालेनुमा वाद्य होता है जिस पर लगे घूघरों से छमछम की मधुर ध्वनि निसृत होती है। रणकंकणिये तीस के करीब होते। जिनमें तीन–चार बांसुरी बजाने वाले भी होते। इन्हीं रणकंकणियों के साथ गोटेवाले, छड़ीदार तथा बंदूकधारी होते। ठीक इनके साथ दरबार का हाथी चलता जिस पर दरबार (महाराणा) शाही पोशाक में बिराजे रहते। इनके आगे महावत तथा पीछे कोई एक बत्तीसी जागीरदार चंवर ढोलते रहते। यह हाथी बैंड की धुन के साथ–साथ विशिष्ट प्रकार के नृत्य–कदम भरता जिससे इसके चारों पावों में बंधे बड़े–बड़े घुंघरूओं की ध्वनि अपना कलात्मक सौन्दर्य बिखेरती चलती। महाराणा कीमती जेवर से सजे होते। उनकी अकेली अमरशाही पाग ही लाख–लाख, दो–दो लाख के जेवरों से जड़ी रहती। पगड़ी के अतिरिक्त जामा और डोडों तथा हीरे–मोतियों के आभूषण होते। चंवर के साथ छहांगीर, किरविया अडाणी, छवा आदि लवाजमा भी होता।

राजशाही गणगौर की भावभीनी विदाईः राजघरानों में गणगौर की विदाई के पूर्व रानीजी थाली में दूब पानी रखकर उसे पिलाती हैं। कंकू–काजल से टीले–टपके करती हैं और तब डावड़ियां उसे बराने (विसर्जित करने) ले जाती हैं। गणगौर की यह विदाई केवल महलों की बेटी की विदाई नहीं है, यह तो सारे गांव की बेटी की विदाई है, तभी तो उस विदाई में सबके मन गीले हो उठते हैं। सधवाएं उसके सिन्दूर को अपनी मांग में भरती हैं और उसकी चढ़ी रोली को कपड़े में बांध उसकी सोलह गाठें लगाकर

अपने बाजू पर बांधती हैं। इसे वे पार्वती की भांति अटल सुहाग की प्राप्ति मानती हैं। मेवाड़ के राजघराने में महाराणा की नई महारानी के लिए नई गणगौर प्रतिमा के निर्माण की परम्परा रही है। पुरानी गणगौरों को झीलों या जलाशयों में विसर्जित करने और समाजों की मांग पर उन्हें ससम्मान भेंट करने की भी परम्परा रही है।

गणगौर पर्व का वर्तमान एवं बदलता स्वरूप

गणगौर के गीतों के बोल आज भी शहर के घरों में सुनाई देते हैं। गणगौर की सवारी में आधुनिकता के दौर में पहनावे एवं श्रृंगार में भले ही बदलाव आया हो परन्तु आज भी इसकी परम्परा एवं इसके प्रति श्रद्धा बरकरार है। कोई नवविवाहिता अपने मायके जाकर गणगौर पूजन करती है तो कोई ससुराल में सासू मां के निर्देशन में मां गौरी अर्थात् गणगौर की पूजा करती है। इस पर्व पर तीन–चार दिन तक गणगौर घाट का नजारा देखने लायक होता है। वर्षों से चले आ रहे इस उत्सव का हिस्सा शहर का हर शख्स बनना चाहता है, वहीं पर्यटन विभाग ने भी इसे 'मेवाड़ महोत्सव' का रूप देकर पर्यटकों को आकर्षित किया है। विभिन्न समाज ईसर–पार्वती की प्रतिमाओं को गणगौर घाट पर लाते हैं, जहां उनके बीच श्रेष्ठता का मुकाबला होता है। इस उत्सव की परम्परा आज भी कायम है।

समय के साथ बढ़ी प्रतिस्पर्धाः गणगौर घाट पर एकत्रित होने वाली महिलाएं, युवतियां व नन्हीं बालिकाएं परम्परागत और आधुनिक वस्त्रों में दिखाई देती हैं। सोलह श्रृंगार, गहनों और पारंपरिक परिधानों में सजी गणगौर जितनी आकर्षक लगती है, इसके पीछे उतनी ही मेहनत लगती है। महाराणाओं के समय से निकलती आ रही सवारी के स्वरूप में समय के साथ बदलाव आया हैं। पहले जहां केवल श्रद्धा और भक्ति के साथ समाज अपनी–अपनी हैसियत के अनुरूप सवारी निकालते थे, आज उसमें प्रतिस्पर्धा का भी मिश्रण हो गया है। पर्यटन विभाग की ओर से चुनी जाने वाली सर्वश्रेष्ठ गणगौर को पुरस्कार दिया जाता है। महोत्सव के दौरान निकलने वाली गणगौर की सवारी के लिए गणगौरों की सजावट और श्रृंगार के लिए समुदायों की ओर से खास तैयारी की जाती है। माता के प्रति श्रद्धा के चलते तैयारी में न केवल महिलाएं शामिल होती हैं बल्कि पुरूष और बच्चे भी बराबरी के भागीदार बनते हैं।

उत्सव में रोज बदलती है वेशभूषाः अलग–अलग समुदाय अपने रीति–रिवाजों के अनुसार गणगौर माता की पूजा और सवारी के लिए तैयारी करते हैं। पहले चरण में गणगौर की लकड़ी की प्रतिमाओं की साफ–सफाई के बाद माताजी को पहनाए जाने वाले पारम्परिक वेश और जेवरों की योजना बनाई जाती है। चारों दिन गणगौर की अलग–अलग रंगों की पोशाक आकर्षण का केन्द्र रहती हैं। गणगौर लेने वाली महिलाएं अपने साज–श्रृंगार का भी विशेष ध्यान रखती हैं। परम्परानुसार माताजी की सवारी निकाली जाती है। समुदाय की ओर से निकाली जाने वाली सवारी के साथ झांकी भी बनाई जाती है जिसके माध्यम से कुछ संदेश भी दिया जाता है।

अन्तिम दिन भूपालशाही गणगौर की सवारीः महोत्सव के दौरान चार दिन तक कई समाजों की गणगौर की सवारी निकाली जाती है। पहले दिन चूंदड़ी गणगौर, दूसरे दिन हरी गणगौर, तीसरे दिन गुलाबी गणगौर और चौथे दिन भूपालशाही गणगौर की सवारी निकाली जाती है। गणगौर की सवारी समाजों के नोहरों, मंदिरों ओर घरों से निकलकर गणगौर घाट तक जाती है। बीच में भगवान जगन्नाथ के मन्दिर के सामने गणगौरों की घूमर ली जाती है। गणगौर घाट पर जल कुसुंबे दिए जाते हैं।

कभी महाराणा भी आते थे गणगौर देखनेः अष्टमी के दिन मोती चौहट्टा में छोटी गणगौर का मेला भरता था। चितारों की गली में ईसर–पार्वती और कानूड़े की प्रतिमाएं तैयार करते थे। अलग–अलग मोहल्लों की महिलाएं उसमें जाती थी और कभी–कभी महाराणा भी मेले में जाते थे।

महाराणा सज–धज कर महलों से गणगौर घाट तक जाते थे। साथ ही जोधपुर, अलवर, बड़ौदा और कई जगह के महाराजा भी गणगौर उत्सव में शामिल होने के लिए आते थे। महाराणा फतहसिंह के समय से महारानियों के आने पर रोक लगा दी गई थी। पार्वती विलास में शाही परिवार की महिलाएं पूजन करती थीं। चार दिन तक शाही सवारी निकलती थी। शाही सैनिक, घोड़े, हाथी की इस सवारी में कभी–कभी महाराणा भी आते थे।

छोटी गणगौर का मेलाः उदयपुर में मोती चौहट्टा क्षेत्र में शीतला अष्टमी को दो दिवसीय छोटी गणगौर का मेला भरता है, जहां से कन्याएं एवं सजी–धजी महिलाएं मिट्टी से बनी ईसर–पार्वती व कानूड़े की प्रतिमाएं खरीद कर लाती हैं। महिलाएं एवं कन्याएं 16 दिन तक नित्य इनकी पूजा–अर्चना करती हैं। तीन दिवसीय गणगौर महोत्सव से प्रतिदिन गणगौर घाट पर ले जाकर इनकी पूजा की जाती है और जल–कुसुंभे दिए जाते हैं। अन्तिम दिन छोटी गणगौर को जल में विसर्जित किया जाता है। छोटी गणगौर की पूजा के साथ ही गणगौर उत्सव का समापन होता है।

दांतणहेला पर्व एवं ईसर : उदयपुर में मुख्य पांच दिवसीय गणगौर उत्सव की शुरूआत दांतणहेला पर्व के साथ होती हैं। इसके तहत चैत्र शुक्ल दूज की संध्या को विभिन्न समाजों के भवनों–नोहरों आदि में मुख्य गणगौर और ईसरजी को सजाया जाता है, साथ ही विविध व्यंजन बनाकर भोग लगाया जाता है। महिलाएं और किशोरियां आस–पास के बगीचों से पाती लाती हैं और गणगौर की पूजा करती हैं। इस अवसर पर कहार भोई समाज नई गणगौर व ईसरजी की मूर्ति खरीदकर उनका विवाह करवाता है। विवाह समारोह में ईसरजी की बारात धूमधाम से पहुंचती है, तोरण की रस्म अदा होती है और मंडप में वेदमंत्रों के साथ ईसर और गणगौर विवाह बंधन में बंधते हैं।

गणगौर का मुख्य पर्व एवं गणगौर की सवारीः चैत्र शुक्ल तीज को गणगौर का मुख्य पर्व एवं पूजन दिवस होता है। इस दिन मेवाड़ की विरासत परंपराओं के इत्र से उदयपुर शहर महक उठता हैं। सुबह शहर भर में शिव स्वरूप ईसरजी और मां पार्वती स्वरूपा गणगौर की पूजा की जाती है। कन्याएं और युवतियां अच्छे वर और अच्छे घर की कामना करती हैं, जबकि महिलाएं माता से अपने सुहाग–परिवार की खुशहाली मांगती हैं। सभी महिलाएं अच्छी तरह सज–धज कर तैयार होती हैं। ईसर जी को संवारा जाता हैं और बड़े जतन से गणगौर प्रतिमाओं को भी सोलह श्रृंगार करवाए जाते हैं। इसके पश्चात् लवाजमे के साथ रजवाड़ी रंगत में गणगौर की सवारी निकलती है। ढ़ोल–नगाड़ों की धुन पर महिलाएं जगदीश चौक पर घूमर नृत्य करती हैं। गणगौर महोत्सव के तहत जगदीश चौक पर ही मेनार और बाड़मेर की गेर, सिरोही का गरासिया नृत्य, बारां का सहरिया स्वांग, जयपुर की कच्ची घोड़ी नृत्य आदि का आयोजन होता हैं। यहां से एक–एक कर गणगौर पिछौला झील स्थित गणगौर घाट पहुंचती हैं। घाट पर एक कतार में रखी ईसर–गणगौर की प्रतिमाओं को देखने के लिए विशाल रूप में देसी–विदेशी समूह प्रतीक्षारत रहता है। यहां पूजा–अर्चना कर गणगौर को जल–कुसुंभे अर्पित किए जाते हैं। बाद में गणगौर घाट पर तेरह ताली, चरी, भवई, मांड गायन एवं घूमर नृत्य का आयोजन होता है। इसके पश्चात् विभिन्न समाजों की गणगौर की सवारी पुनः अपने गंतव्य की और रवाना हो जाती है। गणगौर की सवारी एवं पूजन का यह पर्व तीन दिन तक इसी प्रकार हर्षोल्लास से मनाया जाता है।

अब शामिल नहीं होता पूर्व राज परिवारः राजशाही एवं महाराणा की गणगौर की सवारी वर्तमान में देखने को नहीं मिलती। महाराणा भूपालसिंह (1930–55) के शासनकाल से पूर्व से ही देशी–विदेशी पर्यटक तक यहां की शाही गणगौर को देखने आते रहे हैं। महाराणा भूपालसिंह की मृत्यु के बाद से पूर्व राज परिवार इस गणगौर महोत्सव में शामिल नहीं होता है, लेकिन महाराणा जिस नाव में बैठकर गणगौर उत्सव पर सवारी करते थे, वह नाव वर्तमान में गणगौर एवं मेवाड़ महोत्सव के लिए अवश्य उपलब्ध करवाई जाती है।

मेवाड़ महोत्सव का आरम्भ

गणगौर पर्व पर मेवाड़ी परम्परा व संस्कृति, धार्मिक व सामाजिक मान्यतओं को बयां करने वाला 'मेवाड़ महोत्सव' अपने आप में अनूठा है। मेवाड़ महोत्सव की शुरूआत वर्ष 1979 में हुई थी। गणगौर महोत्सव के प्रचार–प्रसार के लिए व इसके माध्यम से पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए पर्यटन विभाग ने इस महोत्सव का आयोजन शुरू किया। मेवाड़ महोत्सव सर्वप्रथम सिटी पैलेस के माणक चौक प्रांगण में हुआ था। वर्ष 1979 में हुए इस समारोह का हिस्सा मेवाड़ राजघराने के सदस्य, विदेशी मेहमान व आम लोग बने थे। उस समय विभाग की ओर से सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन व प्रतियोगिताएं शुरू की गईं थीं। वर्ष 1980–81 में नाव की सवारी शुरू की गई। छोटी नावों में गणगौर की सवारियां निकाली जाती थीं। मेवाड़ महोत्सव वर्ष 1983 में सहेलियों की बाड़ी में आयोजित किया गया था। उस समय यह कार्यक्रम पर्यटकों और आम लोगों के लिए दो दिन के लिए रखा गया था, लेकिन सहेलियों की बाड़ी में यह आयोजन सिर्फ एक बार होकर रह गया। 1984–85 से विभिन्न समुदायों की गणगौर की सवारियां निकलनी शुरू हुईं थीं, इसके लिए श्रेष्ठ गणगौर प्रतियोगिता की जाने लगी और पुरस्कार दिए जाने लगे जिसमें प्रथम पुरस्कार के तौर पर तीन फीट की गणगौर, द्वितीय में पुरस्कार ढ़ाई फीट की गणगौर और तृतीय पुरस्कार में दो फीट की गणगौर दी जाती थी। इसके कुछ समय बाद विजेताओं को नकद पुरस्कार दिए जाने लगे।

वर्ष 1984–85 से महोत्सव से विदेशी सैलानी भी जुड़ने लगे और धीरे–धीरे वे भी महोत्सव का हिस्सा बन गए। उनके लिए भी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाने लगा। पुरस्कार भी घोषित किए गए। विदेशी सैलानियों के लिए यह एक अलग व अनोखा अनुभव होता था। विभाग की और से वर्ष 2006–07 में मिस्टर व मिस मेवाड़ प्रतियोगिता हुई लेकिन इसे कुछ कारणवश बंद कर दिया गया।

वर्तमान में गणगौर उत्सव के दौरान पर्यटन विभाग की और से गणगौर घाट पर सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया जाता है, जिसमें अलवर का रीन भवई, जोधपुर का कालबेलिया, भरतपुर का मयूर नृत्य और फूल होली, भरपुर–बारां की चकरी, आदि भिन्न क्षेत्रों की नृत्य प्रस्तुतियां होती हैं। रात्रि की आतिशबाजी के साथ महोत्सव का समापन होता है। पर्यटन विभाग मेवाड़ महोत्सव में विभिन्न समाजों की श्रेष्ठ गणगौर प्रतिस्पर्द्धा में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाली गणगौरों को क्रमशः पन्द्रह हजार, दस हजार एवं सात हजार पांच सौ रूपये की नकद राशि पुरस्कार स्वरूप देता है। मेवाड़ में मनाए जाने वाले आस्था के इस पर्व का प्रभाव अब इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, बैल्जियम, स्पेन सहित कई देशों में भी बढ़ रहा है। इन देशों के महिला–पुरुष पर्यटक प्रतिवर्ष मेवाड़ महोत्सव में होने वाली प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेने उत्साह के साथ मेवाड़ आते हैं। पर्यटक महोत्सव से पहले उदयपुर पहुंच जाते हैं क्योंकि इन्हें शहर की विभिन्न होटलों में रहकर मेवाड़ी बोली, राजस्थानी भाषा, गीत–संगीत, नृत्य, विचित्र वेशभूषा आदि प्रतियोगिताओं की तैयारी से जुटना पड़ता है। विदेशी पर्यटक जोड़े के रूप में राजस्थानी वेशभूषा में सांस्कृतिक प्रस्तुति देते हैं। विदेशी मेहमानों की सांस्कृतिक प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले जोड़ों को क्रमशः लेकपैलेस, लीला रीजेंसी और ललित लक्ष्मी विलास होटल में रात्रि–भोज तथा पर्यटन विभाग की और से पेंटिंग्स उपहार स्वरूप प्रदान की जाती हैं।

विभिन्न समाजों की गणगौर सवारी

मेवाड़ की इस सामाजिक समरसता की परम्परा को मेवाड़ के 20 से भी अधिक समाज आज भी मेवाड़ महोत्सव पर गणगौर की सवारी निकालते आ रहे हैं। इनमें से कुछ की परम्पराएं एवं विशेषताएं इस प्रकार हैं –

राजमाली समाजः झीलों के शहर में राजमाली समाज की गणगौर भी निराली है। दो हजार से ज्यादा परिवारों वाला राजमाली समाज अपनी गणगौर की शाही सवारी निकालने की तैयारी में ज़ोर–शोर से जुट जाता है। जिस तरह जयपुर में तीज की सवारी निकलती है उसी तर्ज पर यह समाज हर साल यहां शोभायात्रा निकालता है। करीब डेढ़ दशक पहले तक समाज की प्रौढ़ और बुजुर्ग महिलाएं ही इस उत्सव से जुड़ी हुई थीं, लेकिन आज इसमें हर आयु वर्ग की भागीदारी रहती है। 2004 में युवाओं ने समाज की 'गणगौर महोत्सव समिति' बनाई। इसी के बैनर तले शाही सवारी निकालना तय किया गया। समाज की नौकरी पेशा से लेकर सब्जी व्यवसाय करने वाली महिलाएं महोत्सव के दौरान चार दिन तक अवकाश पर रहती हैं और घेरलू कार्यों से जल्द निवृत हो आयोजन को भव्य बनाने में जुटती हैं। महोत्सव के एक दिन पहले समाज के हर घर में भांग–भुजिया का प्रसाद बंटता है। यह सब दशकों से परम्परा के रूप में चला आ रहा है। ईसर–गणगौर की प्रतिमाओं के श्रृंगार के लिए चांदी के आभूषण भेंट करने की भी परम्परा है। झांकियों में स्वच्छ भारत, रक्तदान महादान, बेटी है अनमोल रतन, शिव बारात सहित पौराणिक और सम–सामयिक विषय पर संदेश दर्शाए जाते हैं। वर्ष 2015 में जयपुर में राजस्थान दिवस समारोह में भी राजमाली समाज की गणगौर शामिल हुई जहां इसे दूसरा स्थान मिला था। उदयपुर में पर्यटन विभाग की मेजबानी में होने वाले मेवाड़ महोत्सव में वर्ष 2014, 2015 व 2016 में समाज की गणगौर प्रथम रही, 2017 में इसने दूसरा स्थान प्राप्त किया था। 2018 में पुनः प्रथम स्थान प्राप्त होने पर 15000 रूपये की राशि पुरस्कार स्वरूप प्राप्त की।

कहार भोई समाजः करीब 3000 परिवारों वाला कहार भोई समाज पूर्व राजपरिवार से मिली दो गणगौरों की शाही सवारी निकालता आ रहा है। ये प्रतिमाएं दशकों से संरक्षित हैं, जिनपर प्रतिवर्ष रंग–रोगन किया जाता है। एक गणगौर संस्थान (समाज) की, दूसरी धीवर परिवार की है। ईसरजी–गणगौर का श्रृंगार सिर्फ सोने के आभूषणों से करने की परम्परा है, क्योंकि चांदी के जेवर वर्जित हैं। सदियों से चली आ रही राजस्थानी पोशाक में अब थोड़ा बदलाव देखने को मिल रहा है। पिछले कुछ वर्षों से ईसरजी धोती–कुर्ता और गणगौर नए चलन वाले वेश में नजर आ रही है। समाज में 'दातंणहेला' मनाने की परम्परा भी है। इसके तहत गणगौर से एक दिन पहले ईसर–गणगौर को भांग के पकोड़े, केसरिया भात, सादा भात आदि का भोग समाज के नोहरे में लगाते हैं। यह प्रसाद घर–घर बंटता है। कामकाजी महिलाएं मेवाड़ महोत्सव के दौरान कोई व्यवसाय नहीं करती हैं। सवीना सब्जी मंडी, तीज का चौक आदि स्थानों पर सब्जी का व्यवसाय बंद रखती हैं। महोत्सव में समाज की सैंकड़ों महिलाएं शामिल होती हैं। 2017 में समाज ने भोईवाड़ा में ईसर–गणगौर की शाही शादी की थी। धूमधाम से बारात निकाली गई एवं तोरण की रस्म हुई। मंडप में ईसर–गणगौर विवाह बंधन में बंधे थे। मेवाड़ महोत्सव में श्रेष्ठ गणगौर प्रतियोगिता में कहार भोई समाज की गणगौर को 2014 में तृतीय, 2015 एवं 16 में द्वितीय तथा 2017 में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था। वर्ष 2018 में द्वितीय स्थान पर रही समाज की गणगौर को पुरस्कार स्वरूप दस हजार रूपये की राशि प्रदान की गई।

मारू कुमावत समाजः परम्पराओं में रचे–बसे मारू कुमावत समाज की गणगौर निराली है। कई बार पुरस्कार पा चुकी यह गणगौर 1990 में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में हुए महोत्सव में मेवाड़ दर्शन करवाने के साथ पुरस्कृत हो चुकी है। करीब 150 परिवारों का यह समाज मेवाड़ के पूर्व महाराणा स्वरूपसिंह (1842–1861) के कार्यकाल में दी गई काष्ठ प्रतिमा को ही पूजता आ रहा है। समाज की महिलाएं प्रतिवर्ष निकलने वाली शोभायात्रा में मेवाड़ी वेशभूषा में शामिल होती हैं, जो अपने–आप में बड़ा आकर्षण होता है। गणगौर और ईसर बावजी को सजा–धजा कर सवारी के रूप में गणगौर घाट ले जाते हैं। समाज की युवतियों और किशोरियों में भी उत्सव को लेकर जबरदस्त उत्साह रहता है। भारी श्रृंगार के चलते यह गणगौर और इसकी सवारी मेवाड़ महोत्सव में कई बार विजेता रह चुकी है। इसने वर्ष

2014 में द्वितीय, 2016 में तृतीय स्थान प्राप्त किया तथा 2018 में पुनः तृतीय स्थान प्राप्त होने पर पुरस्कार स्वरूप 7500 रूपये की राशि प्राप्त की।

मारवाड़ी गांछा समाजः समाज में परम्परा की तरह यह उत्सव मेवाड़ रियासतकाल से मनाया जा रहा है। 150 परिवारों का यह समाज एक परिवार की तरह ही भूपालवाड़ी स्थित समाज के चारभुजाजी मन्दिर पर जुटता है। हर सदस्य अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभाते हुए सहभागिता तय करता है। खास बात यह है कि रियासत काल की पारम्परिक गणगौर को ही पूजा जाता है। यह प्रतिमा काष्ठ की है। जोधपुरी वेशभूषा इस समाज की महिलाओं की अलग ही पहचान है, जो सवारी के दौरान भी अलग ही नजर आती है। गणगौर प्रतिमा को सोलह श्रृंगार धारण करवाए जाते हैं। महिलाएं और युवतियां बड़े जतन से माता की सेवा–अर्चना करती हैं। वर्ष 2015 एवं 2017 में इस समाज की गणगौर ने तृतीय स्थान प्राप्त किया था।

वसीटा धोबी समाजः वसीटा धोबी समाज में रियासतकाल से ही गणगौर की सवारी निकालने की परम्परा है। करीब 350 परिवारों के इस समाज में गणगौर पर्व पर घर–घर 16 दिवसीय गणगौर पूजन की धूम रहती है। महाराणा भूपालसिंह के कार्यकाल में सिसारमा गांव के पास एक सामूहिक समारोह में समाज की रियासतकाल में मिली गणगौर प्रतिमा चोरी हो गई थी। ऐसे में समाज के लोग आनन–फानन में महाराणा के पास पहुंचे। फिर महाराणा ने नई गणगौर प्रतिमा दिलवाई, जिसकी ये लोग सवारी निकालते आ रहे हैं। गणगौर का पूजन कर प्रसाद बांटने की परम्परा है। आम के पत्तों से दातंणहेला भी किया जाता है। आज समाज के पास करीब 12 गणगौर की प्रतिमाएं हैं। पिछले कई वर्षों से इन 12 गणगौर प्रतिमाओं के साथ गणगौर महोत्सव पर सवारी निकाली जाती है।

शनि जोशी डाकोत समाजः शनि जोशी डाकोत समाज को पहली गणगौर प्रतिमा महाराणा फतहसिंह ने भेंट की थी। समाज तब से परम्परा की तरह शहर में सवारी निकाल रहा है। गणगौर की सवारी को लेकर समाज की परम्परा और मान्यता कुछ अलग है। महिलाएं गणगौर महोत्सव से पहले समाज में प्रार्थना–पत्र देकर स्वीकृति लेती हैं। हालांकि यह सब औपचारिक होता है। अनुमति के साथ समाज इसमें हर वर्ग की सहभागिता तय करता है। इसके बाद सामूहिक गणगौर पूजन और महोत्सव का आयोजन किया जाता है। हाथीपोल के डाकोतवाड़ा स्थित समाज के पंचायती नोहरे से गणगौर की परम्परागत सवारी निकाली जाती है। इससे पहले रात्रि जागरण होता है, जिसमें महिलाएं गणगौरी गीतों को स्वर देते हुए मां की आराधना करती हैं। समाज में ईसरजी और गणगौर प्रतिमाओं के चार जोड़े हैं। वर्ष 1999 में शनि जोशी डाकोत समाज की गणगौर ने तीसरा स्थान पाया था।

सालवी बुनकर समाजः सालवी बुनकर समाज ने 45 वर्ष पहले सूरजपोल स्थित समाज के सत्यनारायण मन्दिर से गणगौर की सवारी की परम्परा का आगाज किया था। अब हर वर्ष इस उत्सव में समाज की मातृशक्ति जुटती है। शहर में समाज के करीब दस हजार परिवार हैं। कन्याएं सुघर–सुवर और महिलाएं सुहाग की सलामती के लिए 16 दिवसीय गणगौर पूजन करती हैं। इस परम्परा के प्रति समाज की महिलाओं का रूझान साल दर साल बढ़ ही रहा है। अब विभिन्न क्षेत्रों की महिलाएं मेवाड़ महोत्सव में 45 साल पुरानी गणगौर प्रतिमा की सवारी निकालती हैं। महोत्सव से एक दिन पहले सांस्कृतिक कार्यक्रम होता है। मेवाड़ महोत्सव में 20 वर्ष पहले समाज की गणगौर को ईसरजी पुरस्कार में प्राप्त हुए थे, जिन्हें हर वर्ष पूजने की परम्परा है।

लखारा समाजः 200 से भी अधिक परिवारों के लखारा (लक्षकार) समाज को मेवाड़ रियासतकाल में महाराणा से मिली गणगौर भी निराली है। लखारा चौक स्थित समाज के चारभुजाजी मन्दिर से ही समाज की युवतियां और महिलाएं गणगौर की सवारी निकालती आ रही हैं। खास बात यह है कि यह मन्दिर भी महाराणा मेवाड़ ने भेंट किया था। समय के साथ अब गणगौर प्रतिमा को सजाने के स्वरूप में

भी बदलाव आया है। पांच वर्ष पहले मोती चौहट्टा में रियासतकालीन इस काष्ठ प्रतिमा पर गुलाबी रंग–रोगन कराया गया ताकि वह सुन्दर दिखाई दे। प्रतिमा को राजपूती पोशाक से भी सजाने का चलन है। महिलाओं के सहयोग और शाही सवारी निकालने के लिए नवयुवक मंडल के युवाओं की टोली हमेशा तत्पर रहती है।

मेढ़ क्षत्रिय स्वर्णकार समाजः मेवाड़ में करीब 2000 परिवारों के मेढ़ क्षत्रिय स्वर्णकार समाज की रियासतकालीन गणगौर भी निराली है। समाज की गणगौर प्रतिवर्ष सामाजिक समरसता का संदेश देती आ रही है। स्वर्णकार समाज की महिलाएं रियासतकाल से नाईयों की तलाई स्थित राजमाली समाज की महिलाओं के साथ गणगौर की सवारी लेकर गणगौर घाट पहुंचती हैं। खास बात यह है कि समाज की इस गणगौर सवारी की शुरूआत 100 साल से भी अधिक समय पूर्व एक परिवार विशेष ने की जो आज भी इस परम्परा को बखूबी निभाता आ रहा है। यह परिवार भड़भूजा घाटी पर गणगौर को नख से सिर तक सजाता है। समाज की महिलाएं सोलह दिवसीय गणगौर की पूजा करती हैं और मेवाड़ महोत्सव की ज़ोर–शोर से तैयारियां भी करती हैं।

जीनगर समाजः जीनगर समाज में 2005 से पहले कई वर्षों तक गणगौर महोत्सव मनाने की परम्परा लगभग खत्म हो गई थी। समाज को रियासतकाल में गणगौर की काष्ठ प्रतिमा मिली थी, जिसकी सवारी निकालना ओर उसे पूजना ही बंद कर दिया था। प्रतिमा लम्बे समय तक घर में रखी रही जिससे रंग–रोगन भी उतर गया था जिसे एक बुजुर्ग व्यक्ति ने फिर से परम्परा और संस्कृति को जीवित रखने के उद्देश्य से प्रतिमा को श्रृंगारित कराया। जिसे वे पिछले 13 वर्ष से स्वयं के परिवार की महिलाओं के साथ मेवाड़ महोत्सव की स्पर्धा में शामिल करवाते हैं। महोत्सव में शामिल होने वाली 20 से अधिक समाजों की गणगौरों में सबसे कम महिलाएं इन्हीं के समाज की सवारी में होती हैं, लेकिन उत्साह में सबसे आगे।

कुछ समाजों का सामूहिक गणगौर पूजन

सम्पूर्ण मेवाड़ में घर–घर गणगौर पूजन की परम्परा के साथ ही कुछ समाजों में सामूहिक रूप से गणगौर पूजने की परम्परा भी रही है एवं कुछ नई भी शुरू हो रही हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :–

क्षत्रिय समाजः मेवाड़ के पूर्व राजघराने सहित राव, उमराव व अन्य क्षत्रियों की गणगौर भी मेवाड़ में सदियों से ही सिरमौर है। क्षत्रिय समाज में गणगौर महोत्सव को अनूठे ढंग से मनाने की परम्परा सदियों से चली आ रही है। उदयपुर शहर के आठ हजार से अधिक क्षत्रिय परिवारों में महिलाएं गणगौर की विधि–विधान के साथ सोलह दिनों तक पूजा–अर्चना करती हैं। क्षत्रिय समाज की महिलाओं के गणगौर पूजने का ड्रेस कोड भी सदियों से एक ही चला आ रहा हैं। मेवाड़ महोत्सव के दिन गणगौर की शाही सवारी भी निकाली जाती है।

अग्रवाल समाजः अग्रवाल समाज गौरी पूजन के लिए परम्परागत सेवरा लाने की वजह से अलग पहचान रखता है। सेवरा के लिए कन्याएं और महिलाएं ढ़ोल–नगाड़ों के साथ शाही अंदाज में गुलाब बाग में पहुंचती हैं, जहां से फूल यानि सेवरा लेकर अग्रसेन नगर जाती हैं। मां गौरी को फूल पसंद हैं, इसलिए सेवरा लेकर पूजन करती हैं। 'वाड़ीवाला वाड़ी खोल, मैं पूजन आई गणगौर' गीत गाती हैं। यह गीत उदयपुर के वाड़ियों और पहाड़ियों वाला नगर होने का प्रतीक हैं। अग्रवाल समाज की महिलाएं छोटी गणगौर लाकर अग्रसेन नगर स्थित मन्दिर में पूजा के लिए जुटती हैं।

मेनारिया ब्राह्मण समाजः नगर में मेनारिया ब्राह्मण समाज के करीब 500 परिवार रहते हैं। इस समाज में गणगौर पूजन की अनूठी परम्परा सदियों से चली आ रही है। समाज की महिलाएं सामूहिक गणगौर पूजन करती आ रही हैं। महिलाएं पानेरियों की मादड़ी स्थित गांव के महादेव पुजारी के घर

जाकर विधि–विधान के साथ पूजा–अर्चना करती हैं। महादेव पुजारी के घर सदियों पुरानी काष्ठ प्रतिमा को पूजने की परम्परा है। महिलाएं सोलह दिवसीय पूजा–अर्चना करती हैं।

सर्व पालीवाल ब्राह्मण समाजः पालीवाल ब्राह्मण समाज में गणगौर मनाने की परम्परा रियासतकाल से है। समाज की महिलाएं भट्टजी का रावला, ईलाजी का नीम सहित अपने–अपने मोहल्लों में सामूहिक गणगौर पूजन करती आ रही हैं। शहर में सर्व पालीवाल ब्राह्मण समाज के सैंकड़ों परिवार हैं, जहां घर–घर भी सोलह दिन तक गणगौर पूजन की धूम रहती है।

गुर्जर गौड़ ब्राह्मण समाजः 1500 परिवारों वाला गुर्जर गौड़ ब्राह्मण समाज पिछले 20 वर्षों से सामूहिक गणगौर महोत्सव धूमधाम से मनाता आ रहा है। समाज की महिलाएं गुंदिया भैरूजी स्थित समाज के गौतम आश्रम में सामूहिक गणगौर उत्सव मनाती हैं। इसमें डीजे पर गणगौर के पारम्परिक गीत बजते हैं और रजवाड़ी धुनों पर लोक नृत्य प्रतियोगिता का आयोजन भी किया जाता है। कई महिलाएं गणगौर व्रत का सामूहिक उद्यापन भी करती हैं और अपने–अपने परिजनों को उपहार देती हैं। महोत्सव की तैयारी में युवाओं की टीम भी जुट जाती है। समारोह का उद्देश्य समाज में समरसता को बढ़ाना है।

ब्राह्मण समाज–विप्र फाउंडेशन महिला मंचः विप्र फाउंडेशन महिला मंच, उदयपुर की महिलाएं घर–घर ईसर–गणगौर की पूजा–अर्चना करती हैं। मंच से जुड़ी ब्राह्मण समाज की हजारों महिलाओं ने दो वर्ष पहले इस पर्व को धूमधाम से मनाने की अलख जगाई, जो अब मूर्त रूप लेने लगी है। महिलाओं ने पहली बार अपने–अपने मोहल्लों में होली के बाद से चैत्र शुक्ल तीज तक पूजा–अर्चना के अलावा सामूहिक भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से गणगौर गीत–नृत्य आदि विविध कार्यक्रम एवं प्रतिस्पर्धाएं प्रारम्भ करने की पहल की है। इसका उद्देश्य समरसता बढ़ाना है। महिलाओं का मानना हैं कि पौराणिक कथाओं के मुताबिक वे जिस जगह गणगौर पूजा करती हैं उसे पीहर (मायका) और विसर्जित करने वाले स्थल झील, तालाब आदि को मां गौरी का ससुराल कहती हैं।

सुहालका समाजः सुहालका कलाल समाज की महिलाएं वर्ष 2018 से पहली बार गणगौर महोत्सव मना रही हैं। 'सुहालका संगिनी महिला मंडल' के बैनर तले समाज की पदाधिकारियों ने गणगौर पर्व को पहली बार धूमधाम से मनाने का निर्णय लिया। विधिवत गणगौर पूजन किया गया और महोत्सव की रणनीति बनाई गई। विभिन्न प्रतिस्पधाएं हुईं एवं विजेताओं को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का उद्देश्य 300 परिवारों के इस समाज में समरसता को बढ़ाना है। अभी तक सिर्फ पूर्बिया कलाल समाज ही गणगौर मनाता आ रहा है।

विभिन्न समाजों की सामूहिक गणगौर पूजन की परम्परा के साथ ही उदयपुर शहर में नवनिर्मित ''मल्टीस्टोरी कॉम्पलेक्स' एवं सोसायटी में भी इस प्राचीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का अनुसरण करते हुए विभिन्न स्थानों पर सामूहिक गणगौर पूजन की परम्परा का निर्वाह होते देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

गणगौर उत्सव सम्पूर्ण राजस्थान में बड़े ही ज़ोर–शोर से मनाया जाता है, लेकिन मेवाड़–उदयपुर की गणगौर विश्व पटल पर अपनी अलग ही पहचान रखती हैं, इसका कारण है रियासतकाल से ही यहां के महाराणाओं के द्वारा इस 'लघु परम्परा' को 'वृहद् परम्परा' का रूप दिया जाना। यहां के विभिन्न महाराणाओं ने समय–समय पर इसमें नई परम्पराएं भी जोड़ीं जैसे– शाही गणगौर की सवारी, नाव की सवारी, विभिन्न समाजों को गणगौर की प्रतिमा भेंट करना (आहूजा, 2011), विभिन्न समाजों की गणगौर की सवारी का चलन, धींगा गणगौर, त्रिपोलिया का नाम परिवर्तित करके गणगौर घाट रखना, गणगौर पर्व पर विभिन्न रियासतों के राजा–महाराजाओं को अतिथि के रूप में यहां आमंत्रित करना, बड़ी गणगौर

के अलावा छोटी गणगौर पर मेले का आयोजन, पूरे 16 दिन तक नगर में उत्सव का माहौल होना, आदि। इन विभिन्न कारणों से यहां के गणगौर उत्सव ने 'गणगौर महोत्सव' का रूप प्राप्त किया।

राजशाही के पश्चात् राज्य सरकार ने मेवाड़ गणगौर की महिमा को देखते हुए एवं पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से पर्यटन विभाग के तत्वाधान में तीन दिवसीय 'मेवाड़ महोत्सव' की शुरूआत की जिससे मेवाड़ की गणगौर विश्व मानचित्र पर उभर कर आई। वर्तमान में स्थानीय निवासियों, विभिन्न समाजों एवं देशी–विदेशी पर्यटकों के जबरदस्त उत्साह से मेवाड़ का यह गणगौर महोत्सव निरन्तर लोकप्रिय हो रहा है। परम्परा के साथ आधुनिकता के सम्मिश्रण से इसे एक अलग ही पहचान प्राप्त हो रही है। वैश्वीकरण के इस युग में परम्परा के संरक्षण एवं पहचान का यह एक अनुपम उदाहरण है।

यह लेख लोक के समाजशास्त्र या लोक सांस्कृतिक, सामाजिक आधारों का विश्लेषण है। राजस्थान बहु–संस्कृति तथा सामाजिक उत्सवों का प्रदेश है। सामंतवादी व्यवस्था में रहते हुए भी लोक उत्सव और लोक संस्कृति से राजस्थान का समाज परिपूर्ण है। गणगौर इसी लोक संस्कृति का एक प्रमुख भाग है। हालांकि आज आधुनिकीकरण की प्रक्रियाएं इसे प्रभावित कर रही हैं। गणगौर पर जो लोक साहित्य उपलब्ध है, उसमें इसका ऐतिहासिक वर्णन मौजूद है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह सामुदायिक प्रसंग है, जैसा नृजातीय तथा विशिष्ट समुदायों में हुआ करता है। यह त्योहार अन्य त्योहारों की भांति संस्कृति संरक्षण और सांस्कृतिक रूप से समाज की एकरूपता का कार्य करता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से गणगौर का उपर्युक्त चित्रण तीन संदर्भों का प्रस्तुतिकरण है। पहला, यह राजस्थान में महिलाओं के चिंतन, उनकी आस्था तथा आमोद–प्रमोद का चित्रण है। प्रायः यह माना जाता है कि राजस्थान में नारियों की प्रस्थिति बहुत निम्न है– यह संदर्भ दूसरे कथन के साथ जुड़ता है कि राजस्थान सामंतवादी प्रदेश हैं और सामंतवाद अधिनायकवाद है। सामंतवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें प्रतिबंधों की कोई सीमा नहीं है। गणगौर, नारीवादी प्रतिबंधों में से एक को तोड़ने का प्रयास है और सामाजिक जीवन में नारीबंधन से मुक्ति का प्रयास है। राजस्थान में सामंतवादी उपादानों में हो रहे परिवर्तनों से इसे जोड़ा जा सकता है। बाद में वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं के साथ यह पर्यटन का भाग बन गया। सामाजिकता या व्यवसाय का सम्मिलन गणगौर की भावना और उसको मनाए जाने वाले स्वरूप का यह संदर्भ सारे आधार को रूपान्तरित कर रहा है। मान्यताओं तथा विशिष्टताओं का रूपान्तरण राजस्थान के समाज में मान्य स्वीकृतियों पर प्रहार करता है। समाजशास्त्र में लोक पर बहुत कुछ लिखा नहीं गया है। यह लेख लोक के समाजशास्त्र को समझने का एक प्रयास है।

References

Deva, Indra. 1985/1974, *"Oral Tradition and The Study of Peasant Society"*, *Diogenes* 22(85) pp112-127. Retreaved Nov. 3, 2018 (http://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/039219217402208507?journal Code=dioa)

Mukharji, D. P. 2002. *Diversities: Essays in Economics, Sociology and Other Social Problems*, New Delhi: Manak Publication

Redfield, Robert. 1955. *The Little Community*, Chicago: University of Chicago press.

आहूजा, डी. आर. 2011. *राजस्थान लोक संस्कृति और साहित्य,* नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

भानावत, महेन्द्र. 1977. *राजस्थान की गणगौर,* उदयपुरः भारतीय लोककला मण्डल.

भारतीय, राकेश. 2014. *समाज तथा संस्कृति मडई,* रायपुर

चुण्डावत, लक्ष्मीकुमारी. 1994. *सांस्कृतिक राजसथान,* जयपुरः पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस,

दुबे, श्याम सुन्दर. 2003. *लोक परंपरा और लोक संस्कार,* (मडई), बिलासपुरः रावत नाच महोत्सव, समिति।

वर्मा, गींडाराम. 1957. र*ाजस्थानी लोकोत्सव,* उदयपुरः भारतीय लोककला मण्डल.

डॉ. श्याम एस. कुमावत, एसोसियेट प्रोफेसरः समाजशास्त्र विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

राजस्थान के ग्रामीण नेतृत्व प्रतिमानों के अध्ययन की पद्धतिशास्त्रीय समीक्षा (ओ.पी. शर्मा के योगदान के विशेष सन्दर्भ में)

परेश द्विवेदी

सारः स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान में पंचायतीराज संस्थाओं से एक ओर जहां जनतांत्रिक प्रक्रियाएं प्रभावित हुई हैं, वहीं ग्रामीण नेतृत्व में नवीन प्रतिमान भी उभरकर सामने आए हैं। इन नवीन नेतृत्व प्रतिमानों में नए अध्ययन चरों एवं अध्ययन के आधारों को समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से किस प्रकार पद्धतिशास्त्रीय महत्ता प्रदान की जा सकती है, यह इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है। इस पद्धतिशास्त्रीय व्याख्या में ओ.पी. शर्मा द्वारा सम्पन्न ग्रामीण नेतृत्व के अध्ययन में अपनाई गई अध्ययन पद्धति को मुख्य रूप से आधार बनाया गया है और नवीन अध्ययनों में पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन प्रारूप एवं तार्किक निदर्शन प्रारूप क्या हो, इसे स्पष्ट करने का एक लघु प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : प्रजातांत्रिक व्यवस्था, पंचायतीराज, नेतृत्व प्रतिमान

ब्रिटिशकालीन लेखक एवं इतिहासविद जॉर्ज टामस एवं कर्नल जेम्स टॉड द्वारा प्रयुक्त नाम क्रमशः राजपूताना एवं राजस्थान की सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था का ऐतिहासिक सन्दर्भ अति प्राचीन है। इसमें सामन्ती एवं अर्द्ध–उपनिवेशवादी व्यवस्था की मिश्रित संस्कृति परिलक्षित होती है। स्वतन्त्रता के पश्चात् नवनिर्मित राजस्थान प्रदेश में लोकतांत्रिक व्यवस्था और पंचायतीराज की स्थापना ने नई व्यवस्था को जन्म दिया। समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्यापक सामाजिक परिवर्तन एव नई संस्थाओं की स्थापना के आधार इसके साथ जुड़े हुए हैं। सामाजिक विश्लेषण की दृष्टि से नवस्थापित व्यवस्था के प्रारम्भिक चरण में कई समस्याएं थीं, जिसमें नई सोच एवं समझ के अनुसार लोकतांत्रिक संस्थाओं का प्रयोग प्रमुख है। अध्ययन एवं विश्लेषण की दृष्टि से लोकतंत्र एवं पंचायतीराज को धरातलीय स्तर पर समझना महत्वपूर्ण था। इस सम्बन्ध में ओ. पी. शर्मा द्वारा सम्पन्न तत्कालीन पद्धतिशास्त्रीय अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ है। यह आलेख शर्मा द्वारा प्रयुक्त अध्ययन पद्धति की समीक्षा के साथ विभिन्न विद्वानों द्वारा ग्रामीण नेतृत्व के अध्ययनों में प्रयुक्त पद्धतियों के विश्लेषण और नवीन प्रतिमानों को दर्शाता है।

ओ.पी शर्मा : जीवनवृत्त

शर्मा का जन्म 2 मार्च 1931 को उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के एक गांव मोर्टा में हुआ था। साधारण परिवार में जन्मे शर्मा का आदर्श स्वावलंबन था। अध्ययन के साथ–साथ जीवनयापन कार्य भी चला। शायद इसी कारण उनकी सहानुभूति ऐसे विद्यार्थियों के प्रति अधिक रहती थी, जो आर्थिक दृष्टि से विपन्न परिवारों के थे।

शर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा कानपुर में हुई। क्राईस्ट चर्च कॉलेज से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त कर इंडियाना विश्वविद्यालय, अमेरिका से 1966 में 'पंचायतीराज में नेतृत्व के उभरते हुए प्रतिमान' विषय पर डॉक्टरेट की डिग्री ली। डॉक्टरेट करने से पूर्व एस.डी गवर्मेन्ट कॉलेज, ब्यावर में उनकी पहली नियुक्ति हुई। तत्पश्चात् वे 1966 के बाद उदयपुर विश्वविद्यालय में रीडर पद पर नियुक्त हुए। 1970 में उन्हें प्रोफेसर पद प्राप्त हो गया। प्रोफेसर बनने के उपरान्त वे पेरिस (फ्रांस), यूनेस्को के एक सम्मेलन में प्रतिभागी बन कर गए, जहां से अन्य देशों की यात्रा करके उन्होने अपने अनुभव का विस्तार किया। उनके नेतृत्व में कई सेमिनार, विचार गोष्ठियां, प्रकाशन आदि गतिविधियां सम्पन्न हुईं।

अमेरिका में उन्हें ऐसे शिक्षकों एवं समाजशास्त्रियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ जो न केवल अपने क्षेत्र के प्रकाण्ड विद्वान थे वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित भी थे। ग्राम स्तर पर अध्ययन पद्धति क्या हो ? केवल यह जानने के लिए उन्होने विश्व के प्रमुख मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों से साक्षात्कार कर तुलनात्मक एवं प्रायोगिक पद्धति पर विवेचन प्रस्तुत किया, जो अपने आप में एक दस्तावेज है। डॉक्टरेट की उपाधि लेकर जब वे भारत लौटे, तब यह प्रश्न विद्वानों में चर्चा का विषय था कि क्या इस नेतृत्व से पंचायतीराज चल पाएगा ? भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था में यह सवाल आज भी है, पर तत्कालीन परिवेश में यह अध्ययन अपनी जगह महत्त्वपूर्ण था।

शर्मा ने कई नई दिशाएं दीं। बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी शर्मा ने राजस्थान समाजशास्त्र परिषद् की कार्यकारिणी के कई पदों पर कार्य किया। वे कई पत्रिकाओं के सलाहकार मंडल में भी थे। विश्वविद्यालय स्तर पर छात्र कल्याण अधीक्षक, मानद पुस्तकालयाध्यक्ष तथा विभिन्न समितियों की सदस्यता उन्हें प्राप्त हुई। सुखाड़िया विश्वविद्यालय में जनसंख्या अनुसंधान केन्द्र एवं जनसंख्या अध्ययन प्रकोष्ठ की स्थापना उन्ही की देन है। वे इसके मानद निदेशक भी रहे। समाजशास्त्र हिन्दी कार्य समिति की शुरूआत उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है। उन्होंने लोगों को इस संस्था में भागीदारी के लिए प्रेरित भी किया। अपने अन्तिम समय में वे भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद् द्वारा प्रायोजित एक प्रोजेक्ट 'राजस्थान में भूतपूर्व जागीरदार' पर कार्यरत थे। इसके पूर्व उन्होंने विश्वविद्यालय अनुसंधान आयोग, नई दिल्ली द्वारा पोषित एक अनुसंधान परियोजना को पूर्ण किया जिसका विषय था 'भारत में राजनीतिक समाजशास्त्रीय अध्ययनों की संदर्भ सूची'। इस प्रोजेक्ट को उनकी असामयिक मृत्यु के कारण उनके शिष्य सी.एल. शर्मा द्वारा पूर्ण किया गया और उस पर आधारित पुस्तक का प्रकाशन भी हुआ जिसका शीर्षक है – द रूलिंग एलीट ऑफ राजस्थान। तीन समाजशास्त्र प्रवक्ताओं आर.ए. पी. सिंह, एन.के. भार्गव एवं सी.एल. शर्मा को उनके मार्गदर्शन में पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गई, जिनके शोध विषय लगभग समान थे। तीनों ने राजस्थान के बदलते नेतृत्व को ग्रामीण स्तर (आर.ए.पी. सिंह), नगरीय नेतृत्व (सी.एल. शर्मा) एवं प्रादेशिक नेतृत्व (एन.के. भार्गव) को आनुभविक स्तर पर परीक्षित किया।

ग्रामीण नेतृत्व प्रतिमानों के पूर्व अध्ययनों की समीक्षा

नेतृत्व प्रतिमानों के अध्ययन के लिए विद्वानों ने 'शक्ति संरचना', 'पावर इलीट' एवं 'प्रभावी समूह' जैसी अवधारणाओं का प्रयोग करके इनके परम्परागत एवं आधुनिक स्वरूपों को प्रस्तुत किया है। इनमें योगेन्द्रसिंह (1969), ओमन (1969, 1970), बेते (1966), दुबे (1958), मेहता (1972), सिरसीकर (1970), चौहान (1967, 1984) एवं के.एल. शर्मा (1969) द्वारा सम्पन्न किए गए अध्ययन प्रमुख हैं। इन विद्धानों द्वारा अध्ययित नेतृत्व प्रतिमानों को आनुभविक स्तर पर वास्तविक रूप में तभी समझा जा सकता है जब नेतृत्व को किसी क्षेत्र विशेष में चिन्हित किया जाए। नेतृत्व प्रतिमान या शक्ति संरचना की पहचान हेतु लेखकों द्वारा निम्न तीन में से किसी एक या एक से अधिक विधियों को बताया गया है –

1. पदमूलक (Positional)
2. नीति निर्धारण एवं क्रियान्वयन क्षमता (Dicision-making capacity)
3. प्रतिष्ठा मूलक (Reputational)

ये सभी अध्ययन विधियां आधुनिक ग्रामीण नेतृत्व प्रतिमानों के विश्लेषण में प्रासंगिक हैं।

शर्मा का ग्रामीण नेतृत्व अध्ययन में पद्धतिशास्त्रीय योगदान

ग्रामीण नेतृत्व में केन्द्रीय चर राजनीतिक दलों के प्रति प्रतिबद्धता है तथा उससे जुड़े हुए अन्य चरों

में नेताओं की जातिगत पृष्ठभूमि, द्वन्द्वात्मक समूहों में सदस्यता तथा ग्रामीण समुदायों का पंचायत समिति स्तर पर संबंध प्रमुख हैं। ग्रामीण नेतृत्व के प्रतिमानों पर इन चरों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए शर्मा ने राजस्थान की राजनीतिक व्यवस्था के साथ–साथ ग्रामीण स्तर पर त्रि–स्तरीय प्रारूप बनाकर एक विस्तृत आनुभविक अध्ययन का अभिकल्प प्रस्तुत किया, जिसे चित्र संख्या एक में प्रदर्शित किया गया है। इस अभिकल्प में राजस्थान की दो पंचायत समितियों – दरबारपुरा व नरसिंहगढ़, जो जयपुर शहर से क्रमशः 40 व 70 किमी दूर हैं, का चयन इस प्रकार किया गया कि इनमें से एक पंचायत समिति में कांग्रेस पार्टी के सरपंचों का बहुमत होने के साथ–साथ उसका प्रधान भी कांग्रेस पार्टी का ही हो। दूसरी पंचायत समिति का चयन इस आधार पर किया गया जिसमें अधिकांश सरपंच स्वतंत्र पार्टी के हों तथा पंचायत समिति का प्रधान भी इसी पार्टी से हो। इस प्रकार एक पंचायत समिति में तत्कालीन शासक दल जो कि कांग्रेस थी, का नियंत्रण था तथा दूसरी समिति में प्रमुख विरोधी दल प्रभावशाली था जो कि स्वतंत्र पार्टी थी। अध्ययन क्षेत्र के चयन को इसी क्रम में आगे बढ़ाते हुए प्रत्येक पंचायत समिति में से भी एक ग्राम पंचायत कांग्रेस पार्टी के सरपंच की, जबकि दूसरी ग्राम पंचायत स्वतंत्र पार्टी के सरपंच वाली चुनी गई। तत्कालीन राजस्थान की राजनीतिक व्यवस्था में स्वतंत्र पार्टी एवं जनसंघ प्रमुख विरोधी दल थे। जयपुर क्षेत्र में स्वतंत्र पार्टी का प्रभुत्व था। कालान्तर में ये पार्टियां विलय होकर वर्तमान की भारतीय जनता पार्टी के रूप में उभरी हैं। स्वतंत्र पार्टी का नेतृत्व महारानी गायत्री देवी ने और जनसंघ का नेतृत्व भेरूसिंह शेखावत ने किया।

चित्र – 1: ग्रामीण नेतृत्व का अनुसंधान अभिकल्प

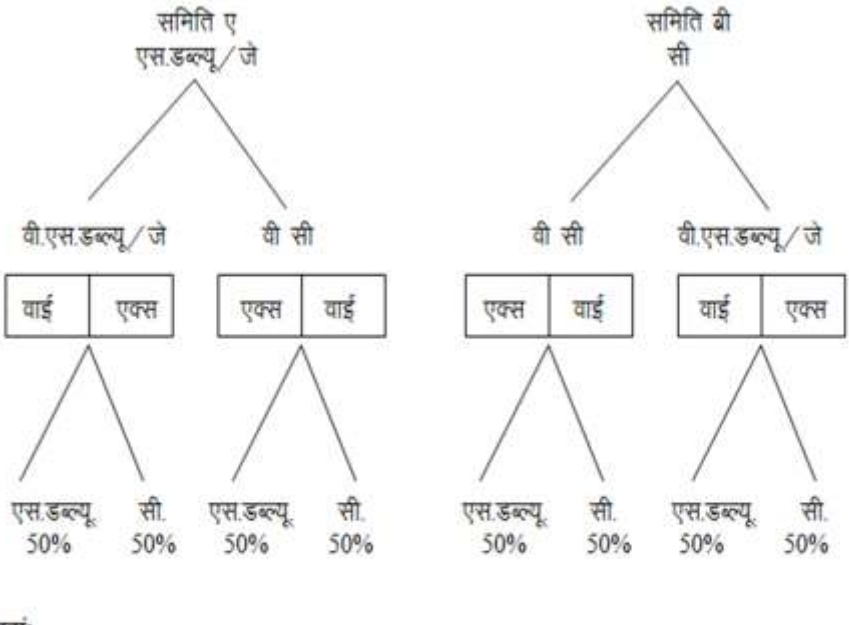

जहां:

एस.डब्ल्यू/जे	= समिति ए. स्वतन्त्र पार्टी (पूर्व जागीरदार) बहुमत के साथ	सी	= समिति बी. कांग्रेस पार्टी बहुमत के साथ
वी.एस.डब्ल्यू/जे	= ग्राम पंचायत. स्वतंत्र पार्टी बहुमत के साथ	वी. सी.	= ग्राम पंचायत. कांग्रेस पार्टी बहुमत के साथ
एस.डब्ल्यू 50%	= ग्राम स्तर पर स्वतंत्र पार्टी के वोट=50%	वाई	= ग्राम पंचायत स्तर पर स्वतंत्र पार्टी के नेता
सी 50%	= ग्राम स्तर पर कांग्रेस पार्टी के वोट=50%	एक्स	= ग्राम पंचायत स्तर पर कांग्रेस पार्टी के नेता

(स्त्रोत : ओ.पी.शर्मा, 1966, पृष्ठ सं. 31)

इस अनुसंधान प्रारूप को अन्तिम रूप से स्वीकार करने से पूर्व शर्मा द्वारा दो अन्य सम्भावित प्रारूपों को कारणों सहित अस्वीकार किया गया। नेताओं से साक्षात्कार में उन्होंने दरबारपुरा समिति के वास्तविक चयनित नेताओं की कुल संख्या 111 में से 108 तथा नरसिंहगढ़ समिति के वास्तविक चयनित नेताओं की कुल संख्या 94 में से 81 से अनुसूची की सहायता से साक्षात्कार किया। जिनसे वे साक्षात्कार नहीं कर पाए उनके कारणों का भी उन्होंने उल्लेख किया है। संकेन्द्रित साक्षात्कार भी उन्होंने सम्पन्न किया जिसमें प्रधान, उप–प्रधान, कुछ अन्य विरोधी नेताओं के रूप में उभरे सरपंच, हारे हुए प्रधान, उप प्रधान, विकास अधिकारी के साथ बहुत से विस्तार अधिकारी सम्मिलित हैं।

नेतृत्व के अपने इस अध्ययन में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि केवल नेताओं से साक्षात्कार करना पर्याप्त नहीं है अपितु ग्रामवासियों की सहभागिता एवं उनका दृष्टिकोण जानना भी महत्वपूर्ण है, जो सत्ता का मूलाधार है। इस दृष्टि से उन्होने दरबारपुरा पंचायत समिति की दो ग्राम पंचायतों – रामपुरा और नाहरखेड़ा तथा नरसिंहगढ़ पंचायत समिति की दो ग्राम पंचायतों – प्रतापगढ़ एवं नरपतखेड़ा का चयन किया। कुल चार ग्राम पंचायतों का चयन इस प्रकार किया कि रामपुरा और नाहरखेड़ा में स्वतंत्र पार्टी व प्रतापगढ़ एवं नरपतखेड़ा में कांग्रेस पार्टी के सरपंच थे। इन चार ग्राम पंचायतों में कुल 34 वार्ड थे जिनमें से 21 वार्डों का चयन ग्रामवासियों के साक्षात्कार हेतु किया। भौगोलिक क्षेत्र की सीमा एवं मतदान व्यवहार को ध्यान में रखते हुए कुल वार्डों का 60 प्रतिशत निदर्शन, दैव निदर्शन की लाटरी पद्धति द्वारा किया गया। इन 21 वार्डों से स्तरीकृत दैव निदर्शन के आधार पर कुल 515 ग्रामवासियों से साक्षात्कार सम्पन्न किए गए। ग्रामवासियों के साक्षात्कार में स्थानीयता, निवास की दीर्घकालीन अवधि व जाति को प्रमुख आधार बनाया। वार्डवार जातिसूची भी बनाई गई, जिसमें प्रत्येक वार्ड से प्रत्येक जाति के 33 प्रतिशत मतदाता भी साक्षात्कार में सम्मिलित किए गए।

उपर्युक्त प्रतिदर्श प्रारूप में शर्मा द्वारा अपनाई गई पद्धति अधिक उपयुक्त लगती है, जिसमें उन्होने पंचायत समिति एवं ग्राम पंचायत स्तर का चयन उद्देश्यपूर्ण एवं सुविधाजनक निदर्शन प्रारूप के आधार पर किया। इसमें नियंत्रित प्रारूप को ध्यान में रखते हुए जिस प्रमुख चर या कारक का प्रभाव वे जानना चाहते थे, उसे एक पंचायत समिति में उपस्थित रखते हुए चयन किया तथा दूसरी पंचायत समिति का चयन उसके अभाव में किया। उनके चयन की एक पंचायत समिति कांग्रेस सत्ताधारी दल के प्रधान की थी जबकि दूसरी पंचायत समिति का प्रधान स्वतंत्र पार्टी का था। यही क्रम ग्राम पंचायत स्तर पर भी अपनाया गया। इस प्रारूप की प्रासंगिकता वर्तमान नेतृत्व प्रतिमानों के अध्ययन में स्वीकार की जा सकती है।

ग्रामीण नेतृत्व के उभरते नवीन प्रतिमान

राजस्थान के नेतृत्व प्रतिमानों में ग्रामीण नेतृत्व समाजशास्त्रीय विमर्श का विषय रहा है। आजादी के पूर्व यहां के नेतृत्व प्रतिमान के आधार परंपरागत थे, जिसमें जमींदारी, जागीरदारी, जाति व्यवस्था एवं धार्मिक आधार प्रमुख थे। इनमें शक्ति का केंद्र प्रभावशाली लोगों के हाथ में था, जो सदियों से सत्ता के केंद्र बने हुए थे। जैसे राजा–महाराजा, राजकुमार, जाति, पंथ, पंडित, पुजारी, इत्यादि। 1950 के दशक में जमींदारी–जागीरदारी प्रथा के उन्मूलन के साथ ही प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत शक्ति का विकेंद्रीकरण हुआ और 1959 में राजस्थान में पंचायतीराज व्यवस्था का त्रि–स्तरीय प्रारूप स्वीकार किया गया। इस नई व्यवस्था में राजस्थान की कुल आबादी के दो तिहाई ग्रामीण भाग को नेतृत्व के नवीन चरों से परिचित करवाया गया। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्र में वर्तमान परिवेश में नेतृत्व प्रतिमानों के नवीन आधारों को समझना आवश्यक है। इन नवीन आधारों में राजनीतिक दलों की सदस्यता, जातिगत, धार्मिक एवं क्षेत्रीय पहचान, लिंगभेद, उम्रभेद, गुटबंदी, दबाव समूह, हित समूह, व्यवसायगत पहचान, किसानी, युवा नेतृत्व, महिला नेतृत्व आदि प्रमुख हैं, जिनकी ग्रामीण नेतृत्व के अध्ययनों में सूक्ष्म एवं वृहत

स्तरों पर पहचान की आवश्यकता है। इस पहचान में निम्न पहलुओं का समावेश बदलते परिवेश में विषयानुकूल होगा –

1. राजनीतिक दलों की सदस्यता प्राप्त नेतृत्व में केंद्र स्तरीय नेतृत्व का ग्राम स्तरीय नेतृत्व पर प्रभाव एवं संरक्षण।
2. प्रभावी स्वतंत्र नेतृत्व द्वारा दलीय प्रभावशीलता।
3. जातिगत, धार्मिक एवं क्षेत्रीय आधार पर व्यक्तिगत वर्चस्व एवं मतदान व्यवहार पर प्रभाव ।
4. व्यक्तिगत, क्षेत्रीय एवं जातिगत पहचान तथा नेतृत्व हेतु दलीय प्रभाव।
5. ग्रामीण नेतृत्व हेतु नगरीय, दलीय एवं संगठनात्मक संरचना का प्रभाव।
6. क्षेत्रीय स्तर पर अधिक प्रभावशीलता से ग्राम स्तरीय नेतृत्व पर निर्णायक भूमिका एवं प्रभाव।
7. महिला एवं पुरुष नेतृत्व, लिंग भेद एवं गुटबन्दी।
8. दलीय दबाव एवं हित समूह की नेतृत्व में भूमिका।
9. शिक्षा एवं व्यवसाय की नेतृत्व में बढ़ती भूमिका।
10. युवा एवं महिला नेतृत्व को प्रोत्साहन।
11. वोट बैंक एवं अनुयायियों के सन्दर्भ में शक्ति प्रदर्शन।
12. नेतृत्व संरक्षण एवं परिवर्तन में मीडिया की भूमिका।
13. स्थानीय, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय मुद्दों का सूक्ष्म स्तरीय नेतृत्व पर प्रभाव।
14. नेतृत्व हेतु जातिगत दबाव।
15. धर्म आधारित मुद्दे एवं नेतृत्व हेतु धार्मिक तथा समूहगत विशिष्ट प्रभाव।
16. ग्रामीण–नगरीय अन्तःक्रियाएं।

इन पहलुओं का समावेश यदि ग्रामीण नेतृत्व के अध्ययन हेतु किया जाता है तो कई नवीन पक्ष सामने आते हैं, जिन्हें निम्न प्रकार से देखा जा सकता है –

- ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र पूर्ण तरह विलग नहीं हैं, इनमें निरंतर घालमेल की अंतः क्रियाएं होती हैं, जो मीडिया, शिक्षा आदि से प्रभावित हैं।
- सूक्ष्म स्तर पर महिला अथवा पुरुष नेतृत्व में वही प्रभावशाली रहता है, जो वृहद स्तर पर पदस्थापित एवं प्रभावशाली है।
- संस्थागत दृष्टि से ग्राम स्तर पर वही नेता प्रभावशाली होता है, जिसे तहसील और जिला स्तर पर विशेष पद, प्रतिष्ठा और निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त है।
- सूक्ष्म स्तर के नेतृत्व में वे ही नेता प्रभावशाली हो पाते हैं, जो वर्तमान परिवेश की विकास, सहकारी एवं आर्थिक योजनाओं के बारे में आमजन को न केवल जानकारी दें बल्कि उन्हें लाभान्वित करने में स्वयं की भूमिका को भी गतिशील बनाएं।
- परम्परागत नेतृत्व में जहां शक्ति के आधारों, जिनमें परिवार, जाति, जमींदारी, जागीरदारी, पद एवं उत्तराधिकारी का विशेष महत्त्व था, वहीं वर्तमान परिस्थितियों में उनके स्थान पर नेतृत्व निर्धारण में व्यक्ति के अर्जित गुणों, जैसे राजनीतिक दल में सहभागिता, सहकारिता आंदोलन में भूमिका, नवीन व्यवसायिक उपलब्धियों एवं करिश्माई गुणों आदि की विशेष भूमिका दिखाई देती है।
- ग्रामीण नेतृत्व में जिस व्यक्ति के पास प्रदत्त एवं अर्जित गुणों का जितना अधिक मिश्रण है वह उतना अधिक प्रभावशाली नेतृत्व को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभा रहा है।

- ग्राम स्तर के नेतृत्व में मतदान की प्रक्रिया में बदलाव के साथ परंपरागत कांग्रेस समर्थकों में परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन में परंपरागत उम्रदराज नेताओं को चुनौती देकर युवा नेतृत्व उभर कर सामने आया है।
- विगत कुछ दशकों से राजस्थान में मध्यम वर्ग का स्तर जो पहले केवल 5 से 10 प्रतिशत ही था, अब बढ़कर लगभग 40 प्रतिशत के आसपास हो गया है। नवीन उभरते नेतृत्व की पहचान भी स्थानीय स्तर पर इसी वर्ग से है।
- ग्राम स्तर के नेतृत्व में नेतृत्व कौशल, नगरीय नेतृत्व की तुलना में प्रांतीय या राष्ट्रीय स्तर तक अपनी पहचान बहुत कम बना पाता है।
- ग्रामीण नेतृत्व में दलगत गुटबंदी एवं दबाव समूह तथा कृशक हित समूह उभरकर सामने आए हैं, जो विभिन्न राजनीतिक दलों से सम्बद्ध हैं। इनके आधार जाति, धर्म, पारिवारिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि है।
- गांव में पंचायतों की चौपाल परम्परा का स्थान अब आधुनिक मीडिया, सोशल साइट्स एवं केबल संस्कृति ने ले लिया है। इससे ग्राम स्तरीय विमर्श के मुद्दों के स्थान पर प्रांतीय एवं राष्ट्रीय मुद्दों ने ग्राम स्तर के लोगों को प्रभावित किया है।
- ग्राम स्तर पर ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायतों की सैद्धांतिक भूमिका बढ़ी है, परंतु ग्राम स्तरीय निर्णय प्रक्रिया में जिला एवं प्रांत स्तरीय नेतृत्व का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

पद्धतिशास्त्रीय नवीन संभावनाएं

ग्रामीण नेतृत्व के उभरते प्रतिमान के विभिन्न आधारों एवं चरों के संदर्भ में पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से दो प्रकार से समीक्षा की जा सकती है –

1. द्वितीयक तथ्य सामग्री आधारित समीक्षा।
2. क्षेत्रीय अध्ययन आधारित (प्राथमिक स्त्रोत आधारित) समीक्षा।

द्वितीयक तथ्य सामग्री आधारित समीक्षा में उन अध्ययनों को सम्मिलित किया जा सकता है, जो ग्रामीण नेतृत्व के संदर्भ में पूर्व विद्वानों द्वारा संपन्न किए गए हैं। नवीन ग्रामीण नेतृत्व के उभरते प्रतिमान के अध्ययन हेतु एक विकल्प यह है कि पूर्व में संपन्न अध्ययनों के निष्कर्षों को उपकल्पना के रूप में अध्ययन का आधार बनाते हुए उनका परीक्षण किया जाए। दूसरा विकल्प यह है कि क्षेत्रीय अध्ययन संपन्न कर के पूर्व विद्वानों द्वारा अपनाई गई अध्ययन पद्धति को और अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाए जैसा कि शर्मा ने अपने तत्कालीन अध्ययन में किया।

समाजशास्त्र में वर्तमान आनुभविक अध्ययनों में निदर्शन का आकार और स्वरूप निर्धारित करने में 200 अथवा 300 की संख्या बिना किसी तार्किक कारण एवं दैव निदर्शन विधि को अपनाकर निर्धारित की जाती है, जो उचित नहीं है। इसके स्थान पर निदर्शन का समग्र तय करने के उपरान्त निश्चित प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाईयों का चयन प्रतिशत निर्धारण करके करना चाहिए। इसके साथ ही नियंत्रण के चरों की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति को ध्यान में रखकर क्षेत्र का चयन किया जाना चाहिए। विशेषकर, तुलना करने के उद्देश्य से क्षेत्र और इकाइयों की प्रकृति को ध्यान रखा जाना चाहिए।

चित्र – 2 : राजस्थान के ग्रामीण नेतृत्व का अध्ययन प्रारूप

चित्र संख्या 2 में प्रदर्शित अभिकल्प में राजस्थान के ग्रामीण नेतृत्व अध्ययनों हेतु अनुसंधान प्रारूप को दर्शाया गया है। इसमें स्थानीय, जिला एवं प्रादेशिक स्तर के नेतृत्व को प्रभाव की श्रेणी में रखा गया है और तीनों ही स्तरों के नेतृत्व में नेतृत्व की पहचान प्रक्रिया, चरों के अंतःसंबंध एवं भर्ती

संरचना / प्रतिमान को पृथक–पृथक रुप से प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक नेतृत्व निर्धारण में आरक्षण कोटा व्यक्ति की जिताऊ इमेज, अपनी जाति, क्षेत्र या धार्मिक समूह में प्रतिष्ठा सूचकांक, आर्थिक स्थिति एवं शिक्षा स्तर के साथ–साथ व्यक्ति के चुनाव जीतने का अनुभव कितना है यह भी महत्वपूर्ण है। जो शोधार्थी राजस्थान के ग्रामीण नेतृत्व का अध्ययन करने की योजना बनाते हैं, उनके लिए चित्र संख्या 2 में दर्शाई गई जानकारी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस नेतृत्व के बारे में जो सामान्य कथन प्रस्तुत किए गए हैं, उन्हें उपकल्पनाओं के रूप में स्वीकार कर उनका परीक्षण किया जा सकता है।

निष्कर्ष

यह संपूर्ण आलेख राजस्थान में ग्रामीण नेतृत्व अध्ययनों एवं उभरते प्रतिमानों के संदर्भ में पद्धतिशास्त्रीय समीक्षा है, जिसे ओ.पी. शर्मा के द्वारा किए गए ग्रामीण नेतृत्व के अध्ययन को आधार मानकर प्रस्तुत किया गया है। इस पद्धतिशास्त्र के आधार पर प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण एवं पंचायतीराज संस्थाओं के संदर्भ में वृहद अध्ययन पूर्व में संपन्न किए गए हैं, लेकिन तार्किक निदर्शन प्रारूप बनाकर किस प्रकार ग्रामीण नेतृत्व का सूक्ष्म एवं वृहद स्तर पर अध्ययन किया जा सकता है? उसकी रूपरेखा यहां प्रस्तुत की गई है। इस रूपरेखा में ग्रामीण नेतृत्व के अध्ययन के उभरते नवीन आयाम एवं अध्ययन चरों को तो प्रस्तुत किया ही गया है साथ ही लिखित एवं क्षेत्रीय दृष्टिकोण के आधार पर नवीन संदर्भ में अनुसंधान प्रारूप बनाकर अध्ययन की संभावना को भी दर्शाया गया है। नवीन परिवेश में ग्रामीण नेतृत्व के उभरते प्रतिमानों को प्रायोगिक अनुसंधान प्रारूप से प्राथमिकता के आधार पर अध्ययित किए जाने की आवश्यकता है। ग्रामीण नेतृत्व में समाजशास्त्रीय दृष्टि से जो अध्ययन पूर्व में हुए हैं, उनका नवीन संदर्भ में बार–बार अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है, इसमें गवेषणात्मक एवं वर्णनात्मक अध्ययन प्रारूपों को भी अध्ययन का आधार बनाया जा सकता है।

पुनश्च – लेखक, डॉ. नरेश भार्गव एवं डॉ. सी.एल. शर्मा के प्रति आभारी है, जिन्होंने इस लेख हेतु अपने अमूल्य सुझाव प्रदान किए।

References

Beteille, Andre.1965. *Caste, Class and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjor Village*, Mumbai: Oxford.

Chouhan, B. R. 1967. *A Rajasthan Village*, New Delhi: Vikas.

Dube, S. C. 1958. *The Indias Changing Village*, London: Roultedge.

Mehta, S. R. 1972. *Emerging Pattern of Rural Leadership,* New Delhi : Wiley Eastern.

Narayan, I. 1964. *"Democratic Decentralization and Rural Leadership in India: The Rajasthan Experiement", Asian Suvey*, 4(8).

Oommen, T. K. 1970. *"Rural Community Power Structure in India"*, *Social Forces,* 40(2).

Oommen, T. K. 1969. *"Political Leadership in Rural India", Asian Survey,* 9(7).

Sharma K. L. 1969. *"Power Structure and Its Changing Patterns in Rural Rajasthan"*, *Journal of Social Research*, 12(2)

Sharma, O. P. 1966. *Emerging Pattern of Rural Ladership In India*, Unpublished Thesis, USA: Indiana University.

Sharma, O. P. 1971. *"Rural Elites and Politics of Panchaytiraj"* in Prospects of Indian Society (Ed.) Rajeshwar Dayal, Agara: Satish.

Singh, J. 2001. *Methdology and Tectics of Social Research*, New Delhi: Kanishka.

Singh, Y. 1969. *"Changing Power Structure of Village Community"*, Rural Sociology in India (Ed.) A. R. Desai, Mumbai: Popular.

Sirsikar, V. M. 1970. *The Rural Elites in A Developing Society: A Study in Political Sociology*, New Delhi: Orient.

शर्मा, ओ.पी., 1983.*'ग्रामीण भारत में विज्ञान, तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तन'',* समाज विवेचन, भाग 1 (जनवरी).

डॉ. परेश द्विवेदी, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

दक्षिणी राजस्थान की जनजातियों में दागना प्रथा

प्रियंका चौबीसा

सारः यह लेख जनजाति समाज में, विशेष रूप से दक्षिण राजस्थान की जनजातियों में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के एक विशेष पक्ष के संबंध में है। जनजाति समाज में पारंपरिकता के दृष्टिकोण प्रधान हैं। इस समाज के जीवन के विविध पक्षों में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के पक्ष भी सम्मिलित हैं, लेकिन अभी भी ऐसे प्रचलन बहुत हैं, जो आधुनिक चिकित्सा पद्धति से जुड़े नहीं हैं। यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि आज की परिस्थितियों में पारंपरिक एवं आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था के क्या स्वरूप हैं। इस अध्ययन में तीन वैयक्तिक अध्ययनों को आधार बनाते हुए जनजातियों में प्रचलित पारंपरिक चिकित्सा की एक विशिष्ट पद्धति की विवेचना को समाविष्ट किया गया है।

संकेत शब्दः जनजाति, मानवाधिकार, दागना प्रथा, भोपा

वर्तमान में भारत में जनजातियां एक तीव्र संक्रमण काल से गुजर रही हैं। यहां कतिपय जनजातियों को छोड़कर अधिकांश जनजातियां अभी भी विकास के निम्नतम स्तर पर हैं। उनकी विडम्बना दोहरी है, एक ओर वे अपने सामाजिक अस्तित्व को बनाए रखना चाहती हैं, अपने समूह की विशिष्टता, सामाजिक और सांस्कृतिक लक्षणों को संजोए रखना चाहती हैं, तो दूसरी ओर भारतीय समाज की मुख्यधारा में अपने–आपको एकीकृत करना चाहती हैं (नायडू, 2013)।

जनजातियों के जीवन में अनेक रूपांतरण हो रहे हैं। जीवन के विविध क्षेत्रों में कुछ समय से रूपान्तरण के कई दृष्टिकोण उपस्थित हुए हैं। विभिन्न समाजों में स्वास्थ्य और चिकित्सा के अलग–अलग प्रतिमान, प्रचलन और व्यवस्थाएं हैं। जनजातियों के पुरातन प्रचलन, तथाकथित आधुनिक स्वरूपों को अपनाने के साथ बदल रहे हैं। रूपांतरण के ये स्वरूप विविध हैं। रोगों के उपचार की अलग–अलग व्यवस्थाएं होती हैं। मोटे रूप में ये दो प्रकार की हैंः प्रथम आधुनिक चिकित्सा व्यवस्थाएं, और दूसरी परम्परागत या स्थानीय चिकित्सा व्यवस्थाएं। परम्परागत या स्थनीय चिकित्सा व्यवस्था संस्कृति विशिष्ट होती है। इसके चिकित्सक होते हैं ओझा, भोपा और शगुनिया। प्रत्येक बीमारी यहां दैवीय शक्ति या भेरू जी की मान्यता से जुड़ी होती है। दैवी शक्ति आह्वान के उद्देश्यों में संस्कृति विशेष के प्रयोजन पर आधारित ऐसी रहस्यमयी वस्तु या घटनाओं का उद्घाटन किया जाता है जो सामान्यजन के बोध से परे होती हैं।

यह चिकित्सा व्यवस्था निम्न व पिछड़ी जातियों तथा जनजातियों में सामान्य रूप से देखी जा सकती है। ओझा, शगुनिया या भोपा किसी व्यक्ति पर आई विपत्ती को दूर करने के लिए सार्वजनिक रूप से दैवी शक्ति या भेरू जी का आह्वान करते हैं और बीमार व्यक्ति की बीमारी का कारण बताते हैं। वे यह भी बताते हैं कि उन्होंने क्या नहीं किया या और क्या किया जिसकी वजह से यह बीमारी लगी है। इसी श्रृंखला में शरीर दागना भी बीमारी को दूर करने की विधि मानी जाती है। आज भी शारीरिक व्याधियों अथवा रोगों से सम्बन्धित अधिकांश जनजाति रोगी आधुनिक चिकित्सालय में आने से पूर्व परम्परागत उपचारों के तरीकों को अपनाते हैं और उनके प्रभावी परिणाम नहीं होने के बाद अंत में आधुनिक चिकित्सा हेतु आते हैं। जनजाति रोगियों तक आज भी आधुनिक चिकित्सा की व्यापक पहुंच नहीं है तथा ये गरीबी और अज्ञानता के कारण चिकित्सालय कार्मियों के शोषण का शिकार हो जाते हैं।

जनजातियों में विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों की कई समस्याएं हैं जिसमें से दागना प्रथा एक है। यह प्रथा जनजाति समाज में प्राचीन प्रणाली के रूप में परम्परागत रूप से चली आ रही है। दागना प्रथा जनजाति समाज के अतिरिक्त निम्न, पिछड़ी व दलित जातियों में भी देखी जा सकती है।

इस लेख में हम जनजाति समाज की बात कर रहे हैं। वर्तमान में अन्य क्षेत्रों की तरह चिकित्सा के क्षेत्र में भी कई परिवर्तन हुए हैं और आज की चिकित्सा व्यवस्था सुदृढ़ हुई है। कई गंभीर व लाईलाज बीमारियों के लिए विभिन्न खोजों के द्वारा तथा नई–नई तकनीकों का प्रयोग करके चिकित्सा की पद्धतियों का विकास किया गया है, अर्थात वर्तमान चिकित्सा व्यवस्था का काफी विकास हुआ है। परन्तु आज भी कुछ स्थान व समाज ऐसे हैं जहां शुरूआत में परम्परागत चिकित्सा प्रणाली को ही स्थान दिया जाता है और उसी को आधार बनाकर मनुष्यों का इलाज किया जाता है। परन्तु जब किसी चिकित्सा व्यवस्था द्वारा किसी व्यक्ति अथवा विशेषकर बच्चों को शारीरिक–मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाए तो वो मानवाधिकारों का उल्लघंन माना जाता है। दागना प्रथा ऐसी ही परम्परागत चिकित्सा प्रणाली का एक भाग है जिसमें मनुष्य को असहनीय पीड़ा देकर उसे शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। हर बीमारी का ईलाज 'डाम' से करने की भ्रान्तियां कई बार जानलेवा साबित हो चुकी हैं। इसके बावजूद यह चिकित्सा पद्धति बदस्तूर चल रही है। अज्ञानता व अंधविश्वास के कारण लोग इसी को इलाज मानते हैं।

जनजाति समाज में यह विश्वास किया जाता है कि किसी भी व्यक्ति को कोई भी बीमारी होने पर 'डाम' लगाने पर वह ठीक हो जाएगा। इसमें बीमार व्यक्ति के शरीर की किसी विशेष नस को गर्म सलाखों व कपड़े की गोटियों से जलाया जाता है और माना जाता है कि इससे वह व्यक्ति ठीक हो जाएगा। कईं व्यक्तियों ने तो इसे अपना व्यवसाय बना रखा है और उन्होंने कईं लोगों को 'डाम' लगाया है। किसी को हार्ट अटैक हो या हाथ पैर अकड़ जाने की समस्या, बच्चे ज्यादा रोते हों या महिलाओं की सफेद पानी की शिकायत, कोई 'धुणता' हो या किसी को भूत लगा हो हर बीमारी के अनुसार नसों के हिसाब से जगह अलग–अलग होती है पर इलाज एक ही है 'डाम' लगाना। डाम से पीड़ित व्यक्ति को यह गलत भी नहीं लगता क्योंकि वह अपने व अपने परिवार की इच्छा से डाम लगवाता है।

परन्तु इस तरह से किसी को भी शारीरिक प्रताड़ना देना कहां तक उचित है, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। व्यावहारिक तौर पर देखा जाय तो यह प्रथा व्यक्ति के मौलिक अधिकार के तहत जीवन जीने के अधिकार का हनन् करती है। ये अधिकार मानवाधिकार की श्रेणी में आते हैं, जिसमें किसी भी मानव को शारीरिक अथवा मानसिक रूप से प्रताड़ित करना अपराध माना गया है। मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मानव को मानव होने के नाते प्राप्त हैं। ये अधिकार मानव को बिना किसी जाति, धर्म अथवा रंग के भेदभाव के प्राप्त हुए हैं। स्थूल रूप से मानव अधिकार व मौलिक अधिकार वे अधिकार हैं जो, मनुष्यों के जीवन के लिए आवश्यक हैं। इनके बिना मानव अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के बारे में सोच भी नहीं सकता। ये मानव में, मानव होने के फलस्वरूप अन्तर्निहित हैं। मानव अधिकारों को कभी–कभी मौलिक या नैसर्गिक अधिकार भी कहते हैं, क्योंकि ये वे अधिकार हैं, जिन्हें किसी वैधानिक संस्था या सरकार के किसी कृत्य द्वारा छीना नहीं जा सकता है (बाथम, 2006)। चूंकि दागना प्रथा में व्यक्ति के शरीर को गर्म सलाखों से दागा जाता है, और कईं बार तो इसे बच्चों पर भी आजमाया जाता है, तो ऐसे में कहा जा सकता है कि यह प्रथा एक दण्डनीय अपराध है।

इस प्रथा के सम्बन्ध में अधिक जानकारी हेतु दक्षिणी राजस्थान के जनजाति उपयोजना क्षेत्र के डूंगरपुर, उदयपुर व बांसवाड़ा जिले के चयनित अनुसंधान क्षेत्र में दागना प्रथा से सम्बन्धित तीन वैयक्तिक अध्ययन भी किए गए हैं। इन प्रसंगों का उल्लेख यहां किया जा रहा है जो मानव अधिकारों को मजबूती से लागू करने को प्रेरित करते हैं। दागना प्रथा से सम्बन्धित वैयक्तिक अध्ययन निम्न प्रकार हैं–

वैयक्तिक अध्ययन : एक

दागना प्रथा से पीड़ित व्यक्ति 'अ' डूंगरपुर जिले के भोंजातों के ओड़ा गांव के निवासी हैं। इनकी पत्नी का देहांत हो चुका है और वे अपने पिता व बेटों के साथ रहते हैं। इनके दो बेटे व एक बेटी हैं। तीनों ही बच्चों का विवाह हो चुका है। उक्त व्यक्ति की पत्नी का देहांत तीनों बच्चों के विवाह पश्चात् एक बीमारी से हो गया था।

घटनाक्रम के अनुसार इन्हें एक दिन अचानक सीने में दर्द की शिकायत हुई, घबराहट होने लगी और सांस लेने में तकलीफ होने लगी। तब उनके पिता, जो बरसों से इस प्रथा को अपनाते आए हैं, के कहने पर उनके सीने को गर्म सलाखों व जलते हुए कपड़े की गोटियों से डाम लगवाया। परन्तु जब हालत में सुधार नहीं हुआ तो उन्हें जिला अस्पताल लाया गया। चिकित्सकों द्वारा उनकी सभी जांचें करने पर उन्हें हार्ट अटैक की पुष्टि हुई और तत्काल इलाज शुरू किया गया। चिकित्सकों द्वारा उक्त व्यक्ति के परिवार को उन्हें देर से लाने का कारण भी पूछा गया, परन्तु उनके परिवार द्वारा इस संबंध मे कोई सन्तोषप्रद जवाब प्राप्त नहीं हुआ। लेकिन जब उक्त व्यक्ति की जांच की गई तो चिकित्सकों के आश्चर्य की सीमा न रही। उनके शरीर को 10 जगह पर दागा गया था जो बहुत ही भयावह एवं गंभीर स्थिति थी।

दागना प्रथा का यह प्रकरण चिकित्सकों की जांच के दौरान सामने आया। उक्त व्यक्ति या उनके परिवार द्वारा इस संबंध में कोई जानकारी नहीं दी गई थी। यह डाम किसने लगाया है ? इस संबंध में व्यक्ति व उनके परिवार से बात की गई परन्तु इन्होंने स्वयं डाम लगाने की बात कही। संभवतया यह डाम किसी भोपे अथवा बाबा के पास लगवाया गया था, परन्तु उक्त व्यक्ति तथा उनके परिवार द्वारा इस बात को अस्वीकार किया गया। हार्ट अटेक अत्यन्त गम्भीर स्थिति होती है यद्यपि प्रथम बार हार्ट अटेक होने पर उक्त व्यक्ति की जान बच गई, परन्तु यदि यह स्थिति दूसरे या तीसरे हार्ट अटैक पर होती तो इनकी जान बचाना मुश्किल था।

अंधविश्वास की मात्रा इतनी है कि इनके गांव के किसी भी व्यक्ति द्वारा इस बात की सच्चाई को नहीं बताया जा रहा है। गांव के लोगों के अनुसार उनके गांव में ऐसा कोई भोपा या बाबा नहीं रहता जो डाम लगाने का काम करे जबकि अनुसंधान के दौरान कई व्यक्तियों व बच्चों के हाथ–पांव व चेहरों पर उसके निशान देखे गए। इनके परिवार वालों से निशानों के संबंध में पूछने पर कहा गया कि ये बहुत पुराने हैं और बहुत पहले गांव में कोई भोपे–बाबे थे जिनसे ये निशान लगवाया गया था। वर्तमान में ये सभी भोपे–बाबे रहते तो यहीं गांव में व इसके आस–पास हैं ताकि जरूरत पडने पर ये गांव वालों को आसानी से मिल सकें, पर इन्होंने अब अपना रहन–सहन सामान्य सा कर लिया है। इनके पहनावे से भी इनकी पहचान करना मुश्किल है।

यह महसूस किया गया कि पढ़े–लिखे प्रशिक्षित चिकित्सकों से ज्यादा इनको अपनी चिकित्सा व्यवस्था पर विश्वास है। जनजाति समाज की गरीबी व अज्ञानता उनकी सबसे बड़ी दुश्मन है। ये लोग ऋणग्रस्तता से इतने दबे होते हैं कि घर में अचानक आने वाली सभी समस्याओं को कम खर्च में निपटाने की कोशिश करते हैं। इनकी स्थिति देख कर कहा जा सकता है कि चिकित्सालय में अधिक धन व समय खर्च होने के डर से और अपनी परम्परागत चिकित्सा व्यवस्था पर अटूट विश्वास के चलते वे भोपो–बाबों के पास चले जाते हैं। परिणाम असहनीय पीड़ा और तड़प। व्यक्ति 'अ' की पीड़ा और छटपटाहट स्पष्ट करती है कि उन्हे जितनी तकलीफ हार्ट अटैक से नहीं हुई होंगी उससे कहीं ज्यादा सीने पर लगे 10 घावों से हुई। दागना प्रथा से सम्बन्धित प्रसंग द्वारा स्पष्ट होता है कि कई बार व्यक्ति को ऐसी स्थिति में डाम (दाग) लगाया गया है जब वह अपने पूरे होश में भी नहीं होता है, और ऐसी स्थिति में शरीर को सलाखों से जलाना एक अमानवीय कृत्य है।

वैयक्तिक अध्ययन : दो

पीड़ित महिला 'ब' उदयपुर के भाणदा गांव की निवासी हैं। ये जन्म से ही इसी गांव में रहती हैं। इनका विवाह भी इसी गांव में हुआ है। महिला की उम्र–40 वर्ष है तथा ये आंगनवाड़ी में सहायिका के पद पर कार्यरत हैं। पति ठेकेदारी का कार्य करते हैं तथा इनके एक बेटा–बहू भी हैं। बेटा पिता के साथ ही कार्य करता है। ये महिला अशिक्षित हैं। इनके पति ने दूसरी कक्षा तक पढ़ाई कर रखी है तथा बेटे ने मिडिल तक की पढ़ाई कर रखी है। इनकी बहू घर के कामों के साथ–साथ 10वीं की पढ़ाई भी कर रही

हैं। महिला की मासिक आय 1000 रूपया है।

कुछ समय पूर्व महिला के पैरों में दर्द व जकड़न की शिकायत हुई। इनकी सास इन्हें उसी गांव के एक व्यक्ति के पास ले गयी जिसका व्यवसाय ही डाम लगाना है। उस व्यक्ति ने महिला के पैरों को सलाखों से जलाया जिसके निशान आज भी अत्यन्त गहरे हैं। उस डाम के बाद से पीड़ित महिला अच्छे से चल नहीं पातीं है। उनके पैर टेढ़े–मेढ़े पड़ते हैं। उनके लिए कहीं भी पैदल आना–जाना अत्यन्त मुश्किल हो गया है।

महिला से जब इस संबंध में बात की गई तो उन्होंने कहा कि डाम में तकलीफ तो होती है परन्तु व्यक्ति ठीक हो जाता है। उन्होंने कहा कि जब वो 'धुणती' थी तब भी उन्हें पीठ पर डाम लगाया गया था तो वो ठीक हो गई थी। तब उनसे पैरों पर डाम के संबंध में पूछा गया तो उनका कहना है कि ये तो इलाज है, कभी सफल हो जाता है तो कभी असफल भी हो जाता है। क्या कभी डॉक्टर के इलाज असफल नहीं होते ? उनके साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ होगा इसलिए उनके पैर ठीक नहीं हुए।

इस संबंध में गांव वालों से भी बात की गई तो उनका भी यही कहना है कि डाम एक पारम्परिक चिकित्सा प्रणाली है जो कभी सफल हो जाती है तो कभी असफल। उक्त महिला जब विवाह करके इस घर में आई थी तो आए दिन 'धुणती' थी परन्तु जब से उन्हें डाम लगाया है वे ठीक हो गई है।

पीड़ित महिला के परिवार से भी इस संबंध में बात की गई। परन्तु महिला की सास जो कई वर्षों से सरपंच के पद पर रह चुकी है थोड़ा बहुत कानून जानती है और इसी कारण उन्होंने उक्त महिला के साथ हुए डाम से संबंधित किसी भी प्रकार के व्यवहार से साफ इन्कार कर दिया और परिवार के किसी भी सदस्य से बात करवाने से भी इन्कार कर दिया।

उक्त प्रकरण से स्पष्ट होता है कि डाम (दागना प्रथा) लगााना एक ऐसी प्रथा है जिसे आसानी से लोग छोड़ने वाले नहीं हैं। उक्त प्रकरण में पीड़ित महिला इस डाम के कारण चलने–फिरने में असमर्थ हो गई हैं, परन्तु फिर भी उनके अनुसार इस प्रथा में कोई बुराई नहीं है। गांव के कई लोग जानते हैं कि यह गैर–कानूनी है फिर भी इस प्रथा को निभाया जाता है।

यह जानने का प्रयास नहीं किया गया कि पीड़ित महिला के 'धुणने' का क्या कारण था ? उसे भूत लगा है यह समझकर डाम लगा दिया गया। यदि वह ठीक हो गई तो इनके पति ने दूसरी शादी क्यों की? क्या वह अब भी बीमार है ? पीड़िता के पैरों मे क्या समस्या थी ? इस संबंध में भी चिकित्सक की सलाह नहीं ली गई। सीधे ही डाम लगवाने को तैयार हो गए। इन सभी सवालों के जवाब जानने का प्रयास साक्षात्कारकर्ता द्वारा किया गया परन्तु, पीड़ित महिला की चिकित्सकीय जांच की रिपोर्ट व इनके पारिवारिक सदस्यों की सहायता न मिल पाने के कारण ये सवाल अनसुलझे ही रहे। अंधविश्वास की पकड़ इतनी मजबूत है कि कोई समस्या के कारणों को जानना ही नहीं चाहता।

वैयक्तिक अध्ययन : तीन

प्रस्तुत प्रकरण में पीड़ित महिला कुशलगढ़ (बांसवाड़ा) की मूल निवासी हैं। ये अपने परिवार की तीसरी बेटी हैं। इनकी उम्र 26 वर्ष है इनका विवाह 6 वर्ष पूर्व कुशलगढ़ से थोड़ी ही दूरी पर हुआ था। इनके पति कुवैत में व्यवसायरत हैं। इनके दो बड़ी बहनें व एक छोटी बहन तथा एक छोटा भाई है। सभी बहनों का विवाह हो चुका है। छोटे भाई का विवाह भी हो चुका है और वह दुबई में कार्य करता है। इनके पिताजी के एक किराणा की दुकान है। इनकी मां गृहिणी हैं जो घर पर ही रहती हैं तथा थोड़ी बहुत खेती की जमीन है वहां काम करती हैं। इस प्रकार इस परिवार की मासिक आय 12000 से 15000 रूपये है अर्थात इनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी है।

पीड़ित महिला का विवाह तब हुआ जब वे स्वस्थ्य थीं। इन्होंने एक बेटे को जन्म दिया। परन्तु बच्चे के जन्म के कुछ समय बाद ही ये मानसिक रूप से बीमार हो गईं। धीरे–धीरे इन्हें दौरे पड़ने लगे। जैसा कि जनजाति समाज में होता है भूत–प्रेत का साया समझकर इन्हें पीठ पर डाम लगाया गया पर इनमें कोई सुधार नहीं हुआ। ससुराल वालों ने इन्हें मायके भेज दिया। मायके वालों ने शर्त रखी कि यदि वे इनके बेटे को रख लें तो वे इन्हें अपने घर मे शरण दे देंगे। ससुराल वाले इनके बेटे को ले गए। आज ये महिला इनके ही घर में एक पागल और लावारिस का जीवन जी रही हैं। घर के बाहर एक कोने में पड़ी रहती हैं। बाहर ही खाना दे दिया जाता है, कभी–कभी इन्हें दौरे भी पड़ते हैं तो रस्सी से पशुओं की तरह बांध देते हैं, परन्तु इनका इलाज करवाने का ख्याल भी किसी को नहीं आता।

पीड़िता से बात करने की कोशिश की गई पर उन्होंने दुश्मन समझकर पत्थर फेंकना शुरू कर दिया। महिला के ससुराल पक्ष से भी बात की गई तो उन्होंने कहा कि उन्होंने पीड़िता को कोई डाम–वाम नहीं लगवाया। ये तो उसके मायके वालों ने लगवाया होगा। वे इस बारे में कुछ नहीं जानते और उनके परिवार में कभी किसी को डाम नहीं लगवाया गया। महिला की सास का कहना है कि यह शादी धोखे से करवाई गई है। पीड़ित महिला पहले से ही पागल थी उनके बेटे तथा उनके साथ धोखा हुआ है। महिला के ससुराल वालों का कहना है कि उनका बेटा कमाता है। वे उसकी दूसरी शादी करवा देंगे।

उक्त प्रकरण में पीड़ित महिला एक साथ कईं दुःख झेल रही है। उसका कोई नहीं है। उसके बेटे का क्या दोष था जिसे उसकी मां से अलग कर दिया गया। अलग करने वाले कौन ? पीड़िता के अपने ही माता–पिता। इसके बाद भी वे एक पागल होने का उलाहना सह रही हैं। डाम का दंश दिया जाता है ताकि वे ठीक हो जाएं लेकिन किसी भी चिकित्सक की सलाह नहीं ली जा रही।

माता–पिता या पति कोई भी उस महिला के दर्द को नहीं समझ रहा। महिला एक पशु की भांति खूंटे से बंधी रहती हैं और एक बंदी की भांति जीवनयापन कर रही हैं।

उपर्युक्त वर्णित सभी प्रसंग स्पष्ट करते हैं कि आज भी जनजाति समाज उन सभी परम्पराओं को मानता है जो न केवल दकियानूसी हैं अपितु बहुत असहनीय और पीड़ादायक भी। मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उसकी स्वस्थ काया और स्वस्थ मस्तिष्क पर निर्भर करता है परन्तु यदि मनुष्य शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित है तो वह चाह कर भी अपने या अपने परिवार के लिए कुछ नहीं कर सकता। जनजाति समाज के लिए रीति–रिवाज, परम्पराएं आदि इनकी संस्कृति है। इन्हें छोडकर ये अपने पूर्वजों को नाराज नहीं करना चाहते और इसी कारण ये लोग जाने–अनजाने किसी न किसी के अथवा स्वयं के अधिकार का हनन् कर रहे हैं। इसी कारण इस क्षेत्र में मानवाधिकारों की स्थिति ठीक नहीं है।

जनजाति समाज में दागना प्रथा जैसी प्रथाएं सामाजिक समस्याएं हैं जो इस समाज के सदस्यों को किसी न किसी तरह से पीड़ित करती हैं। ग्रामीण परिवार आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को अपनाना नहीं चाहते। वे परम्परागत चिकित्सा प्रणाली में अधिक विश्वास करते हैं क्योंकि यह सुविधा उन्हें अपने गांव में ही आसानी से उपलब्ध हो जाती है। यह प्रथा मानवाधिकार के मौलिक अधिकार के तहत् जीवन जीने के अधिकार, क्रूरता व अमानवीय व्यवहार से बचाव का अधिकार, सुरक्षा के अधिकार और राहत पाने के अधिकारों का प्रत्यक्ष रूप से हनन् है।

मानवाधिकार के दृष्टिकोण से देखें तो स्पष्ट होता है कि यदि मानव को मानव होने के नाते यह अधिकार है कि वह स्वतन्त्र रूप से किसी भी व्यक्तिगत हस्तक्षेप के बिना अपना जीवन जी सकता है, तो यह प्रथा (दागना) मानव के अधिकारों का हनन् करती है। किसी भी व्यक्ति को अधिकार नहीं है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित करे, उसे चोट पहुंचाए। परन्तु, अगर

ऐसा होता है चाहे वो प्रताड़ित व्यक्ति की इच्छा से ही क्यों न हो तो, यह मानवाधिकार हनन् के तहत् आता है। यह इसलिए क्योंकि प्रताड़ित व्यक्ति को इसकी जानकारी नहीं है परन्तु, प्रताड़ित करने वाला व्यक्ति उसके परिणाम से अवगत है। वह जानता है कि उसके कुछ भी करने से किसी भी बीमारी का इलाज सम्भव नहीं है। आवश्यक चिकित्सकीय परामर्श से ही कोई व्यक्ति ठीक हो सकता है। परन्तु, जनजाति वर्ग के व्यक्तियों की अज्ञानता का फायदा इन व्यक्तियों द्वारा उठाया जा रहा है ।

वास्तव में यह प्रथा अकबर ने अपने घोड़ों व सवारों की सही संख्या निर्धारित करने के लिये सन् 1574 में प्रारम्भ की थी। घोड़ों को दागने पर यह दागना प्रथा व सैनिकों को दागने पर यह तसहीहा प्रथा कहलाती थी परन्तु, धीरे–धीरे इस प्रथा का रूप विकृत होता गया और वर्तमान में यह प्रथा महिला–पुरूष और बच्चों तक पर आजमाई जाती है। कुछ लोगों ने स्वार्थवश इस प्रथा को अपना व्यवसाय बना लिया है। जनजातीय लोग जो इन सब बातों से अनजान है, अज्ञानतावश इन स्वार्थी लोगों के पास इलाज हेतु चले जाते हैं, और अपने ही लोगों अथवा स्वयं को पीड़ित करते व करवाते हैं।

निष्कर्ष

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है कि इस लेख का उद्देश्य जनजाति समाज में पाई जाने वाली दागना नामक कुप्रथा का मानवाधिकार के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करना है। अतः वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा इस कुप्रथा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जनजाति समाज के अपने सामाजिक व सांस्कृतिक मानक हैं, जिनके प्रति उनकी आस्था व उनका विश्वास जुड़ा है, परन्तु जो आस्था और विश्वास किसी को शारीरिक प्रताड़ना और मानसिक वेदना देता है तो वह आस्था नहीं अंधविश्वास है।

जनजाति सदस्य और इसका युवा वर्ग भी चिकित्सक से ज्यादा तो भोपे–बाबाओं पर विश्वास कर रहे हैं और इसका फायदा तथाकथित ढोंगी, भोपे और बाबा उठा रहें हैं। यह एक विचारणीय विषय है। यद्यपि इस प्रथा से पीड़ित कई व्यक्ति स्वयं इसका समर्थन करते हैं उनके अनुसार यह एक परम्परागत चिकित्सा प्रणाली है जो मनुष्य का इलाज करती है तो इसमें गलत क्या है ? परन्तु गर्म सलाखों से शरीर को दागना एक अमानवीय कृत्य के अन्तर्गत आता है और अगर शरीर किसी बच्चे का हो तो यह जघन्य अपराध है। जहां मानवाधिकारों की इतनी चर्चा है वहां किसी के भी साथ असामाजिक व्यवहार अत्यन्त दुःख का विषय है। कुछ लोग जो अपने अधिकारों को लेकर जागरूक हैं वे तो शिकायत द्वारा अपने अधिकारों को छीनना जानते हैं। आज का युग कम्प्यूटर युग कहा जाता है। मानव ने चांद तक पहुंच का रास्ता सहज बना लिया है, और इन परिस्थितियों में भी हम अब तक गर्म सलाखों से ईलाज कर रहें हैं, यह स्थिति अत्यन्त दुःखद है। ऐसी समस्याओं का समाधान मानवाधिकार के पोषण में निहित है।

इस कुप्रथा को समाप्त करने हेतु आवश्यक है कि चिकित्सा व्यवस्था और स्वास्थ्य कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता अभियान चलाए जाए जिससे की जनजाति समाज और इसका युवा वर्ग अंधविश्वास और भोपे–बाबाओं से दूर रहे। जनजाति युवाओं को इस हेतु प्रेरित करने करने की आवश्यकता है क्योंकि ये युवा ही इस समाज का भविष्य हैं।

References

नायडू, पी. आर. 2013. *भारत के जनजाति विकास की समस्याएं,* नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.
उप्रेति, हरिशचन्द्र. 2000. *भारत में जनजातियां : संरचना एवं विकास,* दिल्ली : अंकित पब्लिकेशन.
बाथम, मनोहर. 2006. *अस्तित्व का संकट और मानवाधिकार,* दिल्ली : मेधा बुक्स प्रकाशन.

डॉ प्रियंका चौबीसा, प्राचार्य, दिशा डिग्री कॉलेज, डूंगरपुर

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

युवा और जेन्डर भेदभाव

अनुकृति राव

सारः समाज विज्ञानों में जेन्डर अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। नारीवादियों की चर्चा सामाजिक विज्ञानों में विशेष महत्व की है लेकिन इस विषय पर युवा वर्ग से संबंधित विशेष कार्य उपलब्ध नहीं है। इसलिए दक्षिण राजस्थान के उदयपुर नगर के युवक व युवतियों के विचारों को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करने और आधुनिक विचारधारा से उनके व्यवहारिक और वैचारिक दृष्टिकोण में आए परिवर्तन को नारीवादी परिप्रेक्ष्य से विश्लेषित करने का प्रयास इस लेख में किया गया है। यह एक सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत है, जिसमें नारीवादी आधारों का परीक्षण किया गया है।

संकेत शब्दः जेन्डर, भेदभाव, नारीवादी, पितृसत्ता

नर–नारी भेदभाव वैश्विक है, जेन्डर भेदभाव या गैर–बराबरी का संबंध आशय किसी एक देश या समाज से नहीं है। विभिन्न समाजों के समाजिक परिप्रेक्ष्यों में कुछ भिन्नता अवश्य हो सकती है लेकिन नारी की स्थिति प्रायः सारे विश्व में लगभग समान है। वैश्वीकरण के इस विश्लेषण में नारीवाद का आलोच्य और जेन्डर विश्लेषण अपने सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य से थोड़ा भिन्न है। वास्तविकता में जेन्डर सामाजिक परिवेशों में वर्ग, नृजातीयता, प्रजाति, तार्किकता तथा योजना सभी से मिलता–जुलता है। स्त्री–पुरुष के बीच का यह प्रश्न वैश्विक स्तर का प्रश्न है। सामाजिक रूप से सीखा हुआ यह व्यवहार स्त्रीत्व और पुरुषत्व के बीच के भेदभाव का विश्लेषण है।

वैश्विक स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था जैसे–जैसे सुदृढ़ होती गई, महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष लाने की मुहिम तेज होती गई। वैश्विक स्तर पर नारीवादी आन्दोलनों ने कई मुद्दों को जन्म दिया है। जेन्डर, गरीबी, व्यवसायों की समानता, अधिकारों की समानता और व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता सभी कुछ वैश्विक स्तर पर स्थापित आन्दोलन में शामिल हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस घोषित किया गया। सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा–पत्र में स्त्री–पुरुष समानता की उद्घोषणा की। विश्व आर्थिक फोरम ने 58 देशों में लिंग भेद के अध्ययन के बाद भारत को 53वां स्थान दिया। यह भेदभाव आर्थिक सहभागिता, आर्थिक अवसर, राजनीतिक सशक्तीकरण, शिक्षा और प्रजनन तथा स्वास्थय के क्षेत्रों में देखा गया। भारत, पाक, तुर्की, मिश्र जैसे बड़े आकार वाले देश जेन्डर भेदभाव की सूची में सबसे नीचे रहे हैं।

जेन्डर की अवधारणा का संबंध स्त्रियों और पुरुषों के बीच सामाजिक रूप से निर्मित भेदभाव से है। यह भेदभाव संस्कृति, विचारधारा और तार्किक धारणाओं तक ही नहीं हैं बल्कि भिन्न क्षेत्रों जैसे– घर, विद्यालय, कार्यस्थल, बाजार आदि में भी हैं। मानव समाज में व्याप्त भेदभाव आधारित व्यवहारों का एक मानक पुंज और नियमांकन है जो भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था में समाजीकरण द्वारा लड़कों और लड़कियों में भेदभाव के रूप में हस्तान्तरित होता है। लड़कों की तुलना में लड़कियों के साथ शिक्षा, केरियर चुनाव, भोजन, स्वास्थ्य, पहनावे में निर्णय करने तथा घर के बाहर निकलने में कहीं न्यून तो कहीं अधिक रूप में भेदभाव किया जाता है। समाजशास्त्रियों का मानना है कि गैर– बराबरी का संबंध समाज में किसी समूह या समूहों में व्यक्तियों को प्राप्त अधिकारों तथा अवसरों की भिन्नता से संबंधित है।

निःसन्देह आधुनिक उद्योग, पुरूषों और स्त्रियों के व्यवसायों में पारस्परिक परिवर्तनीयता, समान प्रजातांत्रिक अधिकार और वयस्क मताधिकार के कारण उद्योग, राजनीति और नागरिक जीवन में पुरूषों ने महिलाओं पर नियन्त्रण करने के नए ढंगो द्वारा नव–पितृसत्ता को जन्म दिया है। इस प्रकार महिलाएं

पुरूषों की तरह 'व्यक्ति' बन गई हैं, परन्तु अपनी घरेलुता के साथ जुड़ाव द्वारा वे जेन्डर कृत व्यक्ति ही हैं।

काल परिवर्तन के साथ ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था भी परिवर्तित हुई है एवं महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका में भी समयानुसार बदलाव आया। भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् महिलाओं की परिस्थितियों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। समकालीन सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के प्रमुख कारकों में बाजार अर्थव्यवस्था, आधुनिक शिक्षा, बढ़ती भौगोलिक गतिशीलता एवं नए रोजगार के अवसर आदि हैं, जिन्होंने महिलाओं और विशेषकर युवाओं को अधिक प्रभावित किया है। बाजारीय प्रतिस्पर्धा ने पुरूषों की तुलना में महिलाओं को अधिक महत्त्व दिया है। आधुनिकीकरण के द्वारा भारतीय सभ्यता, संस्कृति व मूल्यों में जो परिवर्तन आ रहा है उसका भी प्रभाव भारतीय महिलाओं पर देखा जा सकता है।

विगत कुछ वर्षों से समाजशास्त्रियों ने जेन्डर की अवधारणा व सिद्वान्तों को विकसित किया है। पिछले कुछ दशकों में नारी सम्बन्धी अध्ययनों के सैद्धान्तिक अवधारणात्मक पक्ष भी उजागर हुए हैं। इन सिद्धान्तों की विवेचना इस लेख के दृष्टिकोण से आवश्यक है।

नारीवादी परिप्रेक्ष्य

नारीवादी विश्लेषण से तात्पर्य एक विचारधारा से है जो स्त्री और पुरुष में समानता और उनके विकास पर बल देती हैं। नारीवादी परिप्रेक्ष्य स्त्रियों के शोषण और शोषण के विरोध में चेतना उत्पन्न करने तथा परिवर्तन लाने के लिए सक्रिय रूप से कदम उठाता है और जब स्त्रियों के अधिकारों का हनन होता है तो नारीवादी प्रश्न खड़े करते हैं और उसका विरोध करते हैं। उनका मानना है कि जेन्डर असमानता जैविक असमानताओं की नहीं बल्कि ऐसे सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं और समस्याओं की देन है जो महिलाओं की वैचारिकी अधीनता को सुनिश्चित करती हैं। नारीवादियों का उद्देश्य जेन्डर समतावादी समाज का निर्माण करना है। नारीवादी सिद्धान्त पुरुष व स्त्री के मध्य भेदभाव को अस्वीकार कर नारी के सशक्तीकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक व क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत करते हैं। नारीवाद एक विचारधारा भी है और आन्दोलन भी। नारीवाद में अनेक प्रकार के संबोधनों व सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है। इसके भिन्न रूप हैं ,जिनमें भिन्न–भिन्न विचारकों द्वारा विभिन्न आयामों को बताया गया है।

क्रांतिकारी नारीवाद–क्रान्तिकारी नारीवादियों का मानना है कि पितृसत्तात्मकता में पुरूषों द्वारा महिलाओं पर अत्याचार के दौरान जेन्डर असमानता खुद व खुद उत्पन्न हुई है। नारीवादी पूंजीवाद और पितृसत्ता दोनों को ही महिलाओं पर अत्याचार का स्रोत बताते हैं जो पूंजीवादी व्यवस्था के साथ मिलकर पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं पर पुरुषों के प्रभाव को बढ़ाता है। यही कारण है कि महिलाएं पूंजीवाद को समाप्त करने में अधिकार सम्पन्न नहीं हो पा रही हैं, लेकिन पुरुष इस क्रम में पितृसत्तात्मकता को हटाने के बजाय उसके सामने खड़ा है। क्रांतिकारी नारीवादी यह मानते हैं कि उच्च वर्ग की महिलाएं भी अपने पति व पिता के स्वामित्व में रहती हैं और वे भी अन्य महिलाओं की तरह स्वामित्व के प्रभावों का शिकार होती हैं।

उदारवादी नारीवाद–इस विचारधारा ने सरकार व कानून के माध्यम से नारी की प्रस्थिति में परिवर्तन लाने पर बल दिया है। उदारवादी नारीवादी सामाजिक और सांस्कृतिक प्रवृति में जेन्डर असमानता की विवेचना करते हैं। आरम्भिक उदारवादियों में महत्वपूर्ण योगदान दार्शनिक जॉन स्टुअर्ट मिल (1869) का रहा है। जो अपने लेख 'सब्जेक्शन ऑफ वीमन' में वैधता और राजनीति के आधार पर विपरीत लिगों के बीच समानता को देखते हैं। उदारवादी नारीवादियों का मानना है कि जेन्डर असमानता को कम करने के लिए कानूनों के संशोधन को विशेष महत्त्व दिया जाना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि

अधिकतम वैधानिक प्रावधान पुरुषों के पक्ष में बने हुए हैं जो महिलाओं के लिए हानिकारक हैं। उदारवादी नारीवाद का बीती शताब्दी में महिलाओं की स्थिति परिवर्तन में बहुत बड़ा योगदान है।

समाजवादी / मार्क्सवादी नारीवाद—समाजवादी विचारकों ने शासक वर्ग की महिलाओं को प्रताड़ित नहीं माना है। वे वर्ग सिद्धान्त के आधार पर शोषण के आयामों को विश्लेषित करना चाहते थे, लेकिन महिलाएं प्रताड़ित समूह व प्रताड़ित करने वाले समूह दोनों से जुड़ी थीं। समाजवादी नारीवादी समय और स्थान के अनुरूप महिलाओं में विभेद को स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से यह नारीवादी ऐतिहासिक है। इसका आर्थिक पक्ष इस बात को स्पष्ट करता है कि नारी का शोषण, उत्पादन व प्रजनन से जुड़ा है। महिलाओं की प्रकृति के संबंध में भी अनेक प्रकार की सांस्कृतिक मान्यताएं रही हैं, जो संस्कृति व समाज द्वारा प्रदत्त हैं। दूसरे अर्थों में महिला की प्रकृति का निर्माण पुरुष के वर्चस्व का परिणाम है।

रेडिकल नारीवाद—रेडिकल नारीवादी महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा का कारण महिलाओं और पुरुषों के बीच बड़े स्तर पर प्राकृतिक भिन्नता को बताते हैं। उनके अनुसार पितृसत्तात्मक व्यवस्था महिलाओं के विरूद्ध पुरुषों की हिंसा का एक कारण है। यह प्रत्यक्ष शारीरिक क्रूरता को ही नहीं बताता बल्कि यह छुपे हुए रूप में संकुल शोषक के व्यवहार भी हो सकते हैं। नियन्त्रण के रूप में जैसे कि फैशन का स्तर, मातृत्व के आदर्श, बहुविवाह, सतीत्व, कार्यस्थल पर लैंगिक शोषण, विपरीत लिंगों का होना, स्त्री रोगों के अभ्यास में, किराया न चुकाने की नीरसता, कार्य मजदूरी का न चुकाना, आदि हैं। लेकिन हिंसा के इन आयामों में शारीरिक क्रूरता के प्रत्यक्ष हालात उजागर होते हैं। रेडिकल नारीवादियों के अनुसार बलात्कार, लैंगिक शोषण, स्त्री को जलाना, कन्या भ्रूण हत्या, विधवा स्त्रियों पर आत्महत्या का दबाव डालना, दहेज हत्या और शोषण आदि पितृसत्ता सम्बन्धी हिंसा के केन्द्र में दृष्टिगोचर होते है। पुरुषों द्वारा शारीरिक हिंसा के पीछे पितृसत्ता के रक्षण का विश्वास माना जाता है। पुरुष पितृसत्ता को बनाता है और व्यवस्थित रूप से संचालित भी करता है। महिलाएं पितृसत्ता को असमान रूप से प्रभावित करती हैं, वे लैंगिक रूप से पुरुषों को सन्तुष्ट करती हैं। यह विचार विवादास्पद है।

उत्तरआधुनिक नारीवाद—उत्तरआधुनिक नारीवादी उत्तर संरचना व उत्तरआधुनिकता दोनों ही व्याख्याओं की विविधता व बाहुल्य में विश्वास करते हैं। इस दृष्टिकोण से नारी की एक नहीं अपितु अनेक पहचान हैं। यह विचार नारीवादी लेखिकाओं की समझ से बाहर है। उत्तरआधुनिकता के विचारक तीन दृष्टिकोणों की चर्चा करते हैं। प्रथम, वे काल विशेष की चर्चा करते हैं। हेबरमॉस (1968)इसी दृष्टिकोण से उत्तरआधुनिक काल के आविर्भाव पर अफसोस प्रकट करते हैं। दूसरे, उत्तरआधुनिकता ज्ञान,सत्य और यथार्थ के स्वीकार्य अर्थों को चुनौती देती है। ल्योटार्ड (1984) के लिए यह लाभपूर्ण है। तीसरे, होमन्स (1961) ने उत्तरआधुनिकता को साहित्य व कला में होने वाले नवआन्दोलनों के सन्दर्भ में जोड़ा है। उत्तरआधुनिक नारीवादी 'शक्ति' व 'मुक्ति' को आधार मानकर विवेचना करते हैं। यथार्थ शक्ति के बाहर नहीं है। सत्य की परिभाषा शक्ति से जुड़ी हुई है (सिंघी, 1998)। उत्तरआधुनिकता शक्ति के विभिन्न केन्द्रों, अर्थों की भिन्नता, व्याख्यानों के अन्तर और इच्छाओं में विविधता की चर्चा करती है, न कि एकरूपता की। पुरुष और महिला का अन्तर प्राकृतिक नहीं है वह समाज द्वारा गढ़ा गया है।

नारीवाद में सिद्धान्त की आन्तरिक एकरूपता को नकारा गया है अतः इसका कोई एक सिद्धान्त नहीं है। नारीवाद के सिद्धान्तों में बाहुल्यता व विविधता है। विभिन्न विद्वानो ंने नारीवाद के सिद्धान्त को अलग–अलग ढ़ंग से बताया है (सिंघी, 1998)।

उपर्युक्त विमर्शों की पृष्ठभूमि में जेन्डर असमानता को समझने के लिए यह अनुसन्धान कार्य दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर नगर में रहने वाले युवाओं पर आधारित है। अनुसन्धानकर्ता द्वारा अनुसन्धान कार्य

के लिये उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया। उदयपुर नगर से 18 से 35 वर्ष के मध्य आयु के 100 युवक व 100 युवतियों को चयनित कर साक्षात्कार के द्वारा तथ्य एकत्र किए गए। युवाओं के चयन में यह ध्यान रखा गया है कि विभिन्न आयु, जाति, शिक्षा स्तर, व्यवसाय, पारिवारिक आय आदि का प्रतिनिधित्व निदर्शित युवा करें। यह समझने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जेन्डर असमानता की स्थिति क्या है?

सारणी 1: परिवार की प्रकृति और सदस्यों की निर्णय क्षमता

परिवार की प्रकृति		महत्वपूर्ण निर्णय		सामान्य निर्णय		कम महत्वपूर्ण निर्णय	
	सदस्य	युवक	युवतियां	युवक	युवतियां	युवक	युवतियां
एकाकी	माता	31	14	34	46	28	**34**
	पिता	30	50	23	17	33	**30**
	भाई	—	01	02	—	—	**01**
	बहन	—	—	02	02	—	—
	योग	**61**	**65**	**61**	**65**	**61**	**65**
संयुक्त	दादा	14	19	12	15	11	**10**
	दादी	03	01	—	02	02	**06**
	माता	06	07	16	10	10	**06**
	पिता	26	08	06	04	16	**11**
	भाई	—	—	02	01	—	**02**
	बहन	—	—	03	03	—	—
	योग	**39**	**35**	**39**	**35**	**39**	**35**
कुल योग		**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**

अध्ययन से प्राप्त तथ्य बताते हैं कि निदर्शित युवतियों की तुलना में युवकों की पारिवारिक आय व शैक्षणिक स्तर उच्च है, युवकों की तुलना में युवतियां व्यवसायों में कम कार्यरत थीं। युवाओं के परिवारों में पिता का प्रभुत्व सर्वाधिक होने से परिवार के निर्णयों में पिता की भागीदारी सर्वाधिक देखी गई लेकिन पूर्व की तुलना में माता द्वारा निर्णय लेने में भागीदारी बढ़ी है। सारणी संख्या एक इसी संबंध में कुछ तथ्य प्रदर्शित करती है।

परिवार के सदस्यों द्वारा अन्तिम निर्णय लेने व परिवार की प्रकृति में संबंध देखने पर स्पष्ट होता है कि एकाकी और संयुक्त परिवारों में अत्यधिक महत्वपूर्ण निर्णय व कम महत्वपूर्ण निर्णय पिता द्वारा लिए जाते हैं और माता सामान्य निर्णय लेती है। स्पष्ट है कि परिवार में निर्णय लेने में पिता की भूमिका अहम् है।

अध्ययन के दौरान यह भी देखा गया कि युवाओं के परिवारों में परम्पराओं तथा रूढ़ियों का भी अधिक महत्त्व है जिससे युवाओं के विचारों में परम्पराओं का भी स्पष्ट प्रभाव है। प्राप्त तथ्यों के अनुसार पूर्व की तुलना में वर्तमान में महिला सदस्यों की घर से बाहर के कार्यों या नौकरी में भागीदारी बढ़ी है। फायर स्टोन, (1970) जो कि आरम्भिक रेडिकल नारीवादी लेखिका हैं, का कहना है कि बच्चों के पालन–पोषण और पुनर्उत्पादन में महिलाओं की भूमिका पुरुषों द्वारा नियन्त्रित होती है। महिलाएं पुरुषों की तुलना में जैविक रूप से बच्चों के जन्म के लिए सक्षम हैं लेकिन आर्थिक रूप से पुरुषों पर सुरक्षा और जीविकोपार्जन के लिए निर्भर हैं। यह जैविक असमानता एकाकी परिवार में सामाजिक रूप से संगठित होती है। स्टोन 'लिंग वर्ग' पर कहती हैं कि यह महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति है और उनका दावा है कि महिलाएं परिवार के उन्मूलन के जरिये उस संबंध शक्ति से, जो उन्हें चारित्रिक रूप से बांटती हैं, बन्धन मुक्त हो सकती हैं। स्टोन कहती हैं कि यह 'वर्ग भेद' लिपिबद्ध इतिहास से परे पशु साम्राज्य में भी दृष्टिगत होता है। उनके अनुसार नारी की शारीरिक व्यवस्था प्रताड़ना का कारण रहा है। उनके अनुसार जेन्डर वर्ग अदृश्य है, अनेक महिलाएं जो कि शिक्षित हैं, व्यवसायों में कार्यरत हैं, शासन वर्ग से जुड़ी हुई हैं, अंततः महिला होने के नाते प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से अवसरों की असमानता झेलती हैं। दूसरे रेडिकल नारीवादियों के अनुसार पुरुषों का महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का केन्द्र बिन्दु पुरुषों के प्रभुत्व का है।

युवकों के अनुसार पहले उनके परिवारों में महिलाएं घर से बाहर कार्य नहीं करती थीं जिसका कारण वे रूढ़ीवादी परम्पराओं, पुरुष द्वारा अर्थोपार्जन, पर्दा प्रथा, अशिक्षा और जागरूकता के अभाव आदि को मानते हैं, तथा कुछ युवाओं का मानना है कि महिलाओं को घर के अन्दर ही कार्य करना चाहिए। इसका कारण उत्तरदाता असुरक्षा, पारिवारिक जिम्मेदारियों आदि को मानते हैं। स्पष्ट है कि पूर्व की तुलना में वर्तमान में अधिकतर परिवारों में महिलाएं घर से बाहर कार्य कर रहीं हैं जबकि कुछ युवाओं के परिवार ऐसे हैं जहां रूढ़ीवादी विचारों के कारण महिलाओं के लिए घर के कार्यों को सही माना जाता है। नारीवादी जेन्डर भेदभाव के लिए आर्थिक दशाओं और स्वामित्व को जिम्मेदार मानते हैं। ओकले (1985) भी पितृसत्तात्मकता को आर्थिक निर्भरता के लिए महिलाओं पर पुरूषों के नियन्त्रण को कारण मानती हैं।

सारणी 2 परिवार की महिला सदस्य द्वारा घर के बाहर कार्य करना

घर के बाहर कार्य	पूर्व में			वर्तमान में		
	युवक	युवतियां	योग	युवक	युवतियां	योग
हां	29	40	69 (34.5)	80	94	174 (87.0)
नहीं	71	60	131(65.5)	20	06	26 (13.0)
योग	100	100	200 (100.0)	100	100	200 (100.0)

आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि परम्पराओं, रीति–रिवाजों और मूल्यों की प्रतिबद्धता पुरूषों की तुलना में महिलाओं से अधिक जुड़ी है क्योंकि रीति–रिवाजों से जुड़ी नियम की यह प्रतिबद्धता प्राचीन है। महिलाओं की तुलना में पुरूषों की सामाजिक प्रस्थिति उच्च है और महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति भेदभाव के संदर्भ में स्पष्ट दिखती है। इस भेदभाव का कारण महिलाएं स्वयं हैं। लेकिन परम्पराओं, रीति–रिवाजों और मूल्यों की प्रतिबद्धता भी अब कमज़ोर पड़ती जा रही है।

नारीवाद की प्रमुख लेखिका मिलेट (1972)के अनुसार जब एक समूह दूसरे समूह पर शासन करता है तो दोनों के मध्य स्थापित सम्बन्धों को राजनीतिक माना जाएगा और जब यह व्यवस्था चिरकाल तक रहती है तो वह एक विचारवाद के रूप में विकसित हो जाती है, जैसा कि प्रजातिवाद व सामन्तवाद में हुआ है। इतिहास में समाज पितृसत्तात्मक रहे हैं और पुरुषों को प्रधानता दी गई है जो कि शक्ति सम्बन्धों का निर्माण सार्वजनिक क्षेत्र में न करके पारिवारिक अथवा अन्य क्षेत्रों में करता है। यौन संबंध के संस्थापक स्वरूप उन नियमों से संचालित होते हैं जिसके माध्यम से पुरुष स्वयं को शक्ति प्रदान कर महिला का शोषण करता है, सामाजिक प्रचलन वास्तव में पुरुष के प्रभुत्व का यथार्थ है (सिंघी, 1998)।

अध्ययन के तथ्य बताते हैं कि सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों और महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों के कारण लड़कों की तुलना में लड़कियों पर अधिक अकुंश रखा जाता है। वर्तमान की तुलना में पूर्व के समाजों में सामाजिक–सांस्कृतिक कारण भिन्न रहे हैं, लेकिन महिलाओं की शारीरिक विशेषताओं और उससे सम्बन्धित सामाजिक मान्यताओं के कारण महिलाओं पर विशिष्ट नियंत्रण एवं प्रतिबन्ध भारतीय समाज में हैं। यही कारण है कि सर्वाधिक युवा (युवक व युवतियां) मानते हैं कि लड़कों की तुलना में लड़कियों पर सामाजिक–सांस्कृतिक कारणों से अधिक प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था है।

सारणी 3 परम्पराओं, रीति–रिवाजों एवं मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता

प्रतिबद्धता	युवक	युवतियां	योग
पुरूषों की	16	07	23 (11.5)
महिलाओं की	84	93	177 (88.5)
योग	100	100	200 (100.0)

अनुसंधान से प्राप्त जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि युवकों की तुलना में युवतियों के साथ राय लेने–देने में जेन्डर भेदभाव अधिक हैं और अन्य क्षेत्रों में भोजन, स्वतन्त्र पहनावे और घूमने–फिरने आदि में युवतियां युवकों की तुलना में अधिक

नियन्त्रित होती हैं। युवाओं की दृष्टि में पुरानी परम्परा और रीति–रिवाजों , मूल्यों के प्रति पुरुषों की तुलना में युवतियां अधिक प्रतिबद्ध हैं। युवाओं के अनुसार पहले की तुलना में इन प्रतिबद्धताओं में शिथिलता आ रही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण परिवारों में पुरुष का महत्व अधिक है और परिवार की निम्न आय और निम्न शिक्षा स्तर से परिवार की महिला सदस्यों के प्रति भेदभाव का व्यवहार देखा जा सकता है। परिवार में भाई–बहन को यद्यपि समान अधिकार प्राप्त हो रहे हैं लेकिन समाज द्वारा स्वीकृत पैमाने पर। महिलाओं के लिए कला से जुड़े व्यवसाय युवाओं की दृष्टि में निम्न प्रस्थिति के हैं। जेन्डर भेदभाव के प्रमुख कारणों में पितृसत्तात्मकता व शारीरिक गुण, नैतिक मूल्यों का ह्रास व पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव है जिसके कारण लड़कियां, लड़कों की तुलना में अधिक नियन्त्रित होती हैं। युवाओं के अनुसार महिलाओं से सम्बन्धित अपराधिक घटनाओं की वृद्धि के कारण युवा स्वयं और कमज़ोर कानूनी व सामाजिक व्यवस्था है।

जेन्डर भेदभाव संबंधी व्यवहारों पर संविधान व कानून का आंशिक प्रभाव है। यह प्रभाव कहीं अधिक है तो कहीं न्यून है। कानून का सर्वाधिक प्रभाव महिलाओं की स्थिति परिवर्तन में रहा है। जेन्डर भेदभाव संबंधी व्यवहारों में सर्वाधिक परिवर्तन शिक्षा के क्षेत्र व समान परवरिश में आ रहा है और इस परिवर्तन का कारण भी शिक्षा व महिलाओं का आत्मनिर्भर होना है। उच्च शिक्षा से जेन्डर भेदभाव सम्बन्धी व्यवहारों पर प्रभाव पड़ा है, वहीं जाति स्तर पर व कार्य स्थल पर कम प्रभाव रहा है।

सारणी संख्या 4 लड़कियों पर अधिक प्रतिबन्ध के कारण

कारण	युवक (100)	युवतियां (100)
शारीरिक	39	–
सामाजिक–सांस्कृतिक कारक	79	84
नैतिक मूल्य	09	19
बढ़ते अपराध	68	89

सारणी 5 जेन्डर भेदभाव के उत्तरदायी कारण एवं उनकी प्राथमिकता (माध्य)

कारण	युवक	युवतियां
संयुक्त परिवार	2.12	2.09
पितृसत्तात्मकता	2.02	2.24
जातिप्रथा	2.20	2.09
रूढ़िवादिता	2.20	2.25
अशिक्षा/अल्प शिक्षा	2.18	2.26
आश्रितता	2.05	2.21
शारीरिक गुण	2.24	2.08
बढ़ते अपराध	2.06	2.20

स्केल– प्रथम प्राथतिकता–3, द्वितीय प्राथमिकता–2, तृतीय प्राथमिकता–1

1970 के आरम्भिक काल में उदारवादी नारीवादियों ने कार्यस्थलों पर महिलाओं के विरूद्ध होने वाले भेदभावों और जेन्डर शोषण को शैक्षणिक संस्थाओं और मीडिया द्वारा अभियान के रूप में चलाया। वे प्रजातान्त्रिक वैधानिक तरीकों से महिलाओं की शक्तियों को बढ़ाने के लिए समान अवसरों की सुरक्षा हेतु ध्यान केन्द्रित करते हैं।

जेन्डर भेदभाव के उत्तरदायी कारणों को सारणी 5 में माध्य के आधार पर देखा गया है जिसमें सर्वाधिक 2 युवक उत्तरदाता जेन्डर भेदभाव के उत्तरदायी कारणों में महिलाओं की शारीरिक विशेषताओं को प्राथमिकता देते हैं और 2.26 युवतियों के अनुसार अशिक्षा या अल्प शिक्षा जेन्डर भेदभाव का महत्वपूर्ण कारण है। स्पष्ट है कि अधिकांश युवाओं के अनुसार शारीरिक विशेषताओं और अशिक्षा के कारण लड़के व लड़कियों में भेद किया जाता है।

नारीवादी सिद्धान्तवेत्ताओं के अनुसार जेन्डर भेदभाव जैविक असमानताओं की नहीं बल्कि ऐसे सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं और समस्याओं की देन है जो महिलाओं की वैचारिक अधीनता को पुष्ट करता है। ओकले पितृसत्तात्मक व्यवस्था को आर्थिक निर्भरता के लिए महिलाओं पर

पुरुषों के नियन्त्रण को कारण मानती हैं। क्रांतिकारी नारीवादी सिद्धान्त ने जेन्डर भेदभाव का प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था को माना है। पूंजीवादी व्यवस्था के साथ मिलकर पितृसत्तात्मक समाज महिलाओं पर पुरुषों के प्रभाव को बढ़ाता है। अध्ययन के तथ्य क्रान्तिकारी नारीवादियों के सिद्धांत की पुष्टि करते हैं। तथ्यों के अनुसार जेन्डर भेदभाव का प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था है और परिवार में निर्णय लेने में भी पुरुषों की भूमिका अहम् हैं। उदारवादी नारीवादी सिद्धान्तवेत्ता मिल (1869) विपरीत लिंगों के बीच समानता को देखते हैं। उदारवादी सिद्धान्त जेन्डर भेदभाव को कम करने के लिए कानूनों के संशोधन पर बल देता है और वैधानिक तरीकों से महिलाओं की शक्ति बढ़ाने व समान अवसरों पर ध्यान केन्द्रित करता है। अध्ययन के तथ्य इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं जिनके अनुसार कानूनों द्वारा महिलाओं की स्थिति में धीरे–धीरे परिवर्तन आ रहा है।

सारणी 6 परिवार की महिला सदस्य के साथ असमान व्यवहार

सदस्य	युवक	युवतियां	योग
हां	35	50	85 (42.5)
नहीं	65	50	115 (57.5)
योग	100	100	200(100.0)

प्रत्येक परिवार में स्त्री और पुरुष के बीच किसी न किसी स्तर पर असमान व्यवहार देखा जा सकता है। आंकड़े इस बात को पुष्ट भी करते हैं। 35 युवक और 50 युवती उत्तरदाता इसे स्पष्टतः स्वीकृत करते हैं कि परिवार में महिला सदस्यों के साथ कई मुद्दों पर असमान व्यवहार किया जाता है। 65 युवक व 50 युवती उत्तरदाता जो यह कहते हैं कि असमान व्यवहार नहीं होता, स्वयं ऐसे व्यवहारों को पुरुष के अधिकार में स्वाभाविक व्यवहार की तरह मानते हैं। युवकों द्वारा बहन के साथ असमानतापूर्ण व्यवहार का कारण लड़कियों से बढ़ती छेड़छाड़ व उनकी असुरक्षा है जिसके कारण बहनों को स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं लिया जाने दिया जाता है। उदाहरण के लिए घर से कम बाहर जाना व जल्दी आना। उत्तरदाताओं के अनुसार माता के साथ असमान पूर्ण व्यवहार का कारण निम्न शिक्षा स्तर व स्त्री का समाज में निम्न दर्जा होना और पुरुष वर्ग पर आश्रितता है। कुछ युवक उत्तरदाताओं के अनुसार पत्नी और दादी के साथ भी असमानतापूर्ण व्यवहार हुआ है। दूसरी ओर 65 युवक उत्तरदाताओं का कहना है कि परिवार में किसी भी सदस्य के साथ असमानतापूर्ण व्यवहार नहीं हुआ है। यह इसलिए क्योंकि पुरुष व स्त्री के बीच के व्यवहार को अधिकार एवं कर्तव्यों के संदर्भ में देखा जाता है। इसके अतिरिक्त असमानतापूर्ण व्यवहार होने के कारणों में अशिक्षा या अल्पशिक्षा एवं स्वयं निर्णय नहीं ले पाना है। अवलोकन से प्राप्त तथ्य बताते हैं कि लड़कों की तुलना में लड़कियों के साथ अधिक असमानतापूर्ण व्यवहार होता है। समाज परिवारों में पुरुष वर्ग को विशेष स्थान देता है क्योंकि वह परिवार का पालनकर्ता है ,जबकि लड़कियों को दूसरे परिवार की अर्थोपार्जक व सेविका के रूप में देखा जाता है।

हमारे तथ्यों से प्राप्त निष्कर्ष संघर्ष सिद्धान्तवेत्ताओं का समर्थन करते हैं कि पुरुषों के स्वयं के विशेषाधिकार, सम्मान और शक्ति महिलाओं के साथ उनके संबंध को सुनिश्चित करते हैं। जॉर्डन (1993) के अनुसार निम्न वर्ग से सम्बन्धित महिलाएं वंचित समूह हैं जिन्हें सफल होने के लिए पुरुषों के समान ही स्त्रोतों की आवश्यकता है। पुरुष वर्ग महिलाओं की तुलना में शारीरिक रूप से शक्तिशाली है जबकि महिलाएं सर्वहारा वर्ग हैं, निर्बल हैं, कम बुद्धिमान हैं। उच्च सामाजिक परिस्थिति के लिए उत्तरदायी चारित्रिक गुणों में सम्बन्धों की स्थिति और निवास स्थान, व्यवहार और भेदभाव आदि ऐसे पहलू हैं जो समाज में महिलाओं की स्थिति को सुनिश्चित करते हैं। हमारे तथ्य इस सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं।

परिवार में महिला सदस्यों के साथ असमानतापूर्ण व्यवहार होने व युवा उत्तरदाताओं की आयु, जाति, शिक्षा, व्यवसाय और पारिवारिक आय के आधार पर सहसंबंध देखने पर तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 18 से 25 वर्ष के आयु समूह और अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की युवतियों

के परिवारों में महिलाओं के प्रति असमानतापूर्ण व्यवहार अधिक हुआ है। जहां युवाओं की उच्च पारिवारिक आय, उच्च शिक्षा स्तर और सरकारी नौकरी है, वहां महिलाओं के साथ असमानतापूर्ण व्यवहार कम हुआ है। स्पष्ट है कि परिवार में महिला सदस्य के साथ असमानतापूर्ण व्यवहार को शिक्षा, आय, व्यवसाय जाति आदि कारक प्रभावित करते हैं।

मार्क्सवादी नारीवाद का सिद्धान्त महिलाओं की प्रकृति सम्बन्धी मान्यताओं, संस्कृति व समाज से प्रदत्त है। दूसरे अर्थों में यह महिला की प्रकृति का निर्माण पुरुष के वर्चस्व का परिणाम है, को भी सही सिद्ध करता है। परिवार में राय लेने–देने संबंधित, महिलाओं का पुरुषों की तुलना में परम्पराओं के प्रति अधिक प्रतिबद्ध होने और स्वतः ही स्वीकारने के निर्णय संबंधी तथ्य मार्क्सवादी नारीवादी के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं।

सारणी 7 परिवार में लड़के और लड़कियों को लेकर होने वाले भेदभाव पर प्रतिक्रिया

प्रतिक्रिया	युवक	युवतियां	योग
हां	24	19	43 (21.5)
नहीं	76	81	157 (78.5)
योग	100	100	200 (100.0)

रेडिकल नारीवादियों के अनुसार बलात्कार, लैंगिक शोषण, स्त्री को जलाना, कन्या भ्रूण हत्या, विधवा स्त्रियों पर आत्महत्या का दबाव डालना, दहेज हत्या और शोषण आदि पितृसत्तात्मकता सम्बन्धी हिंसा के केन्द्र में दृष्टिगोचर होते है। पुरुषों द्वारा शारीरिक हिंसा के पीछे पितृसत्तात्मकता के रक्षण का विश्वास महिलाओं के प्रति भेदभाव का कारण है। तथ्यों के निष्कर्ष इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। महिलाओं से संबंधित अपराधिक घटनाओं में वृद्वि व असमान व्यवहार, जन्म के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया आदि तथ्य इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। उत्तरआधुनिक नारीवाद के तीन दृष्टिकोणों को जूडिथ ग्रान्ट (1993) ने प्रथम में काल विशेष, दूसरे में ज्ञान, सत्य और यथार्थ के स्वीकार्य अर्थों को चुनौती दी है और तीसरे में साहित्य व कला में होने वाले नव आन्दोलनों के सन्दर्भ में जोड़ा है। उत्तरआधुनिकवादी 'शक्ति' और 'मुक्ति' को आधार मानकर विवेचना करते हैं।

सारणी 8 युवाओं के अनुसार भारतीय संविधान व कानून से परिर्वतन

परिर्वतन	युवक (100)	युवतियां (100)
लोगों में जागरूकता बढ़ी हैं।	30	54
कन्या भ्रूण हत्या में कमी आई है।	07	14
महिला सशक्त हुई हैं।	12	25
महिलाओं को सुरक्षा व सुविधाएं प्राप्त हुई हैं।	13	21
लड़के व लड़कियों को समान अधिकार मिले हैं।	30	42

महिला की 'शक्ति' और 'मुक्ति' के सन्दर्भ में अध्ययन के तथ्य इस सिद्धान्त को सही पुष्ट करते हैं। महिलाओं का उच्च शैक्षणिक स्तर और घर के बाहर के कार्यो में बढ़ती भागीदारी व सम्पति में मिलता समान अधिकार आदि तथ्यों के निष्कर्ष इस सिद्धांत की पुष्टि करते हैं।

अधिकांश युवक और युवती उत्तरदाताओं के अनुसार उनकी पहचान के परिवार में लड़के और लड़कियों को लेकर कोई भेदभाव नहीं हुआ है। युवा उत्तरदाताओं का मानना है कि लड़के व लड़कियां दोनों समान हैं। शिक्षा और कठोर कानून के प्रभाव द्वारा अब लोगों की मानसिकता में परिवर्तन आ रहा है। लड़कियां भी लड़कों के समान आत्मनिर्भर व सक्षम हो रही हैं जिससे पुत्र मोह की मानसिकता में कमी आ रही है। कुछ उत्तरदाताओं के अनुसार उनके आस–पास के परिवार में लड़की के जन्म को लेकर भेदभाव हुआ है, जिसका कारण युवक उत्तरदाता निम्न आर्थिक स्थिति को मानते हैं। कुछ युवक उत्तरदाताओं के अनुसार उनके पड़ोस में लड़के की चाह में कन्या भ्रूण हत्या करवायी है क्योंकि उनकी

पहली संतान लड़की थी। अधिकतर युवाओं का मानना है कि लड़के आर्थिक आधार होते हैं, वे ही परिवार का आर्थिक भार उठाते हैं। परिवार की जिम्मेदारी पुत्र पर ही होती है, इस कारण लोग लड़की की जगह लड़कों को अधिक महत्व देते हैं। कुछ युवा उत्तरदाता इसका कारण दहेज को मानते हैं क्योंकि लड़की पराया धन है, दहेज के कारण लड़कियों को बोझ समझा जाता है व उन पर खर्चे करना उचित नहीं है, जैसी मानसिकता लड़की के जन्म के प्रति भेदभाव को जन्म देती है।

भारतीय संविधान और कानून के जेन्डर भेदभाव सम्बन्धी व्यवहारों पर प्रभाव पड़ने से क्या परिवर्तन आए, इस संबंध में युवा उत्तरदाताओं के विचार जानने का प्रयास किया गया। तथ्यों के अनुसार कानून व संविधान से महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों में कमी आई है। महिलाओं को कई क्षेत्रों में आरक्षण व उचित सुविधाएं प्रदान की गई हैं, इससे महिलाओं की स्थिति में भी काफी सुधार आया है। लोगों में कानून का भय उत्पन्न होने से लिंग परीक्षण में भी कमी आई है तथा लोग अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहे हैं। कुछ युवाओं का मानना है कि महिला आरक्षण कानून द्वारा महिलाओं की स्थिति में सुधार आया है। नए कानूनों व आरक्षण से महिलाओं के प्रति व्यवहारों में परिवर्तन हो रहा है। महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई हैं। सारणी 8 से स्पष्ट है कि महिलाओं के संरक्षण में बने कानूनों से लोगों के आचार–विचारों में भी परिवर्तन आ रहा है।

अधिकांश युवा जेन्डर भेदभाव सम्बन्धी कानूनों व संविधान के आंशिक प्रभाव को मानते हैं। युवाओं का कहना है सरकार द्वारा महिला संरक्षण हेतु विभिन्न कानून व संविधान में संशोधन किए गए हैं, लेकिन लोगों में जागरूकता के अभाव के कारण वे इसका उपयोग नहीं कर पाते हैं। कानून की प्रक्रिया लम्बी और खर्चीली होने से भी लोग कानून का लाभ नहीं लेते हैं। लेकिन कानून व संविधान द्वारा महिलाओं में सतर्कता व अधिकारों के प्रति अधिक जागरूकता आई है।

सारणी 9 जेन्डर सम्बन्धी व्यवहारों में परिवर्तन आने के माध्यम

कारण	युवक (100)	युवतियां (100)
शिक्षा द्वारा	87	91
भारतीय संविधान व कानूनों के द्वारा	32	30
आधुनिकीकरण व वैश्वीकरण के कारण	36	31
जनसंचार साधनों व प्रौद्योगिकी विकास	48	59
महिलाओं के आत्मनिर्भर होने से	80	90

स्पष्ट है कि भारतीय संविधान तथा कानूनों का प्रभाव कहीं अधिक तो कहीं न्यून हैं, लेकिन मोटे रूप में कानूनों द्वारा महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन आ रहा है। उपरोक्त तथ्यों के निष्कर्ष, उदारवादी नारीवादियों के मत का समर्थन करते हैं, जो सरकार व कानून के माध्यम से नारी की परिस्थिति में परिवर्तन लाने पर बल देते हैं । मिल (1869) वैधता और राजनीति के आधार पर विपरीत लिंगों के बीच समानता को देखते हैं। उदारवादी नारीवादियों का मानना है कि जेन्डर भेदभाव को कम करने के लिए कानूनों के संशोधन को विशेष महत्व दिया जाना महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकतम वैधानिक प्रावधान पुरुषों के पक्ष में बने हुए हैं जो महिलाओं के लिए हानिकारक हैं।

आंकड़े दर्शाते हैं कि शिक्षा द्वारा जेन्डर भेदभाव सम्बन्धी व्यवहारों में परिवर्तन आ रहा है साथ ही महिलाओं के आत्मनिर्भर होने से भी जेन्डर भेद आधारित व्यवहारों में परिवर्तन हो रहा है।

अध्ययन से प्राप्त तथ्य उदारवादी नारीवादियों के सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं कि कार्यस्थलों पर महिलाओं के विरूद्ध होने वाले भेदभावों और जेन्डर शोषण को शैक्षणिक संस्थाओं और मीडिया द्वारा अभियान के रूप में चलाया जाना चाहिए। वे प्रजातांत्रिक वैधानिक तरीकों से महिलाओं की शक्तियों को बढ़ाने के लिए समान अवसरों की सुरक्षा हेतु ध्यान केन्द्रित करते हैं। उदारवादी नारीवादियों का बीती

शताब्दी में महिलाओं की स्थिति परिवर्तन में बहुत बड़ा योगदान है। स्पष्ट है कि अधिकांश युवा, पिता या पति की सम्पति पर पुत्री या पत्नी का समान अधिकार मानते हैं अतः युवाओं में जेन्डर समानता की भावना प्रबल हो रही है। कानून व संविधान द्वारा जेन्डर भेदभाव संबंधी व्यवहारों में आए परिवर्तन की महिलाओं की स्थिति परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तथ्यों से स्पष्ट होता है कि परिवर्तन की लहर भारतीय समाज में प्रारम्भ हो चुकी है और भेदभावपूर्ण व्यवहार को अब स्त्रियां चुनौती देने लगी हैं।

आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी ने जेन्डर भेदभाव की मनोवृति और व्यवहारों को आंशिक रूप से प्रभावित किया है। जो युवा इन प्रक्रियाओं के माध्यम से जेन्डर सम्बन्धों, व्यवहारों और मनोवृति को प्रभावित करने की बात स्वीकार करते हैं, उनमें से सर्वाधिक युवक व युवतियों के अनुसार इन प्रक्रियाओं द्वारा लोगों में जागरूकता आई है। महिलाओं का घर से बाहर निकलना सम्भव हुआ है जिससे महिलाएं अधिक आत्मनिर्भर हुई हैं और पुरानी परम्पराएं व रूढ़िगत धारणाएं कुछ कमज़ोर हुई हैं। कुछ युवाओं का कहना है कि महिलाओं की हर क्षेत्र में भागीदारी बढ़ रही है। लड़कियों को लड़कों के समान अधिकार मिल रहे हैं। कुछ युवाओं का मानना है कि आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी के द्वारा व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा में सर्वाधिक वृद्धि हुई है जिससे महिला शिक्षा व आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई है। महिला सशक्त हुई है। पूर्व की तुलना में निर्णय लेने में सक्षम हुई है।

सारणी 10 आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी का जेन्डर भेदभाव पर प्रभाव

प्रभाव	युवक	युवतियां	योग
हां	35	40	75 (37.5)
आंशिक	50	54	104 (52.0)
नहीं	15	06	21 (10.5)
योग	100	100	200 (100.0)

युवा मानते हैं कि इन प्रक्रियाओं से जेन्डर भेदभाव की मनोवृति में आंशिक परिवर्तन आया है। आज भी पुत्र को परिवार में अधिक महत्व दिया जाता है और महिलाओं को पुरुषों की तुलना में नियन्त्रित किया जाता है। महिलाओं को समाज द्वारा स्वीकृत पैमाने पर ही समानता प्राप्त है वे पुरुषों के अनुसार इच्छानुसार व्यवहार करने पर अधिक प्रतिबद्ध हैं।

आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी विकास का जेन्डर भेदभाव सम्बन्धी व्यवहारों को प्रभावित न करने के कारणों पर उत्तरदाताओं के विचार है कि इनके कारण महिला असुरक्षा अधिक बढ़ी है। पूर्व की तुलना में महिलाओं के प्रति अपराधों जैसे– छेड़छाड़, बलात्कार, अपहरण, कन्या भ्रूण हत्या आदि में वृद्धि हुई है। युवाओं का मानना है कि तकनीकी विकास ने कन्या भ्रूण को पहचानने व उसकी हत्या करने में ज्यादा सुविधा कर दी है।

फूकोयामा (1999) के अनुसार वैश्वीकरण विश्व स्तर पर पाश्चात्य आचार–विचारों के प्रवाह के रूप में भी रहा है। वैश्वीकरण के जेन्डर प्रभाव की विवेचना भिन्न–भिन्न है। विश्व अर्थव्यवस्था में नारियों का प्रवेश आशाजनक रहा है। लेकिन वैश्वीकरण में नवउदारवाद की प्रक्रियाओं ने नारी को ही अधिक शिकार बनाया है। वैश्वीकरण द्वारा विश्व के समाजों में जो परिवर्तन आया है उससे नारी की सामाजिक प्रस्थिति में भी परिवर्तन आया है।

सूचना क्रान्ति, उपग्रह और दृष्य–श्रृव्य साधन एक ही समय में विश्व को एक साथ ले जाने में समर्थ हैं। नारीवादी आन्दोलनों, वैश्विक स्तर की नई अपेक्षाओं, नैतिक तथा भावनात्मक दृष्टियों के विकास और उभरती वैश्विक सहानुभूति, सभी ने उन परिस्थितियों को उत्पन्न किया है, जो जेन्डर भेदभाव को प्रभावित करती हैं। विश्व के विभिन्न देशों में नारियों का राजनीतिक शिखर पर पहुंचना भी उन परिस्थितियों की ओर संकेत करता है जो जेन्डर सम्बन्धों को विश्व स्तर पर प्रभावित करते हैं (भार्गव, 2014)।

यहां नारीवादी आन्दोलनों का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि नारीवादी आन्दोलन विश्वव्यापी आन्दोलन हैं और वैश्वीकरण ने इन आन्दोलनों को हवा दी है। ये आन्दोलन किसी विशिष्ट राष्ट्र या राज्य तक सीमित आन्दोलन नहीं है। नारी एक अर्न्तराष्ट्रीय परिवेश है जो नौकरी के लिए समान अधिकार, राजनीति में समान भागीदारी और लिंग–भेद रहित समाज के अधिकारों के लिए संघर्षरत है।

औद्योगिकी विकास द्वारा जनसंचार माध्यमों और विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार साधनों ने कानूनों, सरकारी व गैरसरकारी योजनाओं एवं इससे सम्बन्धित विस्तृत सूचनाओं को अपने विभिन्न कार्यक्रमों एवं एड–कैम्पेन माध्यमों से महिलाओं तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। प्रचार अभियान जैसे– सर्व शिक्षा अभियान, शिशु सुरक्षा योजना, मेरा वोट मेरा अधिकार, आई.बी.एन. 7 का अभियान, जिन्दगी लाईव, महिला सशक्तीकरण की राष्ट्रनीति 2000 आदि प्रमुख हैं। जनसंचार साधनों ने महिलाओं को सशक्त किया है। ये साधन समाजीकारण और सामाजिक परिवर्तन के लिए वातावरण निर्माण, नारीवादी आन्दोलनों को समर्थन देने एवं महिलाओं की सफलता को प्रस्तुत करने में सहायक हो रहे हैं। साथ ही इनके द्वारा जमीनी स्तर पर नीतियों को कार्यात्मक रूप देने, अभिव्यक्ति के लिए विशाल और प्रभावी मंच उपलब्ध करवाने, महिलाओं से सम्बन्धित कानून और कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी महिलाओं तक पहुंचाने, उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक अधिकारों की बात करने, उसका समर्थन आदि कार्यों को कार्य भी सतत रुप से किया जा रहा है। इसमें जनसंचार साधनों की महत्पूवर्ण भूमिका रही है (व्यास, 2014)।

निष्कर्ष

जेन्डर आधारित सामाजिक भेदभाव ऐतिहासिक हैं, विश्वव्यापी हैं और गैर–बराबरी की श्रेणी में आते हैं। असमानता के समाजशास्त्र के आधार पर यदि व्याख्या करें तो असमानता के विभिन्न रूपों में नर–नारी के संबंध वंचित, मुख्यधारा से बाह्य, त्याज्य तथा शोषण के प्रतीक भी हैं। यदि युवाओं की आयु से ऊपर की ओर जाएं तो जनसंख्या के उस वर्ग में रूढ़िवादी संकल्पनाएं विद्यमान दिखाई देती हैं। रूढ़ियां, स्त्री–पुरूषों के सम्बन्धों में भेदभाव रखती हैं। उस पीढ़ी की मान्यता यही है और इस मान्यता के आधार पर उनके आचरण, कर्म और व्यवहार इसकी पुष्टि करते हैं। कन्या भ्रूण हत्या, बालिका वध और बालिकाओं को सामाजिक अधिकारों से वंचित करना, इसी भेदभाव के उदाहरण हैं।

वर्तमान में प्रक्रियाओं का परिवेश पहले से भिन्न है। वैचारिक मतभेदों, पूंजीवाद के प्रसार और विश्व की सिकुड़न ने नए परिवेश उत्पन्न किए हैं। इस अध्ययन का अहम् प्रश्न यही था कि रूढ़िवादी व्यवस्थाओं के क्रम में आधुनिक संदर्भ में युवा जेन्डर भेदभाव को किस प्रकार आंकते हैं?

इस संबंध में अध्ययन के परिणाम मिश्रित रहे हैं। कुछ अंशों में भेदभाव की भावना शिथिल हुई है, वहीं कुछ अर्थो में रूढ़िवादी विचारों की जकड़न अभी ढ़ीली नहीं हुई है। बहुत से कारक विकसित हुए हैं जिन्होंने भेदभाव के इन सम्बन्धों पर प्रभाव डाला है। मानव अधिकारों के आन्दोलनों, विश्वव्यापी नारी आन्दोलनों द्वारा विद्वानों ने एक और औपचारिक व्यवस्था खड़ी की हैं तो दूसरी ओर रूढ़िवादी संगठनों और नेतृत्व ने इसमें व्यापक बाधाएं उत्पन्न की हैं। लेकिन क्या नई पीढ़ी या युवाओं ने परिवर्तन की इस दिशा में अपना कोई योगदान दिया है? यह बड़ा प्रश्न है।

आधुनिक व्यवसायों के हर क्षेत्र में स्त्री–पुरुष साथ–साथ काम कर रहे हैं। जीवन साथी के प्रसंग भी बदले हैं। कुछ रूढ़िवादी आधारों को यदि छोड़ दें तो समानता के सिद्धान्त युवा जनों की समझ में आने लगे हैं। अध्ययन में प्राप्त तथ्य इस ओर संकेत करते हैं, लेकिन यह क्रांतिकारी नहीं है। यह एक बहुत धीमा समायोजन है जो कुछ अंशो में देखा जा सकता है। यह कहना कठिन है कि शिक्षित स्त्री और पुरुष किन अर्थों में समानता के समीप हैं। समानता के लिए कोई बड़ा प्रतिरोध भी नहीं हुआ है हांलाकि समानता के कुछ उदाहरण हम जरूर प्रस्तुत करते हैं।

References

David, Tine and Driel, Francien Van, Driel. 2001. *"Globalization and Gender :beyond Dichotomies",* in Frans J. S.Kumar (ed.), Globalization and Development Studies Challenges for the 21st Century, 153-75.

Fukuyama , Francis. 1992. *The End of Order*, London: sage.

Foucault, Michel. 1980. *Power, Knowledge*, New York: Panther .

Grant,judith.1993. *Fundamental Feminism: Contesting the Core Concept of Feminist Theory,* New york: Routledge.

Habermas, Jürgen. 1968. *Technik und Wissenschaft als Ideologie*. Frank-furt: Suhrkamp.

Homans, George C. 1961. *Social Behavior: Its Elementary Forms.* New York: Harcourt.

Jorden, J.1993. *Sociology*, New York: M.C. grey hill.

Lyotard,Jean-Francois.1984. *The Postmodern Condition: A Report on Knowledge*, Manchester University Press.

Mill, jhon, stuart. 1869. *The Subjection of Women*, London: Format Book.

Millet, Kat . 1972 . *Sexual Politics*, London Sphere Books

Oakley, Ann,1985. *Sex, Gender and Society*, England: Govern Publish.

Stone ,Fire. 1970. *The Dialectic of Sex, The Case for The Feminist Revolution*, William Moro and Company.

भार्गव, नरेश. 2014. *वैश्वीकरणः समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य,* जयपुर : रावत।

सिंघी, एन् के. 1998. *समाजशास्त्रीय सिद्वान्त व व्याख्या,* जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स।

डॉ.अनुकृति राव, सहायक आचार्य, उदयपुर, स्कूल ऑफ सोशॅल वर्क, उदयपुर

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

बाल विकास के लिए कार्यरत संस्थाएं : एक समीक्षा

वृतिका गुहिल

सारः समेकित बाल विकास सेवा योजना देश की सबसे बड़ी बाल विकास योजना है। इस योजना द्वारा पूरक पोषाहार सेवा, स्वास्थ्य जांच, टीकाकरण, पोषण तथा स्वास्थ्य शिक्षा, पूर्व विद्यालय शिक्षा एवं संदर्भ सेवाएं 0 से 6 वर्ष के बच्चों एवं 15 से 45 वर्ष की महिलाओं तथा किशोरी बालिकाओं को प्रदान की जाती हैं। इन सेवाओं के क्रियान्वयन का केन्द्रीय मंच आंगनबाड़ी योजना है। इसके अन्तर्गत मुख्य विकास परियोजना के वाहक अधिकारी, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, सहायिका के साथ विविध पर्यवेक्षक होते हैं। लेख में संस्थागत आधार पर इस वृहद् योजना की समीक्षा, मूल्यांकन तथा भविष्य की संभावनाओं की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

संकेत शब्दः समेकित बाल विकास सेवा योजना, स्वास्थ्य जांच, पोषाहार, पूर्व स्कूली शिक्षा

किसी भी देश की सबसे बड़ी पूंजी उसमें बसने वाली मानव शक्ति होती है। जिस देश के नागरिक जितने स्वस्थ, सबल, परिश्रमी, शिक्षित, सुसंस्कृत, संगठित, समझदार, चरित्रवान तथा देश के प्रति समर्पित होते हैं, वह देश उतना ही सबल, समृद्ध और विकसित होता है। इसी कारण हर देश मानव विकास की ओर ध्यान देता है। वर्तमान शब्दावली में इसे 'मानव संसाधन विकास' की संज्ञा दी गई है। जिस राष्ट्र का मानव संसाधन जितना उच्च कोटि का होता है, वह उतना ही विश्व में उच्च स्थान रखता है। मानव संसाधन विकास की प्रक्रिया का प्रारम्भ बाल विकास से होता है। बाल विकास से तात्पर्य बालकों के सर्वांगीण विकास से है।

बच्चे राष्ट्र की अमूल्य निधि एवं भविष्य की आशाएं हैं। इनका उचित संरक्षण, पोषण, संवर्धन और शिक्षण राष्ट्र का कर्त्तव्य है। बच्चों की आवश्यकताओं एवं उनके प्रति हमारे दायित्व का उल्लेख संविधान की धारा 309 में किया गया है। संविधान की भावनाओं को मूर्त रूप देने हेतु योजना आयोग द्वारा बच्चों के उचित पोषण एंव सर्वांगीण विकास के लिए वर्ष 1972 में पहल की गई थी। वर्ष 1974 में राष्ट्रीय बाल विकास बोर्ड का गठन किया गया व राष्ट्रीय बाल नीति तैयार की गई। इसके अनुसरण में वर्ष 1975 में समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया (मेघवाल एवं योगेश, 1996–97)।

समेकित बाल विकास सेवा योजना पूर्ण रूप से महिलाओं एवं बच्चों के विकास के लिए प्रारम्भ की गई। देश की कुल जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत बच्चों एवं महिलाओं का है। बच्चों एवं महिलाओं की प्रमुख समस्याएं उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं से संबंधित होती हैं। यदि इन समस्याओं पर गहनता से विचार किए जाए तो इन्हें काफी हद तक दूर किया जा सकता है। जब बच्चों एवं महिलाओं की प्राथमिक आवश्यकताएं पूर्ण होंगी तभी वे शारीरिक रूप से स्वस्थ रहेगें व अपनी बुद्धि एवं तर्कशक्ति का उपयोग कर सकेंगे।

भारत में बच्चों की मुख्य समस्याएं

भारत की आधी से भी अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करती है। गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों को प्रतिदिन इतनी कम आय होती है कि वे अपने बच्चों के लिए भोजन की भी भली–भांति व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। बच्चों को पोषक एवं संतुलित आहार की आवश्यकता होती है, जिससे उनका उचित शारीरिक एवं मानसिक विकास संभव हो सके। निर्धनता के कारण बच्चों में पोषण संबंधी समस्याएं जन्म लेती हैं।

शिक्षा का बच्चों के लिए अलग महत्त्व है। एक शिक्षित व्यक्ति ही राष्ट्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। भारत के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा तथा पूर्व प्राथमिक शिक्षा की

अच्छी व्यवस्था नहीं है और यदि है, तो भी अनेक समस्याओं से घिरी हुई, जैसे विद्यालय की घर से दूरी, रोजी–रोटी के लिए माता–पिता के गांव से शहर की ओर जाने से परिवार व छोटे भाई–बहनों को संभालने की जिम्मेदारी, आर्थिक समस्याएं जिनके कारण बच्चे माता–पिता के परम्परागत व्यवसाय से जुड़ जाते हैं, तथा माता–पिता के अशिक्षित होने के कारण बच्चों के लिए उचित निर्णय एवं योग्य व्यवस्था नहीं कर पाना आदि।

निर्धनता भी बाल विकास में बाधक है। निर्धनता से तात्पर्य है व्यक्ति की न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकताएं भी पूरी नहीं होना। निर्धनता समाज में व्यक्ति या परिवार की वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत उन्हें जीवनयापन करने हेतु जीवनोपयोगी वस्तुओं एवं सेवाओं की कमी रहती है। बाल शोषण एक और महत्त्वपूर्ण समस्या है। गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों में दो वक्त के भोजन की व्यवस्था के लिए माता–पिता अपने बच्चों को कम उम्र में ही मजदूरी व अन्य कार्यों की तलाश में भेज देते हैं, जिससे बच्चों का शोषण होता है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं अपार हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा स्वास्थ्य की दी गई परिभाषा के अनुसार 'संपूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक समृद्धि की अवस्था का नाम स्वास्थ्य है, न कि सिर्फ बीमारी और कमज़ोरी की अनुपस्थिति का नाम' (शर्मा, 2015)। निर्धनता, आवास, कुपोषण एवं उपेक्षापूर्ण व्यवहार की सभी समस्याएं बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती हैं। भारत जैसे देश में बच्चों की स्थिति काफी शोचनीय है। सामान्य वर्ग के बच्चों की अपेक्षा जनजातीय समाज के बच्चों की परिस्थितियां अलग होती हैं। जनजातीय समाज प्रारम्भ से ही दूरस्थ स्थानों पर निवास करते आए हैं। इस कारण आज भी वे विकास की दौड़ में काफी पीछे हैं, यही स्थिति इस समाज के बच्चों की भी है। जनजातीय समाज के बच्चे जीवन के प्रारम्भ से ही जीवन के हर क्षेत्र में उपेक्षित रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप इनका बौद्धिक विकास भी बहुत कम होता है एवं निर्धनता के कारण अधिकांश बच्चे शारीरिक रूप से कमज़ोर एवं कुपोषण के शिकार हो जाते हैं।

समेकित बाल विकास सेवा योजना का विस्तार

भारत सरकार द्वारा यह योजना 2 अक्टूबर 1975 में 33 परियोजनाओं के साथ प्रारम्भ की। जिनमें 18 ग्रामीण क्षेत्र, 11 जनजातीय क्षेत्र तथा 4 नगरीय क्षेत्रों की परियोजनाएं थीं। कार्यक्रम के अच्छे परिणामों को देखते हुए इसका विस्तार किया गया। नवीं पंचवर्षीय योजना तक कुल 5652 परियोजनाओं को स्वीकृत किया गया। कार्यक्रम की सफलता के साथ प्रत्येक वर्ष नए परियोजना क्षेत्र सम्मिलित किए जाते रहे हैं। वर्तमान में देश के सभी राज्यों में यह योजना क्रियान्वित की जा रही है। देश में कुल 7075 परियोजनाएं तथा 14,00,000 आंगनबाड़ी केन्द्र स्वीकृत हैं।

सारणी 1 राजस्थान में स्वीकृत और कार्यरत आंगनबाड़ी केन्द्र

वर्ष	स्वीकृत	कार्यरत
2012–13	61119	59423
2013–14	61119	59945
2014–15	61119	60133
2015–16	61119	60267
2016–17	61799	60677

स्त्रोत : आर्थिक समीक्षा, 2016–17

राजस्थान राज्य में समेकित बाल विकास सेवा योजना सर्वप्रथम बांसवाड़ा जिले की गढ़ी पंचायत समिति में प्रारम्भ की गई। वर्तमान समय में यह योजना राज्य के 33 जिलों की 249 पंचायत समितियों में क्रियान्वित की जा रही है। वर्तमान में कुल 228 ग्रामीण क्षेत्र, 36 जनजाति क्षेत्र तथा 40 शहरी क्षेत्रों की परियोजनाएं हैं। कुल 61799 आंगनबाड़ी केन्द्र स्वीकृत हैं, जिनमें से 60677 आंगनबाड़ी केन्द्र कार्यरत हैं।

योजना के मुख्य उद्देश्य

- छः वर्ष से कम आयु के बालकों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारना।
- बालकों में उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास की नींव रखना।
- मातृ एवं शिशु मृत्युदर, रुग्णता, कुपोषण और बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में कमी लाना।
- बाल विकास को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न विभागों में नीति निर्धारण और कार्यक्रम लागू करने में प्रभावशाली तालमेल कायम करना।
- उचित स्वास्थ्य और पोषण संबंधी शिक्षा के माध्यम से बच्चों की सामान्य और पोषण संबंधी आवश्यकताओं की देखभाल के लिए माताओं की क्षमता बढ़ाना।

सारणी 2 योजना के माध्यम से 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों, गर्भवती एवं धात्री महिलाओं एवं किशोरी बालिकाओं को दी जानेवाली सेवाएं

1.	पूरक पोषाहार	6 माह से 6 वर्ष के बच्चे, गर्भवती एवं धात्री महिलाएं और किशोरी बालिकाएं
2.	टीकाकरण	0–6 वर्ष के बच्चे एवं गर्भवती महिलाएं
3.	स्वास्थ्य जांच	6 वर्ष के बच्चे, गर्भवती एवं धात्री महिलाएं और किशोरी बालिकाएं
4.	संदर्भ सेवा	6 वर्ष के बच्चे, गर्भवती एवं धात्री महिलाएं
5.	पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा	15–45 वर्ष की महिलाएं एवं किशोरी बालिकाएं
6.	अनौपचारिक शिक्षा	3–6 वर्ष के बच्चे

(उपरोक्त 6 में से 3 सेवाएं, क्रम संख्या 2 से 4, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग के सहयोग से आंगनबाड़ी केन्द्रों पर उपलब्ध करवाई जाती हैं।)

प्रत्येक आंगनबाड़ी केन्द्र पर एक आंगनबाड़ी कार्यकर्ता की नियुक्ति की जाती है। कार्यकर्ता को प्रशिक्षण कार्यक्रम के तहत तीन महिने का एक साथ प्रशिक्षण दिया जाता था, लेकिन वर्तमान में एक महीने का प्रशिक्षण केन्द्र पर दिया जाता है व एक वर्ष पश्चात् आठ दिन का रिफ्रेशर कोर्स केन्द्र पर करवाया जाता है।

आंगनबाड़ी कार्यकर्ता का मुख्य कार्य 0 से 6 वर्ष के बच्चों, गर्भवती एवं धात्री माताओं तथा किशोरी बालिकाओं को पूरक पोषाहार तैयार करके बांटना और 3 से 6 वर्ष के बच्चों को पूर्व स्कूली शिक्षा देना है। रोग निरोधक टीके एवं स्वास्थ्य जांच का कार्य ए.एन.एम एवं चिकित्सा अधिकारी द्वारा किया जाता है, जिसमें आंगनबाड़ी कार्यकर्ता द्वारा पूर्ण सहायता दी जाती है, साथ ही कुछ बीमारियों की प्राथमिक चिकित्सा भी की जाती है। कुपोषण एवं जटिल बीमारी होने पर संदर्भ सेवाएं भी दी जाती हैं। आशासहयोगिनी द्वारा किशोरी बालिकाओं, गर्भवती, धात्री माताओं तथा 0 से 3 वर्ष के बच्चों के स्वास्थ्य, टीकाकरण एवं पोषण संबंधी संपूर्ण देखरेख की जानकारी रखी जाती है। साथ ही वे प्रतिदिन घर–घर जाकर परिवार सम्पर्क के माध्यम से लाभान्वितों को सेवा प्रदान करती हैं। प्रत्येक आंगनबाड़ी केन्द्र पर एक सहायिका होती है, जो भोजन बनाने तथा केन्द्र की साफ–सफाई से संबंधित कार्यों में सहयोग प्रदान करती है।

आंगनबाड़ी केन्द्र हेतु मानदण्ड

भारत सरकार द्वारा शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम 400 तक की आबादी तथा जनजाति क्षेत्रों में 300 तक की आबादी पर भी आंगनबाड़ी केन्द्र खोले जाने की अनुमति प्रदान की गई है। रेगिस्तानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों के गांवों की आबादी बिखरी हुई एवं दूर–दूर फैली हुई है, अतः 300 की जनसंख्या पर भी केन्द्र खोले जा सकते हैं। जनजाति बाहुल्य ग्रामीण क्षेत्रों में 150 से 300 तक की आबादी एवं सामान्य ग्रामीण क्षेत्रों में 150 से 400 तक की आबादी पर मिनी आंगनबाड़ी केन्द्र खोलने का प्रावधान किया गया है। आंगनबाड़ी केन्द्र खोलने में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों, अल्पसंख्यक

बाहुल्य क्षेत्रों, आर्थिक–सामाजिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों एवं शहरी कच्ची बस्तियों को प्राथमिकता दी जाती है।

आंगनबाड़ी केन्द्रों के संचालन की प्रक्रिया

आंगनबाड़ी केन्द्र संचालन के लिए प्रति केन्द्र एक आंगनबाड़ी कार्यकर्ता एवं एक सहायिका का पद मानदेय आधार पर स्वीकृत किया गया है। मिनी आंगनबाड़ी केन्द्र के लिए केवल कार्यकर्ता का पद मानदेय आधार पर स्वीकृत किया गया है। आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं, सहयोगिनियों और सहायिकाओं का चयन ग्राम सभा द्वारा किया जाता है। आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता सैकण्डरी, मिनी आंगनबाड़ी कार्यकर्ता एवं सहयोगिनी के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता मिडिल पास निर्धारित है। आंगनबाड़ी सहायिका के लिए शैक्षणिक योग्यता प्राथमिक स्तर निर्धारित है, परन्तु पढ़ी–लिखी महिला उपलब्ध नहीं होने पर सहायिका के लिए अनपढ़ महिला का भी चयन किया जाता है। इन पदों के लिए महिलाओं का स्थानीय निवासी तथा विवाहित होना आवश्यक है एवं इनकी आयु 21 वर्ष से 45 वर्ष के मध्य होनी चाहिए (प्रशासनिक प्रतिवेदन एवं प्रगति विवरण 2012–13)।

अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक संस्थाओं द्वारा मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य में सुधार तथा बालिका एवं महिला सशक्तीकरण के लिए कार्य किए जा रहे हैं। समेकित बाल विकास सेवा योजना को 'केयर विश्व खाद्य कार्यक्रम' के माध्यम से खाद्यान्न प्राप्त होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के माध्यम से विभिन्न टीके निःशुल्क दिए जाते हैं। यूनिसेफ द्वारा विभिन्न प्रकार का तकनीकी सहयोग प्रदान किया जाता है।

स्वास्थ्य सूचकांक

राजस्थान में स्वास्थ्य सूचकांक के विभिन्न स्तरों से 2011 से 2015 तक का अशोधित जन्मदर, अशोधित मृत्युदर एवं शिशु मृत्युदर का विवरण सारणी संख्या 3 से स्पष्ट है –

सारणी 3 राजस्थान में स्वास्थ्य सूचकांक

वर्ष	अशोधित जन्मदर		अशोधित मृत्युदर		शिशु मृत्यु दर	
	भारत	राजस्थान	भारत	राजस्थान	भारत	राजस्थान
2011	21.8	26.2	7.2	6.7	44	52
2013	21.6	25.9	7.0	6.6	42	49
2013	21.4	25.6	7.0	6.5	40	47
2014	21.0	25.0	6.7	6.4	39	46
2015	20.8	24.8	6.5	6.3	37	43

स्त्रोत : आर्थिक समीक्षा 2016–17

प्रस्तुत लेख उदयपुर जिले के जनजातीय, ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में संचालित समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम पर आधारित है। उदयपुर जिले में यह योजना 1979 में प्रारम्भ की गई थी। वर्तमान में उदयपुर में 3 आंगनबाड़ी कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण केन्द्र हैं तथा जिले की कुल 14 परियोजनाएं हैं। अध्ययन हेतु उदयपुर जिले से तीन परियोजनाओं– जनजातीय, ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र (सलुम्बर, बड़गांव एवं उदयपुर शहर) का चयन कर उनकी उपयोगिता को जानने की कोशिश की गई है। चयनित तीनों क्षेत्रों से कुल 225 लाभार्थी महिलाओं से परियोजनाओं से संबंधी जानकारी ली गई।

सर्वप्रथम लाभार्थी महिलाओं से यह पूछा गया कि आंगनबाड़ी केन्द्र की जानकारी उन्हे कैसे हुई? 33 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं को केन्द्र का घर के पास होने से, 57 प्रतिशत को परिवार के सदस्यों से तथा 10 प्रतिशत को पड़ोस से आंगनबाड़ी केन्द्र की जानकारी प्राप्त हुई है। तीनों परियोजना क्षेत्रों में

कुल 74 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं के घर से आंगनबाड़ी केन्द्र की दूरी एक किलोमीटर के अन्दर है तथा 54 प्रतिशत आंगनबाड़ी केन्द्र नियमित समय पर खुलते एवं बन्द होते हैं।

पूरक पोषाहार सेवा

छः वर्ष से कम आयु के बच्चों, गर्भवती व धात्री माताओं में कुपोषण की स्थिति में सुधार हेतु बाल विकास परियोजनाओं के अधीन संचालित आंगनबाड़ी केन्द्रों पर वर्ष में 300 दिन पंजीकृत लाभान्वितों को पूरक पोषाहार का वितरण किया जाता है ताकि उनमें वांछित न्यूनतम प्रोटीन एवं ऊर्जा की पूर्ति कर उनके पोषण स्तर को सुधार किया जा सके।

उदयपुर जिले की चयनित तीनों परियोजनाओं जनजातीय, ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र से कुल 66 प्रतिशत महिलाओं एवं उनके सभी बच्चों को केन्द्र पर पूरक पोषाहार का लाभ प्राप्त हो रहा है। जिसमें से 79 प्रतिशत ग्रामीण, 77 प्रतिशत जनजातीय तथा 44 प्रतिशत नगरीय लाभार्थियों ने परियोजना का लाभ प्राप्त किया है। 'अन्नपूर्णा महिला सहकारी समितियों' के माध्यम से पोषाहार को तैयार किया जाता है। इसमें 7 माह से 3 वर्ष के बच्चों एवं गर्भवती एवं धात्री माताओं को एक सप्ताह की पंजरी एक साथ (गुरूवार) तथा 3 से 6 वर्ष के बच्चों को गर्म पोषाहार में दलिया एवं खिचड़ी प्रतिदिन बारी–बारी से वितरित की जाती है। लाभार्थी महिलाओं से पोषाहार की गुणवत्ता के बारे में भी जानकारी ली गई। 62 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं ने इसे उच्च गुणवत्ता बताया वहीं 4 प्रतिशत लाभार्थियों ने निम्न गुणवत्ता का बताया है। तीनों परियोजना क्षेत्र में तुलनात्मक दृष्टि से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण परियोजना क्षेत्र में सर्वाधिक 74 प्रतिशत, जनजातीय परियोजना क्षेत्र में 69 प्रतिशत एवं नगरीय परियोजना क्षेत्र में 44 प्रतिशत लाभार्थियों ने पोषाहार को उच्च गुणवत्ता वाला बताया।

कुल 73 प्रतिशत लाभार्थी महिलाएं पोषाहार व्यवस्था से संतुष्ट थीं। ग्रामीण परियोजना क्षेत्र में सर्वाधिक 84 प्रतिशत, जनजातीय परियोजना क्षेत्र में 79 प्रतिशत एवं नगरीय परियोजना क्षेत्र में सबसे कम 56 प्रतिशत ही संतुष्ट थीं। संतुष्टी का कारण पोषाहार का अच्छा, पोष्टिक एवं समय पर मिलना है। लाभार्थी महिलाओं की कमज़ोर आर्थिक स्थिति होने के कारण दो समय का पोष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है इसलिए यह सेवा आर्थिक स्थिति से कमज़ोर लोगों के लिए अच्छी है।

टीकाकरण (प्रतिरक्षण) कार्यक्रम

बच्चों एवं महिलाओं में संक्रामक रोगों से प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने के लिए समेकित बाल विकास सेवा योजना के अन्तर्गत 0 से 1 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को टी.बी., गलधोंटू, काली खांसी, टिटनेस, पोलियो एवं खसरा तथा गर्भवती महिलाओं को टिटनेस के टीके आंगनबाड़ी केन्द्रों पर चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग के माध्यम से लगवाए जाते हैं। टीकाकरण मातृ–शिशु स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस (प्रतिमाह सोमवार या गुरूवार) के दिन आंगनबाड़ी केन्द्रों पर चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। उदयपुर जिले से चयनित तीनों परियोजना क्षेत्रों के आंगनबाड़ी केन्द्रों पर गर्भवती महिलाओं एवं बच्चों के टीकाकरण किया जाता है। परियोजना क्षेत्र में कुल 83 प्रतिशत लाभार्थियों ने इस सेवा का लाभ प्राप्त किया है। सर्वाधिक 88 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र, 87 प्रतिशत जनजातीय एवं सबसे कम 73 प्रतिशत नगरीय क्षेत्र के लाभार्थियों ने लाभ प्राप्त

सारणी 4 राजस्थान में टीकाकरण कार्यक्रम 2016–17

क्र. सं.	टीके	इकाई लाख
1	ड़ी.पी.टी एवं पेन्टा–3	10.17
2	बी.सी.जी.	11.42
3	खसरा–1	10.69
4	टिटनेस इंजेक्शन (गर्भवती महिला)	11.61
5	ओ.पी.वी.	10.09

रूत्रोत : आर्थिक समीक्षा 2016–17

किया है। लाभार्थी महिलाओं को कौन–कौन से टीके लगे हैं, यह जानकारी नहीं है। टीकाकरण की सम्पूर्ण जानकारी आंगनबाड़ी कार्यकर्ता तथा आशासहयोगिनी द्वारा रखी जाती है, लेकिन महिलाएं इस सेवा में अपना सम्पूर्ण सहयोग प्रदान करती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं एवं उनके परिवार में स्वास्थ्य एवं टीकाकरण के प्रति जागरूकता बढ़ रही है। समय पर टीकाकरण होने से शिशुमृत्यु एवं मातृ मृत्युदर में कमी आई है।

स्वास्थ्य जांच

इस सेवा के अन्तर्गत आंगनवाड़ी केन्द्रों पर 0 से 6 वर्ष तक के बच्चों का वज़न लेकर वृद्धि निगरानी चार्ट में लिखी जाती हैं। अति कुपोषित एवं कुपोषित बच्चों की पहचान कर उन्हें सलाह व चिकित्सकीय सहायता प्रदान की जाती है। बच्चों के स्वास्थ्य तथा प्रसव पूर्व एवं उपरान्त महिलाओं की देखभाल स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं द्वारा की जाती है। महिलाओं एवं बालिकाओं को आयरन की गोलियों का वितरण किया जाता है। बीमार बच्चों एवं माताओं को आंगनबाड़ी केन्द्रों पर उपलब्ध मेडिकल किट से तथा स्वास्थ्य विभाग के माध्यम से जरूरी दवाओं का वितरण भी किया जाता है। उदयपुर जिले से चयनित तीनों परियोजना क्षेत्रों पर स्वास्थ्य की जांच की जाती है। परियोजना क्षेत्र में लगभग 86 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं ने इस सेवा का लाभ प्राप्त किया है। सर्वाधिक 93 प्रतिशत जनजातीय क्षेत्र, 92 प्रतिशत ग्रामीण परियोजना क्षेत्र एवं सबसे कम 73 प्रतिशत नगरीय क्षेत्र के लाभार्थियों ने लाभ प्राप्त किया है। समय पर स्वास्थ्य जांच करने से महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है।

संदर्भ सेवा

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता द्वारा केन्द्र पर पंजीकृत अति कुपोषित बच्चों, गम्भीर रूप से बीमार बच्चों तथा महिलाओं को परामर्श देकर निकटतम चिकित्सा केन्द्रों पर बीमारी के निदान हेतु जाने की सलाह दी जाती है। उदयपुर जिले से चयनित तीनों परियोजना क्षेत्रों पर संदर्भ सेवा प्रदान की जाती है, लेकिन इस सेवा की जानकारी सभी लाभार्थियों को नहीं है। परियोजना क्षेत्रों में कुल 42 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं को ही इस सेवा की जानकारी प्राप्त थी, जिसमें सर्वाधिक 49 प्रतिशत ग्रामीण, 43 प्रतिशत जनजातीय तथा 33 प्रतिशत नगरीय परियोजना क्षेत्र की महिलाएं हैं। 12 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं ने ही इस सेवा का लाभ प्राप्त किया है, जिसमें जनजातीय एवं ग्रामीण परियोजना क्षेत्र से 15 प्रतिशत तथा नगरीय परियोजना क्षेत्र से 7 प्रतिशत लाभार्थी महिलाएं हैं। जिन्होंने इस सेवा का लाभ प्राप्त किया है उनके बच्चे कुपोषित या गम्भीर बीमारी से ग्रसित थे। केन्द्र द्वारा इन्हें अच्छे इलाज के लिए अन्य अस्पतालों में रेफर किया गया, जहां इन्हे इलाज के साथ स्वास्थ्य सलाह भी दी गई। इस सेवा का लाभ कम इसलिए लिया गया है कि परिवार के सदस्य स्वयं बच्चों एवं महिलाओं को अस्पताल ले जाते हैं।

पोषाहार तथा स्वास्थ्य शिक्षा

आंगनबाड़ी केन्द्रों पर यह सेवा 15 से 45 वर्ष की महिलाओं एवं किशोरी बालिकाओं को आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, आशासहयोगिनी तथा पर्यवेक्षक द्वारा उपलब्ध करवाई जाती है। इसमें पोषक भोजन बनाने, इसे सुरक्षित रखने, मौसमी बीमारियों से बचाव, स्वच्छता एवं खाद्यान्न सामग्री के रखरखाव की व्यावहारिक जानकारी दी जाती है। मातृ–शिशु स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस के दिन अन्य गतिविधियों के साथ–साथ गोद भराई, अन्नप्राशन आदि रस्में भी सम्पन्न की जाती हैं। इसके माध्यम से माताओं को सुरक्षित मातृत्व, स्तनपान, बच्चों के टीकाकरण एवं समय पर ऊपरी आहार आदि विषयों पर जानकारी दी जाती है, ताकि बच्चों का जन्म से ही सामाजिक बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास हो सके।

उदयपुर जिले से चयनित तीनों परियोजना क्षेत्रों पर पोषाहार तथा स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान की जाती है। परियोजना क्षेत्र में कुल 74 प्रतिशत लाभार्थियों ने इस सेवा का लाभ प्राप्त किया है। इस सेवा का

लाभ सर्वाधिक 92 प्रतिशत ग्रामीण, 72 प्रतिशत जनजातीय एवं 60 प्रतिशत नगरीय परियोजना क्षेत्र के लाभार्थियों ने प्राप्त किया हैं। जनजातीय एवं नगरीय परियोजना क्षेत्र में कम प्रतिशत होने का कारण कार्यकर्ता द्वारा समय पर जानकारी नहीं देना तथा इनके द्वारा दी गई जानकारी को उपयोगी नहीं समझा जाना है।

पूर्व स्कूली शिक्षा

बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिए पूर्व स्कूली शिक्षा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। पूर्व स्कूली शिक्षा से ही बच्चों का सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास होता है (रुहेला,1983)। समेकित बाल विकास सेवाओं की 6 सेवाओं में से यह एक प्रमुख सेवा है, जो केन्द्रों पर 3 से 6 वर्ष के बच्चों को प्रदान की जाती है। उदयपुर जिले से चयनित तीनों परियोजना क्षेत्रों में सभी बच्चों को पूर्व स्कूली शिक्षा प्रदान की जाती है। इनमें से लगभग 58 प्रतिशत को ही प्रतिदिन पढ़ाया जाता है। ग्रामीण परियोजना क्षेत्र में सर्वाधिक 71 प्रतिशत, नगरीय परियोजना क्षेत्र में 60 प्रतिशत तथा जनजातीय परियोजना क्षेत्र में 45 प्रतिशत बच्चों को प्रतिदिन पढ़ाया जाता है। जनजातीय परियोजना क्षेत्र में कम प्रतिशत होने का कारण कार्यकर्ताओं का कम पढ़ा–लिखा होना है, तथा नगरीय परियोजना क्षेत्र में कमी होने का कारण कार्यकर्ताओं द्वारा कम रूचि लेना है। विभिन्न प्रकार के खेल–कूद, कविताएं, गीत, अक्षर ज्ञान, पशु–पक्षी एवं रंगों की पहचान तथा उठना–बैठना आदि गतिविधियां सिखाई जाती हैं, जिससे बच्चों में शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक, संज्ञानात्मक विकास हुआ है, तथा बच्चे स्कूल जाने के प्रति रूचि लेने लगे हैं।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि सभी लाभार्थी महिलाओं के लिए समेकित बाल विकास सेवा योजना उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। सर्वेक्षित 66 प्रतिशत महिलाएं एवं उनके सभी बच्चों ने केन्द्र पर पूरक पोषाहार, 83 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं ने टीकाकरण, 86 प्रतिशत लाभार्थी महिलाओं ने स्वास्थ्य जांच, 74 प्रतिशत लाभार्थियों ने पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा तथा सभी बच्चों ने पूर्व स्कूली शिक्षा की सुविधाओं का लाभ लिया है। तुलनात्मक दृष्टि से स्पष्ट है कि ग्रामीण परियोजना क्षेत्र में इस परियोजना का क्रियान्वयन अच्छे से हो रहा है। दूसरे स्थान पर जनजातीय परियोजना क्षेत्र है। तथा नगरीय परियोजना क्षेत्र में स्वयं कार्यकर्ता द्वारा कार्य में रूचि नहीं ली जाती है।

परियोजना द्वारा समय–समय पर स्वास्थ्य जांच, टीकाकरण, पूरक पोषाहार एवं स्वास्थ्य शिक्षा के कारण बीमारी तथा कुपोषण से प्रभावित बच्चों की संख्या में कमी आई है। बाल एवं मातृ मृत्युदर में भी कमी आई है। बच्चों, गर्भवती महिलाओं एवं धात्री माताओं के पोषण एवं स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार आया है तथा साथ ही पूर्व विद्यालय शिक्षा सेवा द्वारा बच्चों में सामाजिक, शारीरिक एवं संज्ञानात्मक विकास हुआ है। बच्चों में शारीरिक कौशल, भाषा दक्षता एवं व्यवहार में परिवर्तन हुआ है। स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई है। यह कहा जा सकता है कि बाल विकास वैश्विक समस्या है, इसीलिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व स्तर पर बाल विकास के लिए एक विशिष्ट संगठन भी निर्मित किया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से मानव व्यवहार के जीवन क्रम का यह पहला सोपान है। इसीलिए क्रम के इसी स्थान की देखभाल और सुरक्षा आवश्यक है। आंगनबाड़ी इसी विकास के पोषण के लिए पहली संस्था है और समाजीकरण का प्रारंभ आंगनबाड़ी के इन्हीं समाजशास्त्रीय पक्षों से समझा जाना चाहिए। इस तथ्य पर विवाद हो सकता है कि आंगनबाड़ी एक औपचारिक और प्रबन्धीय व्यवस्था है पर सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह आवश्यक संगठन तो है ही।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से इस योजना के कई पक्ष हैं। बच्चों के समाजीकरण की यह पहली सीढ़ी है।

परिवार से अलग सामाजिक आचरणों को सीखने के लिए यह संस्थागत कार्य महत्त्वपूर्ण है। साथ ही सामाजिक आचरणों के भेदभाव को समझने के लिए भी यह एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यह भी कहा जा सकता है कि यह संस्थागत कार्य सरकारी होने के कारण नौकरशाही की नियमबद्धता के साथ भी जुड़ा हुआ है। नौकरशाही तथा राजनीतिक योजनाओं के कई मूल्यांकन हुए हैं और प्रायः समाज कल्याण कार्यों में इन संस्थाओं के कार्यकलापों की आलोचनाएं की जाती रही हैं, पर इन तथ्यों से इंकार नहीं किया जा सकता कि अन्य समाजों की तरह राजस्थान जैसे समाज में ऐसी योजना की आवश्यकता समाज विकास के लिए है।

References

आर्थिक निदेशालय आयोजना विभाग, *आर्थिक समीक्षा. 2016–17* जयपुरः राजस्थान।

महिला बाल विकास विभाग, *प्रशासनिक प्रतिवेदन एवं प्रगति वितरण, 2012–13,* राजस्थान।

मेघवाल, बी. एल. एवं योगेश. 1996–97. *समेकित बाल विकास सेवा योजना उदयपुर क्षेत्र एक विहंगावलोकन,* कार्यालय क्षेत्रीय उपनिदेशक, बाल विकास, महिला एवं बाल विकास विभाग, उदयपुरः राजस्थान सरकार।

रुहेला, सत्यपाल. 1983. *भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र,* जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

शर्मा, जी.एल. 2015. *सामाजिक मुद्दे,* जयपुरः रावत।

वृतिका गुहिल, शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

सिद्दी जनजाति के सांस्कृतिक पक्ष

आरसी प्रसाद झा

सार : सिद्दी गुजरात के सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र व कर्नाटक के तटीय क्षेत्रों में निवास करते हैं। इनके शारीरिक रंग–रूप अफ्रीकन लोगों से मिलते–जुलते हैं। ये कब आए, इस संबंध में एक मत नहीं है। लेकिन सभी सिद्दी यही स्वीकार करते हैं कि वे समुद्री मार्ग से भारत आए। गुजरात का सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र व कर्नाटक के तटीय क्षेत्र समुद्री मार्ग से लगते हैं व ये इसी के आस–पास रहते हैं। अध्ययन के परिणाम यह इंगित करते हैं कि सिद्दी इस्लाम (सुन्नी) धर्म को मानते हैं। ये नागारची एवं रतनपुर पीर के प्रति विशेष आस्था रखते हैं। इबादत, सलामी, दर्शन से उनकी हर समस्या दूर होती है। इनके सामाजिक–धार्मिक कार्यक्रमों, लोक–रीतियों, त्योहारों एवं उत्सवों में जनजातीय संस्कृति, दक्षिणी अफ्रीकन संस्कृति व इस्लामिक धर्म का प्रभाव दिखाई देता है।

संकेत शब्द : इस्लाम, जनजाति, जाम्बुर, नागारची, सिद्दी

सिद्दी जनजाति, जिसे भारतीय प्रायद्वीप में विभिन्न स्थानों पर सीदी, सिद्धी, शीदी या हब्शी के नाम से भी जाना जाता है, गुजरात के सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र व कर्नाटक के तटीय क्षेत्रों में निवास करती है। इस जनजाति का शारीरिक रंग–रूप व बाल अफ्रीकन लोगों से मिलते–जुलते हैं। ये कब आए, इस संबंध में एक मत नहीं है पर मौखिक इतिहास के आधार पर ये स्वयं के अफ्रीकन होने का दावा प्रस्तुत करते हैं। उपाध्याय एवं पंचोली(2010) के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सिद्दी सर्वप्रथम् भरूच जिले के झगाड़िया तालुका के रतनपुर में आए, जबकि इसी अध्ययन में यह भी बताया है कि सिद्दी अफीका के कोयला खदान में काम करने के लिए लाए गए। इसके बाद वे पूरे गुजरात या आस–पास के गांवों में फैले। सिद्दी जनजाति की मान्यता है कि ये लगभग पांच सौ पूर्व जूनागढ़ के राजा द्वारा दास के रूप में लाए गए। कुछ सिद्दीयों का मानना है कि मोहम्मद गजनवी जब भारत पर आक्रमण के लिए आ रहे थे, तब सिद्दी को साथ लाए। कुछ सिद्दी अपने आप को नागारची पीर से जोड़ते हैं व कहते हैं कि ये लोग नागारची बापू के साथ आए। जो भी हो, सभी सिद्दी यही स्वीकार करते हैं कि वे समुद्री मार्ग से भारत आए। गुजरात के सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र व कर्नाटक के तटीय क्षेत्र समुद्री मार्ग से लगते हैं। ये समुद्री मार्ग से आए, अतः इनके निवास स्थल आज भी समुद्री किनारे के आस–पास मौजूद हैं। ये इस्लाम को मानते हैं। इनके मौखिक इतिहास को देखें तो मोहम्मद गजनवी भी धर्म से इस्लाम थे एवं जूनागढ़ के राजा द्वारा जिस समय इन्हें दास बनाकर लाया गया, उस समय के राजा भी इस्लाम धर्म के अनुयायी थे। अतः संभवतः इसका प्रभाव यह हो सकता है कि ये भी इसी कारण इस्लाम धर्म मानते हों।

गुजरात में इन्हें आदिम जनजाति समूह (पी.टी.जी.) की श्रेणी में रखा गया है। ये सुरेन्द्र नगर, राजकोट, जामनगर, पोरबंदर, अमरेली, भावनगर, जूनागढ एवं गिर सोमनाथ आदि जिलों में रहते हैं। सिद्दी जनजाति का मूल निवास–स्थल गुजरात का सौराष्ट्र एवं कच्छ क्षेत्र के विशेषकर जूनागढ़ एवं गिर सोमनाथ जिला हैं। सिद्दी जूनागढ़ जिला (गिर सोमनाथ जिला सहित) के तलाला, जांबुर, शेरवाण, चित्रावड, गुंदरण, सुरवा, मोरूका, रसूलपारा, गलियावड, संगोदरा, बेरवाव, शासन, बडाला, बिट्ठपुर, भालछल, हडमतिया, वाडला, जावंत्री, मांगरोल, बेरावल, भेलारा, मंडोर, उना, खिलावड, थोरडी, भाखा, जूनागढ शहर, बिल्खा, मेंडरडा, अमरापुर, कोडिनार, बेलादर, छाछर, घाटवाड़ आदि स्थानों में बसे हुए हैं।

जांबुर गांव (चयनित अध्ययन स्थल) गुजरात के गिर सोमनाथ जिला (पूर्व में जूनागढ जिला) के तलाला तालुका के माधोपुर–जांबुर ग्राम पंचायत में आता है एवं यहां पर सिद्दी की जनसंख्या 1644 है (त्रिवेदी, 1967, जनगणना, 2011)। गुजरात में सिद्दी की अधिकांशतः आबादी यहीं निवास करती है।

इनका जीविकोपार्जन का स्रोत मजदूरी (नायडू, 2007, नायक एवं पंड्या, 1981,मेहता, 1993) कृषि एवं पशुपालन है। सिद्दी की संस्कृति, वेशभूषा, रहन–सहन, भाषा, आदि गुजरात की झलक देते हैं। इनका अपना सदियों पुराना रहन–सहन, रीति–रिवाज तथा साामाजिक संगठन आज भी जीवित है (पांडे 2007)। इनके शारीरिक हाव–भाव भी दक्षिणी अफ्रीकन लोगों से मिलते–जुलते हैं (कैलाश1991)। सिद्दी जनजाति ने अफ्रीकन होने के बावजूद यहां की संस्कृति, वेशभूषा, रहन–सहन, भाषा आदि को अपना लिया हैं। लगभग प्रत्येक सिद्दी महिला कोई एक दांत 'पीले रंग' का रखती है। सिद्दी इस्लाम धर्म (सुन्नी) को मानते हैं। स्थानीय लोग इन्हें 'हब्शी' व 'सीद्दी बादशाह' भी कहते हैं।

'धमाल' इनका नृत्य है जो कि इनकी मूल अफ्रीकी पहचान को दर्शाता है, ये आज भी इसे जीवित रखे हुए हैं। इनका विश्वास नागारची पीर में है। नागारची पीर दरगाह में सिद्दी प्रत्येक गुरूवार को लगभग साढ़े आठे से नौ–साढ़े नौ रात्रि तक सामूहिक रूप से धमाल करते हैं। इसे छोटी धमाल कहा जाता है। ये मानते हैं कि पीर बाबा के आशीर्वाद एवं धमाल द्वारा बाबा को खुश करने से पूरे गांव की समस्या दूर होती है। पीर के प्रति यह आस्था उनके पूर्वजों के समय से अभी तक चली आ रही है।

नागारची पीर दरगाह पर सिद्दी अपनी समस्याओं के समाधान, बीमारी के उपचार, विलंब से बच्चा होने, गर्भपात होने की स्थिति में पुत्र होने पर, मनोकामना पूर्ति, अच्छे स्वास्थ्य, विपदा से बचाव, कोई कार्य पूरा होने पर, बेऔलाद को औलाद होने आदि के लिए आते हैं। नागारची बापू की दरगाह में लोबान का प्रयोग,खाख (वहीं की लकड़ी की जली राख) को खाना, दरगाह स्थित पानी का प्रयोग व पानी को फूल में मिलाकर इसे प्रयोग में लेना, आधा फीट हरा धागों या कपड़ों से दांये हाथ में दो गांठ लगाना, मूंगफली या अन्य तेल से मालिश करना, काला धागा बांधना, काले धागे से ताबीज़ बनाकर व नागारची बाबा का नाम लेकर इसमें इत्र, खाख, गुलाब जल, आदि से मजार पर छिड़काव करना व इसे प्रयोग में लेना, आयत पढकर, सलामी, नियमित दर्शन, इबादत व पूजा–पाठ, झाड़–फूंक, तंत्र–मंत्र, जादू, नजर उतारना, कुछ निषेधों का पालन आदि करना इनकी धार्मिक क्रिया व लोक चिकित्सा में सम्मिलित है। ये लोग नारियल, मिठाई, सेवई, खजूर, कपड़ा, पैसा, आदि पीर पर चढ़ाते हैं। विशेष परिस्थिति में यहां परिसर में नृत्य, गीत, आदि होते हैं। बुधवार रात्रि में पीर की सफाई–धुलाई होती है। यहां पर सबसे अधिक भीड़ गुरूवार, शुक्रवार, रविवार एवं अन्य मुस्लिम त्योहारों पर होती है। वैसे लोग यहां प्रतिदिन इबादत कर सकते हैं। पुरूष दरगाह के अंदर जाने के समय अपना सिर ढ़क कर जाते हैं। इबादत, सलामी व दर्शन का समय प्रतिदिन सुवह चार बजे, ग्यारह बजे, दोपहर चार बजे व शाम छः बजे का है। इस परिसर में समय–समय पर मेलों का आयोजन किया जाता है। यहां पर उर्स एवं अन्य अवसरों पर वृहद् स्तर के मेलों का आयोजन होता है।

नागारची पीर की एक बहन उसर पारशामा उर्फ पारसा माई भी यहीं रहती थीं, इनकी समाधि भी जांबुर गांव में है। नागारची बाबा के दर्शन के अलावा उनकी बहन उसर पारशामा के मजार पर भी जाना आवश्यक है। पहले नागारची बापू के दरगाह जाते हैं फिर उनकी बहन के दरगाह जाते हैं। पारसा माई की एक दरगाह जांबुर में भी है। माई साब मां (असली नाम–गाण्डी) भी इनकी बहन थीं, इनकी भी इबादत एवं सलामी सुवह चार बजे, ग्यारह बजे, शाम चार बजे एवं छः बजे शाम को होती है। इनकी एक बहन का नाम रूमाना था, इनकी भी मजार इसी गांव में है। जांबुर में मिश्रा माई की दरगाह है, यह भी नागारची बापू की बहन थीं। नागारची बाबा के भाई–बहन व रिश्तेदार में इतनी आसक्ति थी कि सभी की मजार भी पास–पास में है, जिसकी संख्या लगभग पंद्रह है। देवनसा बापू की दरगाह भी इसी परिसर में है। इनका बड़ा दरगाह राजकोट में है। गांव में लोसल पीर की दरगाह है, लोसल पीर सिद्दी थे, उन्होंने जिंदा समाधि ली थी। इसीलिए सिद्दी नागारची बाबा की विशेष आस्था से इबादत करते हैं। इनकी भी चार समय इबादत होती है। हबसी दरगाह पर बड़ा जायदा के दादा स्वसुर की मां के भी पीर हैं। इनकी

भी इबादत चार समय होती है। दादा रूमान दरगाह पर भी चार समय इबादत होती है। माई साब गाण्डी मां की बहन हैं। इसके अलावा, रगतीया पीर, माई साब के दरगाह, घटवारी माई दरगाह, माई पुरी दरगाह, साईं मिसरा दरगाह, आदि में भी चार समय सलामी एवं इबादत हेाती है। यहां कई छोटे–छोटे पीर हैं, जिन्हें मायसबमा कहा जाता है। जांबुर में लगभग 15 एवं माधोपुर सोसायटी में 5 के लगभग छोटे–छोटे पीर हैं। ये छोटे–छोटे पीर किसी के घर में व किसी के दरवाजे पर अवस्थित हैं, तो कहीं रास्ते के पास। भवन में अवस्थित तीन पीर (जांबुर के मुख्य पीर दरगाह केा छोड़कर) जांबुर में एवं एक पीर सोसायटी (माधोपुर सोसायटी) में है, सोसायटी के पीर का नाम पारसा मां है। नागारची पीर स्थल के आस–पास 5–6 छोटे–मोटे पीर दरगाह हैं। ये पीर सिद्दी आस्था का प्रतीक है, ये लोग छोटे–बड़े सभी पीर की पूजा करते हैं एवं यह मानते हैं कि जांबुर में अवस्थित पीर दरगाह में जिन्हें पूजा करते हैं, ये सभी पीर के रिश्तेदार (दरगाह में अवस्थित पीर) हैं। ये सब पीर सिद्दी समाज के थे।

जांबुर में मस्जिद, पीर दरगाह एवं कब्रिस्तान पास–पास में है। लगभग 50 बीघा में कब्रिस्तान, नागारची पीर बाबा दरगाह, परिशामा दरगाह, दरगाह प्रमुख के निवास, दरगाह के कार्यालय, मस्जिद, आदि अवस्थित हैं। इसी स्थान पर दरगाह के बिल्कुल निकट एवं कब्रिस्तान परिसर में एक और पीर (उसर पार शामा की पीर) है, वहां भी लोग इबादत करने जाते हैं।

रतनपुर में बाबा गोर का एक प्रमुख दरगाह है एवं यहां पर उर्स मनाया जाता है, जिसमें अधिकांशतः सिद्दी दूर–दूर से यहां आते हैं। सिद्दी अन्य पर्व, उत्सव, आदि में भी यहां आते हैं। उर्स के समय सिद्दी समुदाय द्वारा विशेष रूप से खाना बनवाया जाता है, जिसमें बिरयानी, मीठा चावल, आदि बनता है। इबादत व सलामी प्रतिदिन तीन दिन तक चार समय होते हैं। यह मेला तीन दिन के लिए होता है। इसमें सभी लोग सलामी एवं इबादत करते हैं। यहां के लोग ऐसा मानते हैं कि इसी दिन नागारची बापू का जन्म हुआ। उर्स में पीर दरगाह पर धमाल नृत्य अवश्य होते हैं। कव्वाली भी इस उत्सव में होती है।

सामूहिक धार्मिक कार्यक्रम भी समय–समय पर नागारची पीर दरगाह एवं मस्जिद की ओर से आयोजित किए जाते हैं। विशेष कार्यक्रम में सामूहिक खाना होता है। सिद्दी समाज में किसी भी धार्मिक कार्यक्रम में भाग लेने के लिए शुद्ध हेाना आवश्यक है। स्नान करके व नया या धुला कपड़ा पहन कर ही धार्मिक कार्यक्रम में भाग लिया जा सकता है।

सिद्दी जनजाति का सामाजिक जीवन

गर्भ काल व बच्चे के पांच वर्ष तक की गतिविधियां गर्भवती होने के उपरांत दूसरे माह से बच्चा होने तक प्रत्येक गुरूवार को दरगाह नियमित रूप से जाते हैं व बच्चा ठीक से होने की दुआ करते हैं। सातवें माह में खोरा पूजा होती है, जो सुबह सात बजे से पहले करनी आवश्यक होती है। खोरा गोद भराई का एक भाग है। यह कार्यक्रम पति के घर पर होता है। लड़की के माता–पिता, भाई, ननद, आदि सभी इसमें आते हैं। इनमें डायन (परम्परागत रूप से प्रसव करानेवाली) को भी बुलाते हैं। इसमें इनको मिठाई, खाना, आदि मिलता है। सभी रिश्तेदार नारियल, मिठाई, कपड़ा, पैसा, आदि भावी माता को देते हैं। ननद द्वारा गर्भवती महिला को सात बार आंचल में एक नारियल, सात सुपारी, सवा किलो चावल आदि दिया जाता है। अंतिम बार गर्भवती महिला इन सामग्रियों को रख लेती है। फिर उसे अपने साथ सम्हाल कर जहां बच्चे को जन्म देगी, वहां ले जाती है। कुछ सिद्दी गोदभराई में भी खाना करते हैं, जिसकी व्यवस्था लड़की के माता–पिता द्वारा की जाती है।

सिद्दी समाज में कुछ लोग जन्म के तुरंत बाद मिठाई, सेवई, खजूर, आदि बांटते हैं। ऐसा विशेषकर वे लोग करते हैं जो अमीर हैं, जिनके यहां बहुत दिनों बाद बच्चा हुआ है, या कई बेटियां होने पर बेटा हुआ है। इस खुशी में सभी लोग शामिल होते हैं। फिर छठे दिन के कार्यक्रम में पहुंचते हैं।

लड़के के जन्म के पांचवें दिन एवं लड़की होने पर छठे दिन घर में पूजा होती है। इस पूजा में पड़ोसी, बुआ, आदि आते हैं। बच्चा होने पर छठे दिन रात्रि में नारियल फोड़कर सभी को बांटा जाता है। इसी दिन सभी को खजूर भी बांटते हैं। छठी के दिन ही चावल का मीठा भात बनाते हैं, उसे सभी खाते हैं। सात सुपारी को सात कुंवारी लड़कियों को उसी रात में बांटते हैं। बुआ नामकरण हेतु मौलवी के यहां जाती है। मौलवी दिन व समय के अनुसार नाम खोज कर बताते हैं। नामकरणोपरांत बच्चे को घरवाले, पड़ोसी व रिश्तेदार सभी इसी नाम से पुकारने लगते हैं। घर में इस दिन भी अशुद्धि के कारण पूजा, गीत, नृत्य आदि नहीं होते हैं। रात्रि में विशेष खान–पान, जैसे–खीर, पूरी, मीठा भात, तीखा भात या पुलाव (आलू एवं चावल की बनी हुई बिरयानी), मांसाहारी खाना, आदि बनाते हैं। पूजा कक्ष में छठी मनाई जाती है। फिर सभी लोग (रिश्तेदार, पड़ोसी, आदि) बच्चे एवं मां को कुछ राशि, कपड़ा, सामान, आदि देते हैं। साथ ही, 'डायन' को भी कुछ–न–कुछ राशि इन लोगों द्वारा मिलती है।

अपने रीति–रिवाजों के अनुसार बच्चे के जन्म के चालीसवें दिन अर्थात सवा माह होने पर पानी में दूध मिलाकर घर में सभी नहाते हैं। जो स्त्री बच्चे को जन्म देती है, वह नीम की पत्तियों को गर्म पानी में उबालकर प्रतिदिन या जब मन हो तो इससे स्नान करती है, इससे शरीर की गर्मी, गंदगी, बीमारी सभी ठीक हो जाते है। चालीसवें दिन घर में सभी चीजों की धुलाई होती है व सभी स्नान करते हैं। नए बच्चे व उसकी मां नए कपड़े पहनते हैं। इसमें रिश्तेदार, पड़ोसी, आदि सभी शुद्ध होते हैं। चालीसवें दिन मां नवजात बच्चे को लेकर दरगाह जाती है। ये दरगाह में लोबान का प्रयोग करते हैं। दरगाह से पानी लाकर घर के हर सामान पर यह पानी छिड़कते हैं। इस दिन घर में भी इबादत होती हैं। रात्रि में सभी लोग खाना खाते हैं। पड़ोसी, आने वाले रिश्तेदार व अतिथि नवजात बच्चे को पैसा, कपड़ा, सामान, आदि देते हैं। चालीसवें दिन शुद्ध होने पर आस–पड़ोस के सभी घरों में जर्दा बांटते हैं। इस दिन से ये नया काम शुरू करते हैं।

पुत्र होने पर ही मुण्डन होता है। मन्नत होने पर मुण्डन होता है नहीं तो बच्चे के जन्म के छः माह से एक वर्ष तक कभी भी किया जा सकता है, जिसमें जन्म के बाल हटाए जाते हैं। इस कार्य के लिए बच्चे की बुआ व मुस्लिम हज्जाम को बुलाया जाता है। उस्तरे या ब्लेड से मुंडन किया जाता है। मुण्डन के समय बुआ अपने आंचल में बच्चे के बालों को रखती है। इसमें आस–पास के रिश्तेदार व पड़ोसी आते हैं। बुआ बालों को या तो नदी में फेंक देती है या उन्हें जमीन में दफ़न कर देती है। इस कार्य हेतु बुआ को कपड़े व पैसा दिया जाता है। इस कार्यक्रम में खान–पान की व्यवस्था नहीं होती एवं बाहरी लोगों को नहीं बुलाया जाता है। लेकिन, इच्छा होने पर खाना कर सकते हैं। कुछ लोग मिठाई, सेवई, खजूर, आदि भी इस खुशी पर बांटते हैं।

सिद्दी समाज में बच्चे (2–5 वर्ष के लड़के) की सुन्नत (खतना, इस्लाम धर्म में एक प्रकार का संस्कार) की जाती है। सुन्नत कार्यक्रम की तिथि आदि का निर्धारण मौलवी अपने धार्मिक दैनिक कैलेंडर के अनुसार तय करते हैं। इस कार्यक्रम में सभी रिश्तेदार एवं पड़ोसी आते हैं। ये सभी खुशी मनाते हैं, नाचते हैं एवं डांडिया खेलते हैं। दिन में ही इनके लिए खान–पान का कार्यक्रम रखा जाता है। इस कार्य को करने के लिए मामा की गोद में बच्चे को बैठाया जाता है। हज्जाम सुन्नत करता है। कहीं–कहीं पर मौलवी स्वयं खतना करते हैं। रात्रि में मौलवी द्वारा मौलूद पढ़ा जाता है। यह हिन्दू–मुस्लिम रीतियों का विचित्र समन्वय है। मौलवी को खुशी में दान–दक्षिणा आदि देते हैं। मौलवी दर्द कम करने, लहू के रिसाव, घाव सुखाने, अच्छी नींद लाने आदि के लिए दवा लाते हैं। ये बाबर की छाल का पाउडर कर एवं इसे पानी में मिलाकर उस भाग पर प्रतिदिन ठीक होने तक लगाते हैं। घर में इस समय दस दिन तक काफी पवित्रता रखनी पड़ती है।

सुन्नत के नौ दिन तक मां और बच्चे स्नान नहीं करते हैं। दसवें दिन नीम की पत्तियों को पानी में

उबालकर उसे ठंडा कर उस पानी से मां और बच्चे को नहलाते हैं। दसवें या बारहवें दिन भी मौलूद पढा जाता है। बच्चा इसी दिन शुद्ध होता है। बच्चे के मामा नए कपड़े लाते हैं, वही कपड़ा बच्चा पहनता है। इस दिन मामा अपनी तरफ से खाना देते हैं।

मृत्योपरांत संस्कार

सिद्दी को मरने पर मुस्लिम विधि के अनुसार कब्रिस्तान में दफनाया जाता है। जांबुर एवं माधोपुर सोसायटी के सभी मुस्लिम (सिद्दी व अन्य मुस्लिम) जांबुर के कब्रिस्तान में दफनाए जाते हैं। मस्जिद से जनाजा लाया जाता है।

सिद्दी समाज की मान्यता है कि व्यक्ति तभी मरता है जब अल्लाह उसको ऊपर बुला लेते हैं। कब अल्लाह किस को बुलाएंगे, ये अल्लाह ही जानें। अल्लाह यदि एक सौ को जन्म देते हैं तो एक सौ को ऊपर बुला लेते हैं क्योंकि वहां भी संतुलन बनाना है। जो कर्म अच्छा कर मरते हैं उन्हें जन्नत मिलती है एवं बुरा कर्म करनेवाले को दोज़ख मिलता है। किसी की मृत्यु होने पर परिवार के सदस्य, रिश्तेदार, पड़ोसी एवं मुस्लिम समाज के कई मित्र, आदि जनाजे में शामिल होते हैं। पुरूष की मृत्यु होने पर घर पर ही काका, मामा या जमात (सिद्दी समाज की परंपरागत कानून के सदस्य) मृतक को नहलाते हैं। सिद्दी महिला के मरने पर महिलाएं नहलाती हैं। पुराना कपड़ा बदल देते हैं एवं नया सफेद कपड़ा (हाथ से सिला हुआ) मृतक को पहनाया जाता है। 12 मीटर उजले कपड़े में कफन लपेटते हैं। मौलवी कुछ धार्मिक क्रिया करते हैं। इसी समय मृतक को जनाजे में डालते हैं। लोबान, अगरबत्ती, आदि भी जनाजे में डालते हैं।

केवल पुरूष कब्रिस्तान तक जनाजे के साथ जाते हैं। पुत्र कंधा देता है एवं कब्र पर मिट्टी भी देता है। कब्रिस्तान में मौलाना धर्मग्रंथ में उल्लेखित कुछ अक्षर पढ़ते हैं। कब्रिस्तान में लगभग 4.5–6 फीट चौड़ा, लम्बाई 6–9 फीट लम्बा, चौड़ाई 4 फीट गहरा गडढा खोदते हैं। इसमें गजिया (पत्थर) बिछाते हैं। इत्र, गुलाब जल, लोबान, कपूर, आदि इस पर छिड़कते हैं। इस दौरान मौलवी कुरानशरीफ की आयत पढ़ते हैं। बारह से साढ़े बारह रात्रि तक दफनाया नहीं जाता है। कफन में लपेटे लाश को कब्र में डालते हैं। लाश को पश्चिम दिशा में सिरहाना रखकर सुला कर दफनाया जाता है। ऊपर से मिट्टी से ढक दिया जाता है। जितने लोग होते हैं, उस कब्र पर कुछ मुट्ठी मिट्टी डालते हैं। सिरहाने की तरफ नाम लिखते हैं एवं इसे घर का आकार देते हैं। फिर उसे मृतक का घर मानते हैं। इसके बाद सब लौट जाते हैं।

कब्रिस्तान जाने वाले लोग मृतक के घर पर जाते हैं एवं सभी एक साथ फातिया में शामिल होते हैं। चाय–पानी का प्रबंध रहता है। फिर सभी रिश्तेदार आठ बजे रात्रि में रोजा खोलते हैं और मृतक के यहां भोजन करते हैं। मृतक के घर 10 दिन तक सभी रिश्तेदार, पड़ोसी खाना देते हैं व मिलने आते रहते हैं। घर के सभी लोग एवं उनके यहां ठहरे हुए रिश्तेदार आदि सभी यहीं खाते हैं। चालीसवें दिन चेल्लम होता है। मौलवी घर पर जाकर पूजा–पाठ करते हैं। इस दिन सारे रिश्तेदार, पड़ोसी, घर के लोग, आदि साथ खाना खाते हैं। मृत्यु होने के पश्चात चालीसवें दिन सिद्दी शुद्ध होते हैं। चालीस दिन तक प्रतिदिन शाम में छः बजे कब्रिस्तान जाकर उस कब्र के निकट अगरबत्ती दिखाई जाती है। सवा माह तक घर में पूजा–पाठ नहीं किया जा सकता एवं मस्जिद, दरगाह, आदि कहीं भी नहीं जा सकते। चालीस दिन तक पति–पत्नी साथ नहीं सोते हैं।

मोहर्रम, ईद, बकरीद व रमजान में व्यक्ति कब्रिस्तान जाकर अपने पूर्वजों की क्रिया करते हैं। यहां पर मृतक के घर के सदस्य व रिश्तेदार फातिया पढ़ते हैं। मृतक के नाम से अगरबत्ती जलाते हैं। मरने के एक वर्ष के बाद बरसी होती है, कब्रिस्तान में मृतक को मौलूत (मरने वाले व्यक्ति के एक वर्ष पूरा होने

पर धार्मिक कार्य) पढ़ाते हैं। इस दिन भी कब्रिस्तान में अपने पूर्वज एवं मृतक के नाम अगरबत्ती जलाते हैं। इसी दिन भी लोग इनके घर खाना खाते हैं।

विवाह की रीतियां

सिद्दी अपने समुदाय में ही विवाह करते हैं। ये सिद्दी समुदाय के बाहर भी किसी अन्य मुस्लिम परिवार में निकाह (विवाह) कर सकते हैं। लेकिन, अध्ययन के समय एक भी विवाह गैर–सिद्दी के साथ नहीं पाया गया। सिद्दी समाज में मामा–बुआ के पुत्र–पुत्रियों में निकाह अधिक प्रचलित हैं। वर और वधू के चयन हेतु सर्वप्रथम लड़के वाले लड़की वालों के यहां निकाह का प्रस्ताव लेकर जाते हैं। सिद्दी समाज में निकाह मुस्लिम रीति के अनुसार किया जाता है। यदि दोनों परिवारों के अभिभावकों व रिश्तेदारों की आपसी सहमति हो जाती है तब वधू मूल्य लड़के के अभिभावक को देना पड़ता है। अधिकांश परिस्थितियों में वधू मूल्य सात सौ छियासी रूपये निर्धारित किया जाता हैं। शादी की बात चलने से लेकर निकाह होने तक लगभग एक वर्ष समय लगता है। सिद्दी लड़कों का विवाह 20 वर्ष की आयु तक एवं लड़कियों का निकाह लगभग 17 वर्ष की आयु तक हो जाता है।

लड़की को पहली बार देखने पर उसे शगुन के रुप में कुछ रूपये दिए जाते हैं। मौलवी, जमात, दोनों तरफ के रिश्तेदार, पड़ोसी, आदि इसमें सम्मिलित होते हैं। फिर लड़के वाले तिलक देते हैं। रिश्तेदार दोनों के हाथ में पैसे देते हैं। इसके उपरांत सगाई की रस्म होती है। सिद्दी लोगों में सगाई दो प्रकार से होती है–छोटी सगाई एवं बड़ी सगाई। इस बीच लड़का–लड़की नहीं मिलते हैं।

उपाध्याय एवं पंचोली (2010) ने अपने अध्ययन में विश्लेषित किया कि सिद्दी समाज में विवाह (निकाह) से पहले मंगनी होती है। इसकी पहल वर पक्ष द्वारा लड़की के घर पर जाकर की जाती है।यह विवाह तय होने से पहले हेाता है। इस कार्यक्रम में दोनों परिवार के रिश्तेदार शामिल होते हैं। इसमें कुछ जेवर (पायल, अंगूठी, झुमके, आदि) दिए जाते हैं जो कि चांदी या सोने के होते हैं। इन सभी का एक लिखित दस्तावेज बनता है, जिन्हें जमात रखता है। विवाह–विच्छेद के समय इन्हें लौटाया जाता है। पुनर्विवाह, तलाक के बाद या पति या पत्नी की मृत्योपरांत हेाता है। यह कार्य काजी द्वारा संपन्न करवाया जाता है। पति–पत्नी में अधिक झगड़ा होने पर तलाक होते हैं। वरिष्ठ सिद्दी के समक्ष तीन बार तलाक कहने से तलाक हो जाता है।

निश्चित तारीख कोनिकाह तय होने पर लड़के वाले मौलवी, रिश्तेदारों, पड़ोसियों एवं मित्रों के साथ लडकी के माता–पिता के घर पर पहुंचते हैं। लड़के वाले अपने घर से बारातियों के साथ लड़के को तैयार कर एवं सेहरा बांध कर लड़की वालों के यहां निकाह के लिए जाते हैं। बारातियों को ठहराने की व्यवस्था लड़की वाले करते हैं। निकाह के बाद, पति–पत्नी के अपने घर पहुंचने के उपरांत जांबुर के पीर दरागाह पर जाते हैं। सिद्दीयों में विवाहोपरांत लड़की केा अपने माता–पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर रहने की परम्परा रही है। शादी में लड़की के माता–पिता द्वारा गृहस्थी आरंभ करने के लिए सारा सामान, टेलीविजन, पलंग, आलमारी, बरतन, जेवर, कपड़े (लड़के के लिए दो सेट शर्ट–पेंट एवं लड़की को पंद्रह सेट पंजाबी ड्रेस अनिवार्य रूप से) आदि देते हैं।

उपाध्याय एवं पंचोली (2010) ने पाया कि सिद्दी समाज में मंगनी हेाने के पश्चात् मुस्लिम माह व तारीख के अनुसार निकाह की तारीख तय कर लड़के के परिवार वाले या संबंधी लड़की के घर जाते हैं। निकाह में लड़के वाले 1.5 किलो शक्कर, 5 नारियल एवं एक किलो फल या मिठाई लेकर लड़की वाले के घर जाते हैं। आने वाले व्यक्तियों की संख्या लड़की वाले को पहले से बता दी जाती है। हल्दी लगाने की परंपरा विवाह से 8 दिन पहले प्रारंभ हो जाती है। पहले से पांडाल लग जाता है, ताकि बारात उसमें आकर ठहरे। 40–50 व्यक्ति समान्यतः बारात में आते हैं, जिसमें लड़के के दोस्त, रिश्तेदार, आदि सभी

होते हैं। काजी निकाह के समय कुरान की आयतें पढ़ते हैं। दोनों ओर से गवाह के समक्ष निकाह होता हैं। वर एवं वधू से तीन–तीन बार निकाह कबूलने की स्वीकृति के उपरांत ही निकाह संपन्न होता है। दोनों के हस्ताक्षर सहित यह दस्तावेज जमात में जमा हो जाता है। मुहर्रम माह छोड़कर कभी भी निकाह हो सकता है। जमात के माध्यम से निकाह से संबंधित विवादित विषय एवं अन्य किसी भी प्रकार के विवादास्पद विषय का समाधान किया जाता है। जमात में मौलाना, सभी घरों के मुखिया, आदि इसके सदस्य होते हैं। समान अटक, गोत्र में निकाह नहीं होते हैं।

सिद्दी चार पत्नी एक साथ रख सकते हैं। अधिक पत्नियां रखना अधिक हैसियत का परिचायक होता है। लेकिन, अधिकांशतः सिद्दी एक निकाह करते हैं, कुछ सिद्दी ही बहुपत्नी रखते हैं। तलाक का प्रचलन कम है। तलाक के समय दोनों परिवारों के अभिभावक, सगे–संबंधी, पड़ोसी, आदि सब मिलाकर 10–20 लोग उपस्थित रहते हैं। इसके उपरांत उस पति से सदा के लिए तलाक के माध्यम से रिश्ता तोड़ दिया जाता है। तलाक होने के बाद लड़की अपने माता–पिता के घर रहती है। फिर इनके घरवाले दूसरा लड़का खोजकर उनकी दुबारा निकाह कर देते हैं। किसी महिला द्वारा पति की मृत्योपरांत पुनर्विवाह का प्रचलन है।

सिद्दी समाज में धार्मिक कार्यक्रम

प्रतिदिन (जुम्मा छोड़कर) 6 बजे सुवह, 1.15 बजे दिन, 5.30 बजे शाम, 7.00 बजे रात्रि एवं 8.30 बजे रात्रि में नमाज होती है। पांचों प्रहर की नमाज में जांबुर एवं सोसायटी से 25–30 सिद्दी व अन्य मुस्लिम आते हैं। इस गांव में सिद्दी एवं अन्य मुस्लिम समुदाय के लोग (जैसे कि–संधि, बिलोच, मेमन, मीर, शेख, फकीर, पठान व मकरानी मुस्लिम) आते हैं। कुछ पड़ोस के गांवों के लोग भी यहां आते हैं। प्रत्येक जुमे (शुक्रवार) को लगभग तीन सौ सिद्दी एवं अन्य मुस्लिम नमाज में आते हैं। ये सब नमाज पढ़ने के बाद पीर के दर्शन करते हैं। जुमा, मुस्लिम पर्व–त्योहार, उत्सव, उपदेश, आदि में यहां भीड़ रहती है। सिद्दी घर की किसी महिला के मासिक धर्म समस्या होने पर घर में धार्मिक कार्य नहीं करते। अशुद्धि होने (जैसे–जन्म, मृत्यु, आदि होने पर) पर मस्जिद में जाने की मनाही है। इबादत के लिए इच्छुक महिलाएं मस्जिद के पास मौलवी के आवास व मदरसे पर निर्देशों के अनुसार इबादत करती हैं। यह कार्यक्रम प्रत्येक शुक्रवार को 1.15 बजे दिन में प्रारंभ हो जाता है जिसमें लगभग 30 महिलाएं शामिल होती हैं। सिद्दी जनजाति की मुख्य धार्मिक रीतियां एवं गतिविधियां इस प्रकार हैं–

रोजा–सिद्दी रमजान माह में एक माह तक रोजा करते हैं। जिसमें ये शाम (पांच बजे से) से अगले दिन चार–पांच बजे सुवह तक (रात्रि सहित) खा सकते हैं। इसके बाद भर दिन भूखे रहते हैं एवं पानी नहीं पीते हैं। रोजे के दिनों में एक समय नमाज पढ़ना जरूरी है। इस अवधि में किसी को गाली–गलौज व मार–पीट नहीं कर सकते।

बड़ी ईद–बड़ी ईद को बारहवीं शरीफ भी कहा जाता है। इस दिन शाम को नमाज पढ़ी जाती है। शाम छः बजे के पहले छोटे बच्चों का फातिया करते हैं, जिसमें खीर–पूरी, सेवई, जर्दा (मीठी चावल), आदि खाते व खिलाते हैं व नमकीन बांटते हैं। इस दिन मांसाहारी खाना खा सकते हैं। अगले दिन आलू वाली खिचड़ी बनती है।

ईद–रमजान माह के एक माह बाद अंत में ईद होती है। इस दिन सभी एक दूसरे के गले मिलते हैं एवं खाना खाते हैं। दिन में नमाज पढ़ते हैं। इस दिन नया कपड़ा पहनते हैं। सुबह खीर, पूरी एवं दोपहर व रात्रि में मांसाहारी खाना, बिरयानी, आदि खाते हैं। ईद पर सभी सिद्दी एक–दूसरे से मिलते हैं एवं आशीर्वाद लेते हैं। इसके माध्यम से पुराने झगड़े खत्म हो जाते हैं।

बकरीद–रमजान के दो माह बाद बकरीद आती है। यह पर्व एक दिन का होता हैं। सिद्दी पुरूष

मस्जिद में एवं सिद्दी महिलाएं मदरसों में नमाज पढ़ते हैं। इस दिन नए कपड़े पहनते हैं। इस दिन बकरों या भैंसों की कुर्बानी दी जाती है एवं इसे खाया जाता है। अपने समाज वाले, सगे–संबंधियों एवं दोस्तों के यहां एक–दूसरे के घर जाते हैं एवं सब एक–दूसरे के यहां खाते हैं।

ताजिए / मोहर्रम–मुस्लिम समाज की तरह सिद्दी जनजाति में ताजिये भी निकाले जाते है। मोहर्रम माह में नवीं व दसवीं तारीख को कागज का ताजिया बनाते हैं। नवीं को ताजिए को पूरा घूमा कर पुनः वापस रख देते हैं। दसवीं को उसे पूरा घूमा कर नदी में ताजिए डाल देते हैं। इस दिन से ये दुःख मनाते हैं। दुःखी होने से इस दिन मांसााहारी खाना नहीं खाते हैं। इस माह में निकाह व अन्य कोई खुशी का कार्यक्रम नहीं ह्येता है। इस दिन नया कपड़ा या अच्छा खाना खाने की मनाही है। मोहर्रम में दस दिन तक कुछ लोग भर दिन भूखे रहते हैं। शाम सात बजे से अगली सुवह चार बजे तक इसमें 10 दिन तक सामान्य खान–पान हेाता है। ताजिये मौलवी के घर के सामने बनाते हैं। मौलवी के आवास से लेकर मस्जिद तक सभी सिद्दी एवं गैर–सिद्दी इस्लाम अनुयायी अपने कलेजे पीटते हैं एवं अपने शरीर पर कोड़ा मारते हैं। इस कार्यक्रम में ढ़ोल भी बजते हैं। यह कार्यक्रम रात्रि आठ बजे तक चलता है।

उर्स–रज्जव माह के 15वें, 16वें एवं 17वें दिन सिद्दी विशेष रूप से मांसाहारी खाना बनाते हैं। सभी गांव वाले सिद्दी व अन्य मुस्लिम एक साथ खाते हैं। इबादत व सलामी प्रतिदिन तीन दिन, चार समय होते हैं। इस अवसर पर तीन दिन का मेला होता है। इसमें सभी लोग सलामी एवं इबादत करते हैं। उर्स में धमाल नृत्य अवश्य होता है।

छोटी उर्स–छोटी उर्स को पीर के रिश्तेदार के नाम पर मनाई जाती है। यह पर्व उर्स से छोटा होता है। इसमें घर की सफाई की जाती है।

रमजान, बकरीद, मोहर्रम, उर्स, शबेबरात, आदि में मौलवी भाग लेते हैं। मौलवी को इसके लिए 50–100 रू. दिए जाते हैं। इबादत करने में 30 से 45 मिनट का समय लगता है मौलवी जांबुर गांव के सिद्दी लोगों सहित अन्य सारे इस्लाम धर्म को मानने वालों को धार्मिक कार्यक्रम एवं इबादत संपन्न कराते हैं।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि सिद्दीयों का धमाल नृत्य और सिद्दी महिलाओं द्वारा एक दांत को पीला रखना अफ्रीकन संस्कृति को दर्शाता है। सिद्दी इस्लाम (सुन्नी) को मानते हैं। इनका नागारची एवं रतनपुर पीर दरगाह में आस्था है। सिद्दीयों की मान्यता है कि इबादत, खाख, तेल की मालिश, नारियल की कुर्बानी, जादुई उपचार (तंत्र–मंत्र सहित), हरे व काले रंग के कपड़े व धागों के टुकड़े, इत्र, पीर स्थित जल का छिड़काव करने व पीने, सलामी व नियमित दर्शन से बीमारी दूर होती है एवं इससे शांति मिलती है। इनके सामाजिक कार्यक्रम में गर्भावस्था से लेकर पांच वर्ष तक के कार्यक्रम, निकाह, मृत्यु, आदि सम्मिलित हैं। इसी प्रकार, उर्स, छोटी उर्स, रमजान, बकरीद, मोहर्रम, शबेबरात, रोजा, बड़ी ईद, ईद, बकरीद, ताजिए, मोहर्रम,रमजान, आदि इनके धार्मिक व सामाजिक लोक–रीति, त्योहार एवं उत्सव के भाग हैं, जिसमें जनजातीय संस्कृति, दक्षिणी अफ्रीकन संस्कृति, इस्लामिक धर्म का सर्वांगीण प्रभाव देखने को मिलता है।

References

Basu, H. (Undated). *Going for Visits with a Woman Fakir: The African Diaspora in Gujarat,* ISIM Newsletter, Vol-3, No-99, 39.

Census of India. 2001. *District Census Handbook: Junagadh District* (Series: 25-Gujarat).

Chakrabarty, J. 2003. Siddi. In Singh, K. S. (Eds). *People of India: Gujarat.* Part-1 & 3, Vol.-XVII. Mumbai: Popular Pubs.

Kailash. 1991. Siddis: *The Migrants from Africa.* Vanyajati, *39 (3)*, 5-7.

Mehta, P.C. 1993. *Bharat Ke Adivasi* (In Hindi).Udaipur: Shiva Publishers Distributors.

Naswa, S. 2001. *Primitive Tribal Groups of Gujarat.* Vanyajati, *49 (4),* 3-8.

Nayak, T.B. and Pandya, G.P. 1981. *The Sidis of Gujarat: A Socio-Ecconomic Study and Development Plan.* Ahmedabad: TRI.

Report of Animal Husbandry. 2000. Ahmedabad: Ministry of Environment and Forest, Govt.of Gujarat.

Shah, V. 1998. *Gujarat Ke Adivasi.* (In Hindi). Ahmedabad: T.R.T.I., Gujarat Vidyapeeth.

Trivedi, R.K. 1967. *Village Survey Monograph: Jambur (Census of India: 1961, Vol-5, Part-VI, 10) Delhi: Census Operation.*

Upadhyay, Chandrakant and Ravindra Pancholi. 2010. *Primitive Tribal Groups of Gujrat.* Ahmedabad: T.R.T.I., Gujarat Vidyapeeth.

राजस्थान पत्रिका, 2014. *हमारी संस्कृति के द्योतक है मेला,* राजस्थान पत्रिका उदयपुर. 16 अक्टू. 2014.

तिवारी, एस. के. 2005. *मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति,* भोपालः मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

पाण्डे. जी. 2007. *भारतीय जनजातीय संस्कृति,* नई दिल्लीः कॉन्सप्ट पब्लिशर्स

नायडू, पी. आर. 2002. *भारत के आदिवासी की समस्याएं* नई दिल्ली : राधा

आरसी प्रसाद झा, अनुसंधान सहयोगी, भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण, प्रताप नगर, उदयपुर–313001 (राज.)

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

महिला प्रस्थिति एवं स्तरीकरणः समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

महेश नावरिया

सारः जाति संरचना लाक्षणिक रुप से क्षैतिज वर्गों अथवा जाति–स्तरों से बनती है जिसके समाज में अपने ही प्रकार्य हैं। इनकी श्रेणीबद्धता का मूल आधार समाज की आवश्यकताओं के अनुसार निर्मित होता है। पारम्परिक रूप में भारतीय जाति व्यवस्था एक कठोर संस्तरणीय व्यवस्था रही है। जातियों की असमानताओं की इस संरचना में महिलाओं का क्या स्थान है? इसका अध्ययन आवश्यक है। जिस प्रकार ऊंची और नीची जातियों के संदर्भ सारी संरचनाओं से उभर जाते हैं और जिस प्रकार से आर्थिक संरचनाओं के आधार पर जातियों और वर्गों के बीच बहुत अधिक असमानता दिखाई नहीं देती, महिलाओं की प्रस्थितियां जाति आधारों पर असमानता की संरचना में कैसे देखी जा सकती है? यह विचार इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि निम्न जातियों के साथ महिलाओं को भी समाज में कमज़ोर वर्ग की तरह स्वीकारा जाता है। क्या जाति संरचना महिलाओं की प्रस्थिति के संदर्भ में, महिलाओं के लिए किसी विशिष्टता का निर्माण करती है? प्रस्तुत लेख इसी संदर्भ से जुड़ा है।

संकेत शब्दः जाति संरचना, लैगिंक असमानता, सशक्तीकरण, नारीवाद

समाजशास्त्र के इतिहास में बहुत समय तक स्तरीकरण के संदर्भों में महिला के संदर्भों को स्वीकार नहीं किया गया था। ओकले (1974:68) ने जेन्डर को स्त्रीत्व तथा पुरूषत्व का समानान्तर तथा सामाजिक असमानता का विभाजन माना था। ओकले का विचार था कि यौन का अभिप्राय जैविकीय लिंग के आधार पर स्त्री और पुरुषों का विभाजन है। जेन्डर समाज द्वारा संरचित स्त्री और पुरुषों के भेदभाव से संबंधित है। प्रारंभ में इस शब्द का प्रयोग व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तित्व को दर्शाने के लिए किया गया था और बाद में इस शब्द का संबंध उन सांस्कृतिक संदर्भों के साथ जुड़ा जिसका संबंध स्त्रीत्व और पुरुषत्व की पारम्परिक चर्चा के स्थान पर श्रम विभाजन, संस्थाओं तथा संगठनों में संरचनात्मक स्तर को जानना था। सत्तर के दशक में समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों का ध्यान पुरुषों और महिलाओं के बीच भेद तथा अन्तरों की ओर गया। यह कहा गया है कि पुरुषों और महिलाओं के बीच अलग–अलग संस्कृतियों और समाजों में अलग–अलग व्यवस्थाएं हैं। प्रारंभ से ही महिलाओं और पुरुषों के बीच अन्तरों पर बहस भी हुई है। इस शब्द की उत्पत्ति से पहले सामान्यतः समाजशास्त्री पुरुष और महिला के बीच शारीरिक भिन्नताओं की बात करते थे। लेकिन इसके विपरीत जेन्डर शब्द मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अन्तरों का प्रतीक है। इसका संबंध समाज द्वारा रचित स्त्रीत्व तथा पुरुषत्व की रचना से है और साथ ही इसका संबंध प्रत्यक्ष ही व्यक्तिगत जैवकीय आधारों के साथ जुड़ा हुआ है। 'जेन्डर' शब्द का मूल अन्तर उसकी यौनिक व्याख्या से है जिसका अभिप्राय यह है कि समाज में महिलाओं और पुरुषों की दो प्रकार की व्याख्याएं हैं – पहली व्याख्या का संबंध जीवशास्त्रीय अन्तरों से और दूसरी व्याख्या का संबंध उन मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक संरचनाओं से है जो किन्हीं अर्थों में दोनों की अलग–अलग प्रस्थिति का परिचायक है।

कतिपय गतिविधियां तथा महिला–पुरुषों के कार्य ऐसे होते हैं जो यौन भिन्नता के कारण उत्पन्न होते हैं और ऐसे अन्तर प्रायः सभी समाजों और संस्कृतियों में देखे जा सकते हैं। जैसे, जनजाति समाजों में महिलाओं की अपेक्षा पुरुष अधिक शिकार करते हैं। ठीक उसी प्रकार से, पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को घरेलू कार्य अधिक करना पड़ता है। स्वाभाविक अन्तरों के सिद्धान्त इसी प्रकार की आवश्यकताओं तथा इससे उत्पन्न होने वाले व्यवहारों के साथ जुड़े हुए हैं। अधिकांश सांस्कृतिक समाजों में महिलाएं अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा बच्चों के लालन–पालन में लगाती हैं। यौन तथा जेन्डर के बीच अन्तर समझने के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया को समझना भी जरूरी है। जैसे परिवारों में महिलाओं

तथा पुरुषों का समाजीकरण कैसे होता है ? और जनसंचार के साधन इस समाजीकरण की प्रक्रिया में किस प्रकार सहायता करते हैं? महिलाओं के समाजीकरण के सिद्धान्तों में स्त्रीत्व तथा पुरूषत्व की भूमिकाओं तथा उनके प्रकार्यों पर समाजीकरण का विशेष ध्यान रहता है। लेकिन स्त्रीत्व तथा पुरुषत्व के निर्माण में केवल परिवार तथा जनसंचार के साधनों का ही योगदान नहीं है, अन्य एजेंसियां भी हैं जो इस प्रकार के समाजीकरण का कार्य करती हैं। अपर्याप्त समाजीकरण बहुत सी समस्याएं पैदा कर सकता है।

कुछ समय से ऐसे सिद्धान्त आए हैं जो सांस्कृतिक संबंधों के आधार पर तथा महिला को सामाजिक संरचना से निर्मित आधार के रूप में देखते हैं। औद्योगिक समाज में तथा पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्रीत्व तथा पुरुषत्व के संबंधों में संशोधन किए गए हैं। यद्यपि महिलाओं के संबंध अभी भी गृह कार्यों के ऊपर आधारित हैं, लेकिन धीरे–धीरे उनमें परिवर्तन आया है। स्त्रीत्व तथा पुरुषत्व की पुरानी परिभाषाओं के अनुसार पुरुष घर की प्राथमिक आय का अर्जक था तथा महिला की जिम्मेदारी घरेलू उत्तरदायित्वों की थी। आधुनिकीकरण के साथ महिला और पुरुषों के ये संबंध दूसरे रूप में विकसित हुए। महिलाओं ने भी उन कार्यों को करना शुरू किया जो अब तक पुरुष के साथ जोड़े जाते थे। आधुनिक पूंजीवाद ने महिलाओं के लिए नए अन्तरों की स्थापना करना प्रारम्भ किया। उत्तरआधुनिकता ने सार्वजनिक क्षेत्रों और घर के कार्यों के बीच अन्तर स्थापित करने प्रारंभ किए और दोनों की अलग–अलग परिधियां स्थापित हुईं। समाज रचित महिलाओं और पुरुषों के संबंधों के संदर्भ में कई परिप्रेक्ष्य समाजशास्त्रियों ने रखें हैं जिनकी व्याख्या निम्न आधारों पर देखी जा सकती है –

मानवशास्त्री मरडॉक (1949:122) ने जैविक तत्त्व और व्यावहारिकता को एक साथ जोड़ा है। उनके अनुसार महिला या पुरुष को जन्म के पूर्व से निर्धारित तत्त्वों के अनुसार अपनी भूमिका निभाने की बजाय जैविक भिन्नता जैसे पुरुष में ज्यादा शारीरिक ताकत होती है और महिलाएं बच्चे पैदा करती हैं–की वजह से व्यावहारिकता के लिए लिंगगत भूमिकाएं निभानी हैं अर्थात् ज्यादा दक्षता के लिए लैंगिक श्रम विभाजन आवश्यक है। इस विचार से मिलता–जुलता विचार समाजशास्त्री टालकट पारसन्स (1957:148) का है जिनके अनुसार अमेरीकी परिवार की दो मुख्य विशेषताएं सभी समाजों में पाई जाती हैं। पहली, बच्चों का प्राथमिक समाजीकरण, दूसरी, समाज के प्रौढ़ व्यक्तियों का स्थायीकरण। समाजीकरण को प्रभावी बनाने के लिए घनिष्ठ, गर्मजोशी एवं सहारा देने वाले समूह की जरूरत होती है। मरडाक और पारसन्स दोनों ने परिवार को आदर्शीकृत किया है, जहां बच्चे अच्छी तरह समायोजित होते हैं और पति–पत्नी एक–दूसरे की जरूरतों का पूरा ख्याल रखते हैं, किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता।

सांस्कृतिक श्रम–विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार ओकले यह मानती हैं कि लिंगपरक भूमिकाएं संस्कृति द्वारा निर्धारित होती हैं, वे पाश्चात्य महिला मुक्ति आन्दोलन का समर्थन करती हैं। उनके अनुसार लिंगपरक श्रम–विभाजन न तो अतीत में सर्वव्यापी रहा है और न भविष्य में सर्वव्यापी होगा। जैविक शक्तियों के बजाय मानव की खोज करने की शक्ति की वजह से सांस्कृतिक विविधता पुष्पित एवं पल्लवित होती हैं। इसके अलावा पारसन्स की थोथी दलीलों को काटते हुए ओकले कहती हैं कि इजराइल की किब्बुत्ज (Kibbutz) व्यवस्था महिलाओं की मातृ भूमिका का विकल्प है। उल्लेखनीय है कि इजराइल की करीब 4 प्रतिशत जनसंख्या 240 किब्बुत्ज बस्तियों में रहती है, जहां सारी सम्पत्ति का सामूहिक स्वामित्व सभी सदस्यों के हाथ में होता है। वहां की मुख्य अर्थव्यवस्था कृषि है। इस व्यवस्था में लैंगिक समानता की विचारधारा लागू है और माता–पिता की भूमिका संबंधी पाश्चात्य अवधारणा खारिज कर दी गई है। यहूदी मां की भूमिका परम्परागत ढंग से अत्यन्त बचाव करने वाली थी जिसका वर्णन लोकगीतों आदि में अभी भी मिलता है। किब्बुत्ज व्यवस्था ने मां की इस पारम्परिक भूमिका को नकार

दिया और सामूहिक रूप से सभी नवजात शिशुओं के लालन–पालन करने की व्यवस्था की गई।

पारसन्स (1951) के विचारों को काटती हुई ओकले कहती हैं कि उनके विचार पश्चिमी सभ्यता के मूल्यों, पुरुष उच्चता के मिथक और परिवार व विवाह की पवित्रता पर आधारित है। वे मानती हैं कि वास्तव में गृहिणी–मां की भूमिका परिवार नामक इकाई के लिए जरूरी नहीं है, बल्कि पारसन्स की लिंगपरक भूमिका की व्याख्या 'महिलाओं के घरेलू अत्याचार' को वैधानिक करार करने वाला मिथक मात्र है। इस प्रकार उनके अनुसार मात्र प्रजनन के अलावा ऐसा कोई काम नहीं है जो सिर्फ महिलाएं कर सकती हैं या जो महिलाएं नहीं कर सकती हैं। मातृभूमिका सिर्फ सांस्कृतिक रचना है, जैविक नहीं।

फ्रेडरिक एंजेल्स (1804) ने इस संबंध में एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी– द ऑरिजन ऑफ फेमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एण्ड द स्टेट। एंजेल्स ने परिवार के बारे में विकासवादी दृष्टिकोण अपनाया और कहा कि जिस प्रकार उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होता रहा है, ठीक वैसे ही परिवार में भी परिवर्तन होता रहा है। चूंकि शुरू–शुरू में उत्पादन के साधन समुदाय के स्वामित्व में थे इसलिए परिवार नामक संस्था का अस्तित्व हीं नहीं था अर्थात् प्रारंभिक साम्यवाद के युग में बन्धनमुक्त स्वच्छन्द यौन संबंध हुआ करते थे। धीरे–धीरे जैसे–जैसे समाज विकसित होता गया, यौन संबंधों पर प्रतिबंध बढ़ते गए। अन्तः विवाह और परिवार नामक संस्थाओं का उद्‌भव हुआ। विवाह और परिवार ने निजी सम्पत्ति के उत्तराधिकार की समस्या का समाधान ढूंढ़ा। चूंकि शुरू से पुरुष ही सम्पत्ति के स्वामी होते थे, अतः यह सवाल उठना स्वाभाविक था कि उसका उत्तराधिकार किसी वैध उत्तराधिकारी को मिले। ऐसी स्थिति में एक पत्नी–एक पति विवाह इस समस्या को सुलझाने का सबसे कारगर उपाय था।

महिला असमानता के संदर्भ में समाजशास्त्रियों ने कई प्रकार की परिस्थितियों का उल्लेख किया है। यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि स्वयं यौन विभाजन कई प्रकार की कार्य प्रणालियों तथा पहचान के आधार प्रस्तुत करता है। यह मिथक प्रायः सभी समाजों में प्रचलित है कि शारीरिक तथा शक्ति की दृष्टि से महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा कमज़ोर हैं और वे किसी शारीरिक दृष्टि से भारी–भरकम काम को करने में असमर्थ है। यह भी भ्रम है कि महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा कम बुद्धि होती है। कार्यों को कर सकने की क्षमता का यह विभाजन उनकी अपनी शारीरिक बनावटों के आधार पर ही मिथक के रूप में हमारे सामने आया है। ठीक उसी प्रकार से कार्यों के विभाजन की दृष्टि से यह माना जाता है कि महिला का काम घरेलू सेवाओं और पुरुष का काम परिवार तथा परिवार के सदस्यों के लिए भरण–पोषण का प्रबन्ध करना है। यह बंटवारा भी महिला और पुरुष की शारीरिक बनावटों पर आधारित है।

समाजशास्त्रियों ने महिलाओं और पुरुषों के बीच की असमानता को प्रस्थिति, शक्ति तथा प्रतिष्ठा के आधार पर निर्धारित करने की चेष्टा की है। समूहों, समाजों, और अन्य सामूहिकताओं में महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानता के कई आधार ढूंढ़े जा सकते हैं, जैसेः–

1. क्या मूल्यवान सामाजिक स्रोतों–उदाहरण के लिए खाद्य, धन, शक्ति और समय में दोनों की समान पहुंच है?
2. महिलाओं और पुरुषों के लिए समान जीवन, सामाजिक समानता का विकल्प है?
3. महिलाओं और पुरुषों की भूमिकाओं और गतिविधियों का समान मूल्य है?

इन प्रश्नों से मिलने वाले उत्तरों के स्वरूप अलग–अलग समाजों में अलग–अलग संस्कृतियों और महिलाओं तथा पुरुषों की समाज संरचना में अलग–अलग हो सकते हैं। मानवशास्त्रियों ने इस दृष्टि से जनजाति समाजों की दो प्रकार की संरचना निर्माण का उल्लेख किया है – 1. मातृसत्तात्मक, मातृस्थानीय, मातृवंशीय आधार पर संरचित होने वाला समाज और 2. पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय तथा पितृवंशीय संरचित समाज। दोनों प्रकार के समाजों में एक तरफ महिलाओं का अधिकार है और दूसरी

संरचना में पुरुषों का। एक समाज में महिला मूल्यों को प्रधानता दी जाती है तो दूसरी संरचना में पुरुषों को, लेकिन आधुनिक युग में यह माना जाता है कि अधिकांश समाज पुरुष सत्ता प्रधान समाज हैं और असमानता के बहुत से परिणाम इसी कारण उभरकर सामने आते हैं। जनजाति समाजों में इस संरचना द्वारा निर्मित असमानता के रूप आधुनिक समाज में निर्मित होने वाले असमानता के रूपों से भिन्न हैं। इस असमानता के सारे दृष्टिकोणों को कई रूपों में देखा जा सकता है, जैसे प्रतिदिन के जीवन में महिलाओं और पुरुषों के बीच अन्तर से उठने वाले प्रश्न, स्वास्थ्य की अवस्थाओं तथा वृद्धावस्था में उत्पन्न होने वाला व्यवहार, स्त्रियों के प्रति होने वाले अपराध और उससे उत्पन्न होने वाली हीन भावना, वर्ग संरचना में महिलाओं के उभरते तथा कार्यशील महिलाओं की परिस्थितियां, महिला शिक्षा से उभरने वाले परिणाम और धर्म के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की प्रस्थितियां, ये सभी प्रश्न महिलाओं और उनके बीच के प्रश्न हैं तथा पितृसत्तात्मक समाज की संरचना में महिलाओं की प्रस्थिति के साथ जुड़े हुए हैं। कहना होगा कि महिलाओं संबंधी ये सभी प्रश्न बहुत समय पहले उठे हुए प्रश्न नहीं हैं। आधुनिक समाज में महिलाओं से संबंधित ये प्रश्न बिना विवाह के परिवार, वेश्यावृत्ति, समलैंगिक यौन व्यवहार इत्यादि इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों के साथ भी जुड़े हुए हैं। धीरे–धीरे पुरूषत्व में भी परिवर्तन आ रहा है और इसी कारण महिलाओं से संबंधित धारणाओं और दृष्टिकोणों में भी परिवर्तित हो रहें हैं।

पुरुष और महिलाओं के बीच असमानता तथा उससे उत्पन्न होने वाली शोषणीय व्यवस्था विश्व की चिन्ता का विषय रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे विश्वव्यापी समस्या के रूप में स्वीकार कर महिलाओं की स्थिति में सुधार करने के लिए प्रयत्न किए हैं। इन सुधार कार्यों में एक नया शब्द जो उभरा है वह है 'सशक्तीकरण' जिसका अर्थ है कि महिलाओं को वह शक्ति प्रदान की जाए, जिससे वे अपनी असमानता के विरूद्ध आवाज उठाने की शक्ति प्राप्त कर सके और इस असमानता के विरूद्ध संघर्ष कर सकें। सशक्तीकरण एक साधन भी है और एक आन्दोलन भी। सशक्तीकरण का संबंध उस इच्छा से है जिससे शक्तिहीन महिलाओं में जागृति आए और उसके आधार पर महिलाओं एवं पुरुषों के बीच समान अवसरों की स्थापना हो। आगे चलकर यह लेख इन असमानताओं के कुछ पक्षों को छूने का प्रयास करेगा।

जाति और महिलाएं

यह कहा जा सकता है कि अब तक के संस्तरणों की व्याख्या महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानता के प्रति लगभग दृष्टिहीन सी रही है। जो कुछ भी संस्तरणों के लिए लिखा गया उसमें महिलाओं के संबंध में कोई विचार नहीं दिए गए हैं। शक्ति, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा के आधार पर संस्तरण को समझाने वालों ने इस प्रकार से रचनाएं लिखीं जैसे महिलाओं का कोई अस्तित्व ही नहीं है। इन रचनाओं में पुरुष इन संस्तरणों की व्याख्या में सर्वाधिक हिस्सेदार हैं। शक्ति, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा में पुरुष के पास ही सबसे अधिक सत्ता व सम्पत्ति और प्रतिष्ठा है। यद्यपि आधुनिक समाजों में संस्तरणों तथा उससे संबंधित महिलाओं और पुरुषों के संबंध में प्रश्न बड़े सीधे हैं पर उनके अध्ययन की दृष्टियां बहुत कठिन हैं। समस्या सबसे बड़ी यह भी है कि धन, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा के आधार पर बनने वाले असमानता के संस्तरण महिलाओं और पुरुषों की असमानता के संदर्भों से नए हैं। यह अन्तर तब भी मौजूद था जबकि लोग जंगल में फल एकत्र करते थे और शिकार करते थे।

वर्ग संरचनाओं में यदि महिला और पुरुष के संदर्भों के आधारों का उल्लेख करें तो पुरुष की कमाई के आगे महिला की कमाई गौण है। महिला द्वारा उच्च पदों पर कार्य करना पुरुष के लिए असहनीय है। यह माना जाता है कि महिलाओं की भारी–भरकम आय होने के बावजूद भी वर्ग संरचना में वह पुरुष से नीचे ही रहेगी। अध्ययनों में यह भी बताया गया है कि जिन महिलाओं की आय उच्च है वे अपना विवाह उन्हीं पुरुषों से करेंगी जिनकी आय उच्च है। ऐसे ही महिलाओं का प्रभाव सारी वर्ग संरचना में निम्न–श्रेणी के रूप में देखा जा सकता है। डेबल फिट्ज्गैरल्ड ने सभी संस्तरणों में महिलाओं के संदर्भ में

अन्तरों की चर्चा की है, इन आधारों के अनुसार इनमें से कुछ प्रमुख अन्तर निम्न हैं (ट्यूमिन 1969:78) –

1. निम्न वर्ग की महिलाओं की कल्पनाएं ज्यादा मुखर नहीं होतीं और उन्हें ईश्वर का भय अधिक लगता है।
2. निम्न वर्ग की महिलाएं घर गृहस्थी के मामलों में अधिक भागीदारी करती हैं।
3. उच्च वर्ग की अपेक्षा निम्न वर्ग के परिवारों में बच्चों तथा अभिभावकों के संबंध मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अधिक बन्द हुआ करते हैं।
4. निम्न वर्गों में अलगाव की भावना अधिक होती हैं। इसी प्रकार के आधार उच्च वर्ग तथा मध्यम वर्ग में भी देखे जा सकते हैं।

वर्ग की तरह जातियों में भी महिलाओं को चिन्हित करना महत्त्वपूर्ण है। जाति अपने–आप में असमानता का संगठन है, लेकिन इस जाति व्यवस्था में जो कुछ भी संरचना बनी है, उसमें जाति संरचना की श्रेष्ठता और निम्नता के आधार पर महिलाओं का स्थान भी सुनिश्चित हो गया है। इस सारे संदर्भों को दो रूपों में देखना पड़ेगा– पहला, जाति की असमानता और दूसरा, उसमें महिलाओं का स्थान। जातिगत असमानताओं की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। अब आवश्यक यह है कि महिलाओं की प्रस्थिति की चर्चा पहले की जाए और फिर इस प्रस्थिति को जातिगत संदर्भो में देखने का प्रयास किया जाए।

भारतीय समाज के इतिहास में सामाजिक–सांस्कृतिक विरोधाभासों और द्विअर्थीय व्यवस्थाओं का एक भाग महिलाओं पर भी स्थापित है। इसीलिए भारतीय महिलाओं के आचरण और उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक छवि भी बंटी हुई रही है। जो लोग महिलाओं के गुणों के समर्थक हैं, वे उन्हें विदूषी तथा पूजा योग्य मानते हैं, लेकिन जो लोग महिलाओं के आचरण संबंधी संदर्भों को निम्न स्थिति में देखते हैं, वे इन संबोधनों से अलग हैं। इस प्रकार महिलाओं की प्रस्थिति के संदर्भ में भारतीय समाज में दोहरे मूल्य हैं। महिलाओं के प्रति दोहरी छवि का होना अपने–आप में उनकी निम्न प्रस्थिति का परिचायक है। सामान्यतः किसी जाति पर विचार ना करें फिर भी सामाजिक तथा आर्थिक आधार पर महिलाओं को पराधीनता के रूप में स्वीकार किया जाता है। खासी जनजाति में यह कहावत है कि युद्ध और राजनीति पुरुषों के लिए है जबकि सम्पत्ति एवं बच्चे महिलाओं के लिए। ऐसा ही कुछ आधार केरल के नायरों में भी है, लेकिन जब हम जाति व्यवस्था के संदर्भों में बात करते हैं तो चित्र बदल जाता है। हिन्दू समाज की वैचारिकी में महिला का चरित्र सती जैसा होना चाहिए, वह पति परमेश्वर के अधीन है, उसे दूसरे पुरुषों की तरफ ध्यान ही नहीं देना चाहिए और यहां तक पति की मृत्यु के बाद सती हो जाना चाहिए।

इन सारे तथ्यों का संबंध उन भारतीय मूल्यों से भी है जो समाज में विद्यमान हैं। यह कहा जाता है कि भारतीय महिलाओं के लिए दुःख और आपदा में अन्तर करना कठिन है। धार्मिक आधार पर कर्म और फल की अवधारणा भी महिलाओं को एक विशिष्ट परिस्थिति में पहुंचा देती है। ऐसा भी कहा जाता है कि महिलाओं के ये संबंध संयुक्त परिवार, पितृसत्तात्मक परिवार, वैवाहिक संबंध और जातियों द्वारा स्थापित प्रतिबन्धों से बंधे हुए हैं। जाति की व्यवस्थाओं से हटकर महिला की पहचान अपने–आप में महत्वपूर्ण है, क्योंकि जातियों का संबंध, ड्यूमो (1966) के अनुसार धर्म की वैचारिकी के आधार के साथ भी जुड़ा हुआ है; पारम्परिक दृष्टि से महिलाओं की प्रस्थिति का संबंध जातिगत होते हुए भी कतिपय उन मान्यताओं के साथ जुड़ा हुआ है जो धार्मिक व्याख्याओं में देखी जा सकती हैं। यदि हिन्दू महिलाओं के आधारों की सम्पूर्ण व्याख्या की जाए तो हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में महिलाओं को पत्नी, माता, गृहिणी तथा आर्थिक एवं धार्मिक कार्यों की पूर्ति और परम्पराओं के पोषण के रूप में भी स्वीकारा गया है।

धार्मिक मूल्यों के इन संदर्भों में कई बातें जुड़ गईं है जो उनकी हीनता का परिचायक है। जैसे यह कहा गया है कि भारतीय समाज की संरचना में महिलाओं पर संवाद नियंत्रण तथा उनकी परिस्थितियों

पर चुप रहने की बाध्यता अधिक है। यह अपेक्षा की जाती है कि वे पुरुषों के विरूद्ध अपनी वाणी पर नियंत्रण रखेंगी और चुप रहने के लिए बाध्य होंगी।

ऐतिहासिक दृष्टि से महिलाओं की प्रस्थितियों में परिवर्तन होता रहा है। प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति से संबंधित दो विचारधाराएं हैं– पहली विचारधारा यह मानती है कि महिलाओं और पुरुषों के संबंध बराबरी पर केन्द्रित थे, लेकिन दूसरी विचारधारा यह मानती है कि महिलाओं का स्थान अपमानजनक था, इसलिए अपस्तम्भ तथा मनु के विचारों को परस्पर विरोधी माना जाता है। सम्पत्ति के उत्तराधिकार, विधवाओं की प्रस्थिति, धार्मिक अधिकार और सामाजिक जीवन में भागीदारी के संबंध में भी परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किए गए हैं। मध्यकालीन व्यवस्था में बाह्य आक्रमणों के कारण धार्मिक धारणाओं का विकास हुआ और बहुत से सुधारवादी संतों ने महिलाओं की प्रस्थिति को बदलने का प्रयास किया। ब्रिटिशकाल में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण को बदलने की कोशिश की गई लेकिन उन्होंने पारम्परिक महिला संबंधी मूल्यों और सामाजिक व्यवहार को बदलने का बड़ा प्रयास नहीं किया। आधुनिक समय, एक ऐसा समय था जब महिलाओं द्वारा किए गए आन्दोलनों ने कई नवीन आधारों को जन्म दिया था। मानवाधिकारों ने भी इसी आधार पर कुछ नई व्यवस्थाओं को जन्म दिया जो समाज में फलित दिखाई देती हैं।

महिलाओं के संबंध में अब नई व्याख्याएं हमारे सामने आई हैं। इन व्याख्याओं का संबंध कुछ ऐसे सूचकांकों से है, जो मानव विकास में महिलाओं के पिछड़े हुए स्थान को दर्शाते हैं। ये सूचकांक उन संदर्भों के भी प्रतीक हैं जो यद्यपि जातिगत व्यवस्थाओं से परे हैं, पर फिर भी जातियों में महिलाओं में हो रहे परिवर्तनों को नाप सकते हैं। जैसे– शिक्षा के संदर्भ में सम्पूर्ण भारत की जानकारी यह बताती है कि महिला शिक्षा का बहुत निम्न स्थान है। अभी हाल की मानव विकास रिपोर्ट में भारत में महिलाओं की प्रस्थिति के संबंध में ऐसी ही जानकारियां दी गई हैं। रिपोर्ट के अनुसार गर्भवती महिलाओं की मृत्युदर अधिक है, बहुत बड़ी समस्या महिलाओं के कुपोषण की है, साक्षरता दर बहुत नीची है और लड़कियों की भ्रूण हत्याएं अधिक हैं। भारत में प्रकाशित अपराध संबंधी आंकड़े यह बताते हैं कि महिला के विरूद्ध अपराधों में वृद्धि हो रही है तथा दहेज हत्याओं, बलात्कार तथा ऐसे ही अपराधों में वृद्धि हुई है। घरेलू हिंसा का सबसे बड़ा भार महिलाओं के ऊपर है। विधवाओं की स्थिति पर सामाजिक चिन्ता बढ़ी है। ये सभी तथ्य महिलाओं की वर्तमान प्रस्थिति के संदर्भों के परिचायक हैं। विभिन्न जाति समूहों में महिलाओं की मानसिकता के संदर्भ भी अलग–अलग हैं और इन मान्यताओं के आधार पर महिलाओं की प्रस्थितियों में भी व्यापक अन्तर आ जाता है।

उपर्युक्त व्याख्याओं से स्पष्ट है कि भारत में महिलाओं की प्रस्थिति पर एक साधारण कथन काफी नहीं। जाति संरचना के विविध सोपानों के अपने सामाजिक स्थान और महिलाओं के प्रति उनके अपने मूल्य तथा मानकों को परीक्षित करना भी आवश्यक है। जाति के सारे संदर्भ संभवतः हमें उन आधारों को प्रस्तुत करने में सहायता देंगे, जो महिलाओं की प्रस्थिति को जातिगत आधारों पर समझने के लिए सहायक हैं।

महिलाओं की प्रस्थिति से संबंधित साहित्य कई संदर्भों में बंटा हुआ है। अधिकांशतः पुस्तकें महिलावाद, महिलाओं की प्रस्थिति की ऐतिहासिक विवेचना और महिलाओं की प्रस्थिति को प्रभावित करने वाले कारकों के अध्ययन के संबंध में हैं। महिला प्रस्थिति और धर्म के संबंधों के भी अध्ययन प्रकाशित हुए हैं। महिलाओं के विरूद्ध अपराध और घरों में महिलाओं के प्रति हिंसा को भी बहुत से अध्ययनों में उभारा गया है। सैद्धान्तिक स्तर पर समाजशास्त्र के नवीन दृष्टिकोणों में महिलाओं की असमानता पर बहुत कुछ लिखा गया है। विदेशी पुस्तकों में महिलावादी अध्ययन के लिए एक विशेष विषय रहा है। विशेष रूप से उत्तर–आधुनिकता में महिलावाद के अनेक स्वरूप हो सकते हैं, उसका

समाजशास्त्र और साहित्य में विस्तृत वर्णन हुआ है। वैश्वीकरण के संदर्भ में महिलाओं की प्रस्थिति कैसे प्रभावित हुई है, इसकी चर्चा भी व्यापक रूप से की गई है। इसी साहित्य में स्वयं में उसकी क्या भूमिका है, यह प्रश्न महत्वपूर्ण है, कैसे वह जाति समूह के नियमों से बंधी हुई है और कैसे जाति महिला संबंधों में लोच पैदा करती है।

व्यवसाय, व्यवसाय की निरन्तरता, भोजन, कर्मकाण्डों की मान्यताएं तथा विवाह और यौन संबंधों के संदर्भ में किसी भी जाति में महिलाओं की विभिन्नता को देखा जा सकता है। यह प्रायः कहा जाता है कि जाति समूहों को संचालित करने में तथा उसकी कर्मकाण्डीय व्यवस्था को बनाये रखने में महिलाओं का अपना स्थान है। सम्पत्ति के उत्तराधिकार, विवाह की स्वतन्त्रता, विधवाओं की स्थिति, व्यवसाय की गतिशीलता, सभी कुछ जातिगत आधारों पर संभव है। जजमानी संबंधों में भी तथा राजस्थान के सामंती समाज को देखा जाए तो बेगार, खेतों का श्रम आदि जातिगत व्यवस्थाओं से जुड़ा हुआ है। जातिगत व्यवसायों से महिलाओं का जुड़ाव भी महिलाओं को जाति के साथ जोड़ने का काम करता है। बदले परिवेश में जातियों में महिलाओं की प्रस्थिति की पहचान एक महत्वपूर्ण आधार को खोजने के बराबर है।

जाति का प्रश्न अब सामाजिक न्याय का भी प्रश्न है और आरक्षण तथा अन्य संवैधानिक प्रावधानों ने सहसा नीची जातियों की महिलाओं को आगे लाने की चेष्टा की है। ग्रामीण क्षेत्रों और शिक्षण संस्थाओं में अनुसूचित जातियों की महिलाओं की उन्नति के संदर्भों ने जाति तनावों में नए संदर्भों की सृष्टि की है, लेकिन जाति तनावों के संदर्भ यहीं समाप्त नहीं होते। कई अध्ययनों में यह कहा गया है कि जब उच्च जाति की महिलाएं पानी भरती हैं तो नीची जाति की महिलाओं को इन्तजार करना पड़ता है। खेतों में अधिकांशतः नीची जाति की महिलाएं ही काम करती हैं। ऊंची जातियों के सामाजिक संबंधों में संयुक्त परिवार की अपनी ही भूमिका है और परिवार नियोजन का प्रचार अधिकांशतः ऊंची जातियों में है। महिलाओं में एक नए वर्ग के निर्माण का भी उल्लेख किया गया है। यह नया वर्ग उन शक्तिशाली महिलाओं का है जिन्हें इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया में लाभ मिला है और वे आम महिलाओं से अलग हैं। इसी प्रकार से वर्गों में महिलाओं की न केवल सामाजिक प्रस्थिति तथा सामाजिक व्यवहारों को वर्णित किया गया है, साथ ही उन विचारों के अन्तरों को भी स्पष्ट किया गया है जो इस प्रकार के वर्गों में मौजूद है। अध्ययन के ये पक्ष सैद्धान्तिक भी हैं और व्यावहारिक भी।

विभिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भूमिकाओं का भी उल्लेख हुआ है। विशेष रूप से पंचायतीराज में महिलाओं की भूमिकाओं का अध्ययन किया गया है। यह कहा गया है कि यद्यपि राजनीति में तथा राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं को भागीदारी मिली है लेकिन उससे सशक्तीकरण की प्रक्रिया को अधिक बल नहीं मिला है। जहां तक जाति संरचना में महिलाओं की प्रस्थिति को देखने का प्रश्न है, बहुत कम अध्ययन इस क्षेत्र में किए गए हैं। इस क्षेत्र में दो प्रकार के अध्ययन विशेष रूप से किए गए हैं – पहले प्रकार के अध्ययन वे हैं जिसका संबंध जाति व्यवस्था में सम्प्रभुता की दृष्टि से महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना है। लीला दुबे (1996) के अध्ययनों की कुछ रचनाएं जाति और महिलाओं की प्रस्थिति के संदर्भ में हैं। दुबे ने जाति संरचना में महिलाओं की प्रस्थिति के विभिन्न पक्षों को देखने का प्रयास किया है। इसी प्रकार के कुछ संदर्भ श्यामाचरण दुबे (1990), एम. एन. श्रीनिवास, आन्द्रे बेते और ड्यूमो की रचनाओं में भी देखने को मिलते है। लेकिन इन सारे अध्ययनों में निष्कर्ष बिखरे हुए हैं जिसके कारण एक क्रमबद्ध निष्कर्षों की भूमिका देना संभव नहीं है। इधर कुछ समय से दलित महिलाओं के संबंध में भी बहुत कुछ लिखा गया है। प्रस्तुत अध्ययन जातिगत आधारों में महिलाओं की प्रस्थिति के आंकने का अध्ययन है जिसका संदर्भ विशेष रूप से राजस्थान जैसे सामंतवादी समाज की पृष्ठभूमि के साथ जुड़ा हुआ है।

References

Dube, Leela. 1996. *"Caste and Women"* in Caste its Twentieth Century Avatar, (Ed.) Srinivas, M. N. New Delhi: Penguin Books India.

Dube, S.C. 1990. *Indian Society*, New Delhi: National Book Trust.

Murdock, J. P. 1949. *Social Structure*, New York : McMilan.

Parsons, T.1951. *The Social System*, New York: Free Press.

Dumon, L.1966. *Homo Heraricus: Cast System and its Implication.*

Angels, F. 1804. *The origion of Family, Private Property and the State*, Mascow: Progress Publishers.

Tumin M. 1969. *Social Stratification*, New Delhi: Prentice Hall.

Okley, N. 1974. *Housewife,* London: Alen Len.

डॉ महेश नावरिया, विभागाध्यक्ष एवं अस्टिेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, एस.एस.जी. पारीक पी.जी. गर्ल्स कॉलेज, बनीपार्क, जयपुर, Email :- m.nawria@gmail.com

Rajasthan Journal of Sociology
2018, Vol. 10

Social Research and Sociology for Rajasthan

Suresh C. Rajora

Lot of studies has been carried out by the scholars and lot of research has been conducted by the researchers of Rajasthan to examine and understand the social system in Rajasthan state from various perspectives and angles. Hitherto the scholars have studied a number of communities, organizations, institutions, processes and the social phenomena focussing the structural and functional aspects in Rajasthan. If we have a broader bird eye view than we can notice that still there are several gaps, rather lot of scope remains there to do research on Rajasthan. Some of the gaps may be pointed out to provide ample scope for the researcher mainly interested to learn about the communities, institutions and processes that are exclusive to Rajasthan state.

Before we discuss on the main issue related to the social research in Rajasthan and the research for Rajasthan it should be mandatory to classify some major issues and aspects related to Rajasthan state. At the same time it should also be made clear that we are confined to Rajasthan only, that means the social boundaries are more significant in context to the state which is confined to geographical and administrative territory being an integral part of Indian Union. Similarly the whole discussion shall revolve round the social phenomena exclusive to social system in context to Rajasthan state.

How can we locate the basic the neglected areas of research in Rajasthan which have not touched so far by the sociologists in general and the sociologists particularly in Rajasthan or from Rajasthan. For my convenience I would like to list a few basic areas on which special attention is needed with a fresh approach.

At the outset I would like to begin with a proposal that a data base need to be prepared as a ready reckoner regarding the social research and work done by sociologists exclusively in Rajasthan to understand and examine the social system of Rajasthan.

The data base of M.Phil. and Ph.D. thesis whether publishes or unpublished as well as the reports on research projects whether published or unpublished so far may be prepared, keeping in view the model of survey and research made by ICSSR, so that the work done on various issues on Rajasthan could be provided at a glance. This kind of data base will help in reviewing the work done by sociologists in Rajasthan and for Rajasthan to find out the research gaps in the social system of Rajasthan. A separate proposal need to be prepared and a project may be taken for this kind of work.

Full length studies related to six cultural zones of Rajasthan from sociological perspective may be carried out with fresh approach. Each cultural zone is to be studied separately right from its history, exclusive socio-cultural features, ethnic aspects, parochial phenomena in rural areas like; *chaupal,* common place to sit and gossip during leisure time, local clinical practices with the application of medicinal plants and local deities. How that particular zone was identified and continued with certain endogenous characteristics? In what way changes occurring due to technological factors and globalization. What is the contemporary state of that particular zone? Looking to the significance of each zone a scope of six separate research projects can be explored. Further a separate project can be taken to

conduct a comparative study of all the six zones at a time. The structural aspects of comparison may be the major social institutions, cultural traits, folk culture, fairs and festivals, local phrases and sayings, rituals, social practices and decadal changes.

Agrarian structure in Rajasthan had been a very significant aspect of rural social system in Rajasthan. The Historical facts and interpretations made by historical approach are needed to be re-interpreted from a fresh sociological approach. Intensive study on changes in agrarian relations and the recent trends also needed to be addressed.

In contemporary Rajasthan some studies are being conducted on MNAREGA in which merely a conventional and casual approach, focussing at socio-economic aspect along with the work done by the human resource, have been touched. The agrarian structure andfunction as influenced by MNAREGA have been neglected. How does traditional agrarian relations and structure have been changed and what is the contemporary state of that in Rajasthan is a burning issue.It provide sample scope for social researchers.

In Rajasthan too there are several NGOs and a few voluntary organisations working in different areas with plenty of aims and objectives. In what way some of the NGOs and voluntary organisations have been focussing exclusively to the issues of Rajasthan? Say for instance; the issues related to conservation of water, community health services, women empowerment activities, social forestry and the issues related to the tribes of south Rajasthan,weekly hats in tribal area, the activities of Christian missionaries on one hand and the involvement of Vanvasi Kalyan Parihsadon the other. The role of Islamic organisations in Muslim dominated areas of Rajasthan is also a notable issue to be studied from Sociological perspective. Similarly the structure and function of Rashtriya Swayam Sevak Sangh in Rajasthan need to be studied by the scholars of sociology. A review as well as full length study based on different social issues may be conducted from structural, functional and phenomenal perspectives on such NGOs and voluntary organisations working for social system in Rajasthan.

Rajasthan does have certain annual fairs like; Ramadeora, Khatushyamji, Keladevi, Beneshwar Dham,Urs of Kwaja Sahib, Pushkar fair. All fairs have lot of scope exclusive to Rajasthan and global linkages need to be studied from historical importance, beliefs, faith, association with religious communities and secular component, the changes occurred due to information technology and globalisation. How can the tradition and modernity and post modernity be observed by sociologists in these phenomena?

Construction of Dams resulting in Displacement and followed by rehabilitation is also a very common social phenomenon. The issue of social accountability is more significant in context to regional communities affected by construction of such dams in Rajasthan like; Mahi Bajaj Sagar at Banswara, Bisalpur at Tonk,Jmavai dam in Marvar region,Ghosunda at Chittorgarh. It has been observed that NGOs and institutional studies are there to understand the major social issues related to this type of social phenomena but certain issues still remains un-addressed. Intensive sociological study needs to be conducted to focussing the social accountability of all major dams in Rajasthan.

Films prepared and released so far, focussing on different issues, aspects and problems of Rajasthan, particularly in Rajasthani language are to be studied, whether based on fiction, romance, history, regional issues/incidents or if any other, that may be studied from sociological perspective with fresh approach.

Marriage, family, caste and kinship in contemporary Rajasthan should be studied. The

traditional structures of all these institutions have been observed in past but these are neglected by the contemporary scholars. It is a very common belief among sociologists that marriage, family, caste and kinship are the areas on which lot of work has already been done by the pioneers of Indian Sociology. Therefore, while someone intend to study these institutions that is considered as a conservative sociological approach, because the emerging trends attract the scholars towards the catchy and burning issues as raised by the media.It is a big question that how much work has been done on these institutions in Rajasthan.

A comparative study on the changes in the institution of marriage in Rural Rajasthan, among the major tribes of Rajasthan and the marriage in urban Rajasthan shall provide a lot of new findings. Similar is the case of family in Rajasthan. Trends of caste and kinship in Rajasthan are the issues of due importance for the scholars. Does the caste losing its traditional features in contemporary Rajasthan? To say that caste has become an indispensible institution for political parties in Rajasthan is also an important aspect to be studied by Sociologists. On one hand structural changes could have been observed in caste while on the other the functional aspects of caste have become more significant. How can we study such phenomenal changes in Rajasthan? The task may be very crucial and critical but needs to be addressed seriously.

Rajasthan was the first state where the Panchayati Rajwas introduced after independence. Scholars from various disciplines conducted studies on this institution of democratic decentralization in rural area. Further, some studies have also been conducted after 73rd constitutional amendment. The point is that Panchayati Raj in Rajasthan needs to be studied exclusively from socio-political approach in general and some case studies may be taken to examine and understand the phenomena in sub regional pockets. Say for instance; a case of interior tribal region, a case of semi tribal region, a case of developing region and a case of completely developed region- well connected with urban setting- may be taken for the intensive comparison.

Education policy in Rajasthan and educational institutions, right from the primary level to the higher level and professional education, their structural and functional aspects in Rajasthan may be studied with a fresh approach. Main issues related to education in Rajasthan have enough scope. Mainly education has two broad areas respectively; formal and non-formal. From social perspective formal education can be studied on the basis of service provider; the government (public sector) and private. It is very pertinent to explore the socio-economic background of the students taking admission in government institutions and those who prefer to take admission in private institution. The study may be focussed at the education policy of the state and the nexus between state and the private owners in Rajasthan.

Special attention may be paid to learn about the state of Sociology as a discipline in Rajasthan. It is a well-known fact that Sociology in Rajasthan was introduced as an independent subject in Government College there after separate department of Sociology were opened in Jaipur, Udaipur and Jodhpur in state Universities. It is to be pointed out that no more departments could be established in the newstate Universities of Rajasthan. Basic issue is that research programmes were initiated in Rajasthan by the departments of state Universities. Information can be gathered from all Universities in Rajasthan regarding the research conducted so far in the name of Sociology. At prime-facie level it has been observed that a large number of Ph.D. degrees have been awarded to the scholars by the respective Universities. A data base need to be prepared to ensure that hitherto how many studies have

been focussed on which kind of aspect of Rajasthan. Similarly another data base needs to be prepared to learn about the research projects completed so far at individual level by the teachers in University departments, colleges and independently in Rajasthan. All these may be classified according to the areas of research.

Last but not least a new area of research is to be explored, that is social marketing. This area has global importance and the aim is to influence the behaviour to inculcate social values. It is more different from than commercial marketing. In Rajasthan can we initiate research on social marketing? In contemporary Rajasthan there is enough scope to examine and understand the scope of social marketing.

Scope of research in sociology by sociologists of Rajasthan and other than Rajasthan is very broad. Our basic aim is to explore the neglected areas. It could be done with several constraints. The fact is that for a sociologist it would be very tough to ascertain the limit, to draw a line of marking, rather to say which issue cannot be an issue of significance for a scholar of sociology?

Sociology in Rajasthan: Status of Teaching and Research

S.L. Sharma

Sociology as an academic discipline in Rajasthan can be traced in 1949 when this discipline was introduced at Under-graduate level at M.B. College, Udaipur by B.R. Chouhan. Later on this discipline was taught at Post-graduate level at Govt. College, Beawar and M.B. College, Udaipur in 1957. The first Department of Sociology was established at University of Rajasthan, Jaipur on 6th July, 1961 by T.K.N. Unnithan as its founder Head of the Department. Later on Postgraduate Department of Sociology came into existence at University of Jodhpur (known as Jai Narayan Vyas University), University of Udaipur (known as M.L. Sukhadia University), Banasthali Vidhyapeeth, Banasthali, J.R.N. Rajasthan Vidhyapeeth, Udaipur and Government Colleges situated in Rajasthan.

In 1964, An All India Seminar on "Sociology for India: Teaching & Research" was organised by Department of Sociology, University of Rajasthan, Jaipur with the patronage of UGC from 12th to 17th October, 1964 at Mount Abu. In this national seminar, forty one participants were participated from various parts of the country. On the basis of the proceedings and report of the seminar published in the form of a book titled 'Sociology For India' edited by T.K.N. Unnithan, Yogendra Singh, Narendra Singhi and Indra Dev published by Prentice Hall of India Private Limited in 1967. This book is divided into seven parts. The problem of teaching and research were discussed in part four of this book. This book mainly deals with the various aspects of the development of sociology in India and articles were contributed by scholars related to scope and methodology of sociology in India, possibilities for development of an Indian Sociology, the issue related to Code of Ethics for sociologists in India were discussed in various chapters of the book.

We have several questions as far as the development of Sociology in Rajasthan is concerned. What is the contemporary disciplinary status of teaching and research of Sociology in Rajasthan? Is Sociology in Rajasthan is really under developed in comparison to other states in the country. We shall try to examine these questions in keeping view the socio-cultural specificity and historical conditions of the state of Rajasthan.

There is an urgent requirement to introduce new courses on the basis of rational societal considerations. The current contents of the courses at under-graduate and post-graduate level are often irrelevant to the students of sociology in Rajasthan. Periodic revision of the course contents are the need of the hour through Board of Studies at University level. This is the main reason to the underdeveloped nature of Sociology in Rajasthan.

The main mode of teaching of Sociology in Rajasthan is either through class lecture or class notes. There is little emphasis on class seminars and class tutorials, field technique particularly at post-graduate level. Unfortunately seminar work has not been developed as an alternative method of teaching in Sociology in Rajasthan.

The contributions of Rajasthan Journal of Sociology of the Rajasthan Sociological Association (RSA) is significant to discuss various contemporary issues particularly related to culture, history and society of Rajasthan in their various nine volumes of the Journal. I must acknowledge the contributions of several sociologists worked or working in various colleges, Universities, Departments of Rajasthan particularly the writings of B.R. Chauhan, T.K.N. Unnithan, Yogendra Singh, A.K. Saran, N.K. Singhi, Prof. Ram Ahuja, K.L. Sharma, O.P. Sharma, S.L. Doshi, B.K. Nagla, C.L. Sharma, Mohan Advani, N.K. Bhargava, S.K. Lal, R.S. Srivastava, Motilal Gupta, Vriendra Prakash Sharma, M.S. Trivedi, P.C. Jain for their valuable contributions through their writings and research projects.

After this seminar, the little efforts have been made to review and discuss the status of Teaching and Research of Sociology in Rajasthan at University and college level. The contemporary issues are to be included in the course curriculum at Under-graduate and Post-graduate level. The research problems related to the changes that have taken place in family and marriage needs to be explored and to be examined by the research scholars. There is scarcity of literature on feudalism in Rajasthan except the writings of K.L. Sharma. The literature and research on various issues and problems related to Caste, Class, Politics, Social and protest movements are to be re-examined and studied by the scholars. The issues related to understand Sociology of Environment, Sociology of Crime and Deviance with reference to Rajasthan are to be studied by the research scholars from the new perspectives.

Sociology in Rajasthan - Relevant Issues

Tribhu Nath Dubey, Supriya Seth

Does there anything exist like Rajasthani Sociology as distinct disciplinary identity? In the sense that a sociology which focuses and employs Rajasthan specific analytical categories for the study of idiosyncratic societal and cultural aspects of the society. Like, as a discipline how do we sociologically imagine and construct Rajasthan which is distinct from imagining it geographically or politically? I am afraid. There is none. Should there be one? Why not? But we are wary of, if it will serve any greater disciplinary or societal good.

For a non Rajasthani, coming to know it through tourism department imagery, one of the prominent images of Rajasthan which comes to his/her mind is the image of moustache man from Jaisalmer but on visiting the state one rather adjusts to the idea that people and society on contrary are same as found in other parts of India. Similarly sociology in Rajasthan has not created such distinct images or showcased identity for itself and should not create one either. Since, it has every possibility of becoming a misnomer.

What exists, rather, is more like a sociology within the geographical location and political jurisdiction of Rajasthan i.e. Sociology in Rajasthan which is like sociology in any other place but rooted and feeding on its society and culture. And, in doing that it serves the both ends. It endeavours to enrich general sociological inquiry as well as provides inevitable local flavour through studying local issues, customs, people and processes.

Having made this disclaimer, we find that there are certain social interactions, currents and phenomena which need more serious, deeper and possibly renewed sociological inquiry. We have stopped sort of further probing into agrarian relations in post village study era. If not wrong, after the study by B. R. Chauhan, K. L. Sharma and T. K. Oommen, there is hardly any credible work in this area.

With the long passage of modernization, urbanization and industrialization what has undergone the agrarian relations and what has entailed is something which should make all of very curious. This is particularly in a situation when there have been fast pace of urbanization, we still account for more than seventy percent rural population.

Within the broader domain of agrarian relations there are several cohering and auxiliary processes which also need our attention. Rural Migration, prevalence of adaptive Hali System and land alienation are vital and prominent amongst them. With branding of bonded labour or bandhua majdoori illegal, it has evolved and adapted to a newer form and is pan Rajasthan rural phenomena with regional variations. Study of this phenomenon is imbued with plethora of sociological possibilities.

In the same vein, Nata Pratha in Rajasthan is something which we have not given required attention. It is primarily attributed as a tribal characteristic and done away with. It is known to have been adopted and accepted by the lower echelon of the Hindu caste system from tribes. Whereas it is a representative case of tribe-non tribe social exchange and influence, and sociological site of tribalization; it has provided an escape route for matrimonial discord and a form of divorce in a traditional hindu worldview which does not allow divorce in the sacramental conception of marriage. Additionally, there are associated customs like *Jhagra* and it, at times, does not only become a source of conflict but, of late, also a source of marital instability. The money involved and propensity of the bride price beneficiary to trigger the elopement is noted to be at odds with the intended good of the custom and rather perceived as social menace. All of these make it a very complex social phenomenon but not having been explored with befitting serious sociological rigour.

One also encounters, sort of, prospering feudal-capitalist-political nexus in our society. It has serious implications. Its study along with politicization of caste and caste based political negotiations should also be on the sociological radar. Lot of grey literature is available on the implementation of various government schemes, child labour and gender disparity due to the work and deliberations of volag sector. These discussions seem to throw up much talked about conceptual categories and influence sociological studies and research areas. While these need sociological attention the terminologies and categories borrowed and used need to be sociologically calibrated.

Additionally, full-fledged study of tribal fair as social institution and conflict resolution tool; incidence, causes and effects of high women desertion; gender disparity and violence against women and particularly its higher incidence in more urbanized districts of Rajasthan; caste disparity and discrimination; forms, attributes and effects of new social and rural leaderships, evaluation of positive discrimination and technological impact on social life are some of the important areas of exploration for the Sociology in Rajasthan.

Making Sociology Relevant in Rajasthan

Mohan Advani

The main objective of this note is to suggest ways of generating sociological skills necessary in Rajasthan's changing situations to build bridges between teaching, training, research, policy and practice.

At the higher education level, teaching should be job-oriented and action-directed. It should train students to assist people. It should help social groups to think and act about the social problems; explore modules that are viable, and adapt to changing social environment. To achieve this, we must prepare sociologists with necessary skills for applying social research and presenting evidence-based facts, which are relevant for policy making.

Trained sociologists should be capable of handling different types of relationships in work situations. They should be able to make deliberate interventions in social processes. They should be specialists who can engage in activities involving social groups. They should be ready to be hired by the government, the corporate sector, non-government organizations and local communities.

Could sociologists help when there are situations like mob violence, community riots, protests, movements? Could they suggest steps towards communal harmony and peaceful living? Their knowledge should not be limited to social theories and classroom interaction and instead, they should be trained to handle field situations.

In Rajasthan, we need sociologists who can practice sociology and make use of available data for correctional purposes. They should also make greater use of available secondary data. They should analyze trends in fertility, mortality and nutrition through health indicators. The Census provides information on population size along with sex ratio, literacy etc. The Sample Registration System (SRS) provides main sources data on Crude Birth Rate, Total Fertility Rate, and Infant Mortality Rate. District, Tehsil/ Block and village level information and other data is available on the Government of Rajasthan website. Multi Indicator Surveys are carried out by UNICEF and other agencies. Rapid Household Surveys for RCH are also a good source for analyzing the present Reproductive & Child Health situation in Rajasthan.

Here are examples of valuable data that can be studied according to social, cultural and geographical zones. The National Family Health Survey (NFHS 4) observes that Infant Mortality Rate (IMR) in Rajasthan has taken a dip from 65 per thousand live births to 41 per thousand live births in past 10 years. However in rural areas it is 31 per 1000 live births and in urban areas it is 31 deaths per 1000 live births. Under-5 mortality rate has also witnessed a dip from 85 per 1000 to 51 per 1000 live births. There is also a significant decline in total fertility rate (children per women) i.e. 3.2 in 2005-6 to 1.9 in 2015-16. Child marriages are rampant in Rajasthan but the percentage of such marriages has gone down significantly. There has been a decline in spousal violence cases and there is a rise in women possessing bank accounts. The percentage of women participating in household decisions has risen from 61.1% in 2005-6 to 81.7 in 2015-16.

In Rajasthan we should try to maximize the scope of sociology. We should find out how the society in Rajasthan works: what are the processes that produce collective action, and the

situations that they in turn create. Some sociologists focus on situations which are problematic. It is because they do not like what is going on and want to do away with it. The perspective of sociologists varies and so does the description of social situations. These days sociologists work in various fields: in the government as officers, in universities and colleges as teachers, in social welfare departments as probation officers, in medical colleges and hospitals as welfare associates, in industries as labour officers, in NGOs as investigators, interventionists, directors or proprietors. They participate in reform movements, raise issues related to environmental conditions, they write columns in newspapers and are active in various forums. They conduct various kinds of surveys and they are good investigators. They are involved in family counseling and they assist in resolving social conflicts. They are experts on reservation issues and they guide policy makers. They participate in opinion polls and election surveys. They conduct Resettlement and Rehabilitation (R&R) Surveys and Social Impact Assessment (SIA). They can carry out Situation Analysis, Feasibility Studies and they also participate in Micro Planning.We also find sociologists working in management, population, health and technology institutes. They also teach in nursing colleges and there are many more areas. But to make this possible, Rajasthan needs sociologists who can work in multidisciplinary teams. Flexibility and adaptability are prerequisites for the success of sociologists.

Students of sociology in Rajasthan need to be vigorously trained in research methodology and field work techniques. Many Ph. D. Scholars use purposive sampling for collection of data. They rarely use systematic, random or cluster sampling. They have little knowledge about experimental designs. They are not well trained in Participatory Rural Appraisal (PRA), Focus Group Discussion (FGD), and Case Study Method. These days, there are advanced techniques of data collection and analysis. They should be trained in measurement and scaling techniques and they should have knowledge of social and economic indicators. They should be able to use SPSS in data analysis. We should inspire students to apply sociology in action through real-life activities.

Teaching should be designed to increase practical learning, retention and engagement with various social situations. Experiential learning methods could be used for skill development. In fact, sociology should be used to study present trends of social transformation in marital relations, structure of family, role of caste in politics, situation of people in tribal and dessert areas, emergence of new middle class and new upper class. The expansion of urban areas, construction of dams, expansion of roads, waterways and rail networks and many communication and development projects have opened new areas of study for sociologists. They have the opportunity to get jobs and take up projects to study social impacts. All this is possible when our students are trained in project formulation, field work techniques and writing skills. More attention should be paid on Research Methodology, Sociology of Population and Health, Sociology of Development, Mass communication, Industrial Sociology, Urban Sociology, Criminology, Rural Sociology and Social Gerontology.

राजस्थान में समाजशास्त्र के सम्मुख चुनौतियां

राजीव गुप्ता

राजस्थान में समाजशास्त्र विषय के सम्मुख चुनौतियों का विश्लेषण समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के सम्मुख अपने आप में चुनौती है क्योंकि क्या 'राजस्थान का समाजशास्त्र' की शाखा सम्भव है, पर बहस राजस्थान में सम्भवतया कभी नहीं हुई। लेखक इस बहस की अनुपस्थिति की चर्चा अकादमिक परिसरों के संदर्भ में कर रहा है। अपने उद्भव से ही समाजशास्त्र का स्वरूप सैद्धान्तिक एवं आनुभाविक विज्ञान का रहा और विकास के साथ यह स्वरूप एक सुनिश्चित आकार लेता गया, परन्तु इसके साथ हमें यह भी स्वीकारना होगा कि प्रत्येक समाज विज्ञान अनिवार्यतः विचारधारा के विभिन्न पक्षों से भी जुड़ा है भले ही समाज वैज्ञानिकों का एक भाग विचारधाराओं को विज्ञान विरोधी ठहराता रहे। साथ ही हमें यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि अनेक समाजशास्त्रीय अध्ययनों के निष्कर्ष सामान्यजन की समझ के विपरीत हो सकते हैं। राजस्थान के अनेक विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में समाजशास्त्र का शिक्षण अनेक अवसरों पर महसूस कराता है कि (1) सिद्धान्त एवं विचारधाराओं, यहां तक कि विचारकों के मत किसी भी समाजशास्त्रीय यथार्थ के विवेचन में प्रयुक्त नहीं होते (2) समाजशास्त्र में प्रयुक्त शिक्षाशास्त्र सामान्यजन की उस समझ को प्रस्तुत करता है जो समाजशास्त्रीय निष्कर्ष से भिन्न या विपरीत है। परिणामस्वरूप विद्यार्थी की समझ 'अ–समाजशास्त्रीय' हो जाती है तथा (3) कक्षाओं में विवेचन व विश्लेषण में स्थानीय यथार्थ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किए जाते। वास्तव में 'राजस्थान में समाजशास्त्र' सस्ती एवं भ्रामक पाठ्य पुस्तकों एवं 'परीक्षा केन्द्रित पास बुक्स' के आस–पास एक बड़े स्तर तक सिमट कर रह गया है। समाजशास्त्र 'सस्ते बाजारीकरण' के कारण राजस्थान में अपने उद्देश्यों से भटका है। लेखक इस स्थिति को समाजशास्त्र के सम्मुख राजस्थान सहित हिन्दी प्रदेशों में एक चुनौती के रूप में मानता है।

'राजस्थान में समाजशास्त्र' अनेक नवीनतम सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं को सम्मिलित नहीं करता। परिणामस्वरूप 'वैश्विक–राष्ट्रीय–क्षेत्रीय–स्थानीय परिवेश' की अन्तः सम्बद्धता के समाजशास्त्रीय तर्क समाजशास्त्रीय चेतना के प्रभावी भाग नहीं हैं। लेखक की दृष्टि में यह समाजशास्त्रीय अस्मिता की रचना हेतु अनिवार्य है। एक और पक्ष इस संदर्भ में आवश्यक हो जाता है कि राजस्थान में समाजशास्त्र की सार्वजनिक विमर्श (पब्लिक डिसकोर्स) की परिधि में क्या स्थिति है। राजस्थान में विद्यार्थी एवं शिक्षकों के एक बड़े समूह में सामन्ती संस्कृति की पैठ है, जिसे धर्म (वर्तमान संदर्भ में हिन्दुत्व), जाति एवं संयुक्त परिवार के साथ पुरुषसत्ता की वैधता प्राप्त है। समाजशास्त्र के विषय को इस गैर–आधुनिक मानसिकता के साथ कक्षाओं में प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि राजस्थान में सामन्तवाद के विभिन्न आयामों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण सम्भवतया किसी भी विश्वविद्यालय में नहीं किया जाता। यहां तक कि सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूपों में सामन्तवाद की चर्चा करते हुए राजस्थान में सामन्तवाद के पक्षों का उल्लेख तक नहीं होता, अपितु अनेक पुस्तकों एवं कक्षाओं में जाति, पुरुष–सत्ता एवं बाल विवाह जैसी संस्थाओं को सकारात्मकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक परिवर्तनों की अग्रसरता के लिए उत्तरदायी सामाजिक शक्तियों को रेखांकित करना भी समाज विज्ञानों का लक्ष्य है (स्विंगवुड, 1991), परन्तु राजस्थान में समाजशास्त्र की विषय वस्तु में यह उदासीनता स्पष्ट नजर आती है। इस

1. 'राजस्थान में समाजशास्त्र' लेखक की दृष्टि में क्षेत्रीय समाजशास्त्रों (रीजनल सोश्योलॉजीज) का भाग है जो राजस्थान में सम्बद्ध विभिन्न संरचनात्मक एवं प्रक्रियामूलक प्रघटनाओं का आलोचनात्मक–वैज्ञानिक विश्लेषण करता है।
2. 'राजस्थान में समाजशास्त्र' का अभिप्राय विषय–संरचना के उस समग्र से है, जिसका अध्ययन राजस्थान में शैक्षिक परिसरों का (विद्यालय से विश्वविद्यालयों) भाग है।,

उदासीनता के कारण विद्यार्थियों में समाजशास्त्र के ऐतिहासिक परिदृश्य की समझ आंशिक है। इस पक्ष को महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में देखे जाने की जरूरत है। 'राजस्थान में समाजशास्त्र' शोध की अनेक परिसीमाओं का शिकार है। विशेषतः निजी विश्वविद्यालयों में (हालांकि राज्य संचालित विश्वविद्यालय भी अछूते नहीं है) शोध कार्य बाजारवाद की विसंगतियों से प्रभावित है। प्री–पीएच.डी. कोर्स वर्क कार्यक्रम महज एक औपचारिकता है। शोध निदेशक एवं शोधार्थी के मध्य सम्बन्ध, सन्देह का घेरा प्रत्येक दृष्टि से निर्मित करते हैं। विचारधारा, सिद्धान्त, पद्धति, आनुभाविकता, सामाजिक दर्शन के पक्ष, साहित्य पुनरावलोकन, पैराडिम रचना, गुणात्मक या परिमाणात्मक पक्ष, प्रविधि निर्माण इत्यादि क्षेत्रों में प्रतिबद्ध प्रयासों के अभाव के कारण 'राजस्थान में समाजशास्त्र' का विकास यथास्थितिवाद से जूझ रहा है। इसे भी मुख्य चुनौती की संज्ञा दे सकते हैं।

राजस्थान में समाजशास्त्र का अध्ययन अनेक संरचनात्मक कमियों का शिकार है। उदाहरण के लिए 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण एवं परिणाम तथा 1789 के बाद की स्थितियों के विश्लेषण को राजस्थान में स्थान नहीं मिला। परिणामस्वरूप समाजशास्त्र के उद्भव के विभिन्न पक्ष यहां समाजशास्त्रीय चेतना का भाग नहीं हैं या फिर इस चेतना की आंशिक उपस्थिति है। राजा आधारित शासन की समाप्ति एवं तत्पश्चात् लोकतान्त्रिक मूल्यों के स्वर, अभिजात वर्ग की भूमिका, बुर्जुआ वर्ग की कार्यशैली इत्यादि से उभर रही व्यवस्थाओं का संघर्ष वे पक्ष हैं, जिन्हें समझना आवश्यक है, अन्यथा अगस्त कॉम्ट के विचारों की समीक्षा नहीं की जा सकती। सामन्तवाद से पूंजीवाद की तरफ की अग्रसरता मुख्य रूप से समाजशास्त्र की उस परम्परा का निर्माण करती है, जिसमें कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर एवं एमील दुर्खाइम इत्यादि स्थान पाते हैं। इसके साथ–साथ पश्चिम में उभरती वैज्ञानिक प्रणाली को समझना भी जरूरी है। लेखक फिर इस तर्क को देना चाहेगा कि भारत सहित विश्व क्रान्तियों के विश्लेषण के बिना समाजशास्त्र क्या है? और क्या नहीं है? संबंधी हमारी समझ एकपक्षीय है। इस विमर्श को केन्द्र में रखकर 'भारत का समाजशास्त्र' और 'राजस्थान का समाजशास्त्र' समझने का प्रयास किया जाए तो निराशा का सामना करना पड़ता है। 'राजस्थान का समाजशास्त्र' वस्तुतः 'राजपूताना से राजस्थान' की निर्माण प्रक्रिया के सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आन्दोलनात्मक पक्षों के विश्लेषण से प्रारम्भ होना चाहिए तत्पश्चात् स्वतन्त्रता के उपरान्त राजस्थान की संरचना एवं परिवर्तन के विभिन्न आयामों के विश्लेषण किए जाने की आवश्यकता लेखक को महसूस होती है। राजस्थान के विभिन्न समाजशास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय योगदानों को भी रेखांकित किए जाने की आवश्यकता है। यह भी सम्भव हो सकता है कि राजस्थान के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं सम्बद्ध महाविद्यालयों में हुए शोध एवं योगदान को केन्द्र में रखकर 'जयपुर स्कूल', 'उदयपुर स्कूल' इत्यादि की प्रस्तुति हो, जो कि योगदानों की केन्द्रीय धारा के प्रतिनिधित्वकारी पक्षों पर आधारित हो। डी.एन. धनाग्रे ने भारत में समाजशास्त्र से सम्बद्ध सम्प्रदायों (स्कूल्स ऑफ सोश्योलॉजी) की रचना के जिन कारकों का उल्लेख किया है, के पक्षों पर राजस्थान के विश्लेषण का प्रयास आवश्यक है। जयपुर में टी.के. एन. उणीत्तन, योगेन्द्र सिंह, इन्द्र देव, के. एल. शर्मा, एस. एल. श्रीवास्तव, एन. के. सिंघी, राम आहूजा इत्यादि उदयपुर में ओ. पी. शर्मा, एस. एल. दोषी, बी. आर. चौहान इत्यादि क्या अपने योगदान में किसी धारा का प्रतिनिधित्व करते नजर आते हैं ? इस पर चर्चा ही नहीं की गई है। जोधपुर की स्थिति भी भिन्न नहीं है। ये पक्ष इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि विषय एवं प्रदेश को अस्मिताओं के आधार पर स्थान दिया जाता है। 'बम्बई' एवं 'लखनऊ' सम्प्रदाय (स्कूल) इसका उदाहरण हैं, जो भारतीय समाजशास्त्र की विरासत की प्रमुख इकाइयां हैं।

लेखक एक अन्य चुनौती की तरफ पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है। राजस्थान सांस्कृतिक बाहुल्यता एवं लोक सांस्कृतिक विधाओं का प्रमुख केन्द्र है। राजस्थान की संस्कृति अन्य

राज्यों की भांति विभिन्न संस्कृतियों का समुच्चय है। लोक संस्कृतियों की समाजशास्त्रीय विवेचनाओं की अनुपस्थिति के कारण गांव, ढांणी, गांव की चौपालें, शहरों की कच्ची बस्तियां इत्यादि कक्षाओं में समाजशास्त्रीय विमर्श का रूप नहीं ले सकीं और 'राजस्थान का समाजशास्त्र' अकादमिक अपरिचय का हिस्सा बन गया। लगभग यही स्थिति 1857–1947 की अवधि की है, जिस समय के स्वाधीनता संघर्ष में राजपूताना का योगदान समाजशास्त्रीय विश्लेषण के केन्द्र में नहीं है। यह संघर्ष समूचे भारत में गुणात्मक बदलाव का द्योतक है और भारतीय एवं राजपूताना के तत्कालीन सामन्तवाद एवं ब्रितानी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष, विशेषतः किसानी संघर्ष के पक्ष इस विश्लेषण से उभर सकते हैं, पर ऐसा कुछ न होना आन्दोलनों के विश्लेषण की समाजशास्त्रीय उपेक्षा से जुड़ जाता है। यदि यह प्रयास हो तो जहां एक तरफ प्रजामण्डल आन्दोलन एवं दूसरी तरफ अलीबख्श जैसे कलाकारों के लोक संस्कृति में योगदान समाजशास्त्रीय चेतना का भाग बन कर 'राजस्थान का समाजशास्त्र' को विकसित कर सकते हैं। लेखक पुनः इस विचार की पक्षधरता को दोहराता है कि समाजशास्त्र या फिर समाज विज्ञान वैचारिक दृष्टिकोणों का जनतंत्र भी है। विचारधारायी अन्तर्विरोधों की 'राजस्थान में समाजशास्त्र' में उपेक्षा हुई है और इस कारण यह नवजागरण की प्रवृत्तियों से पृथक हुआ है। क्या समाजशास्त्र संविधान एवं लोकतन्त्र के प्रति तटस्थ हुआ है? का सवाल उभरना चाहिए। नेहरू, गांधी, फूले, अम्बेडकर, मध्ययुगीन सुधार आन्दोलनों के विश्लेषण तथा प्राचीन युगीन अन्तःविरोधों से उभरता भारतीय समाज और उसमें 'लोकेट' होता राजस्थान का समाज, समाजशास्त्र विषय में कहीं भी नजर नहीं आता। इन पक्षों पर शोध करने व कराने में भी सामान्यतः शोधार्थी एवं शोध निर्देशक की रूचि नहीं है। राजस्थान के भूगोल से बनते राजस्थान का समाज, समाजशास्त्र विषय का विद्यार्थी सम्भवतया समझ पाने में असमर्थ है। रामदेवजी, तेजाजी, बलदेव इत्यादि मेलों के सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव तथा इन मेलों सहित विभिन्न मेलों में पशुधन के महत्त्व समाजशास्त्र में 'सबल्टर्न' (लोक) परिप्रेक्ष्य की तरफ जा सकते हैं। जनजातीय समाज के अध्ययन अवश्य हुए हैं, पर वे मुख्यतः 'उदयपुर स्कूल' के केन्द्र हैं। परन्तु अन्य स्थानों पर 'जाति–जनजाति' अन्तःक्रियाओं से सम्बद्ध प्रघटनाओं को शोध के केन्द्र में अपेक्षित संख्या में नहीं लाया गया है। यदि राजस्थान 'में' और राजस्थान 'का' समाजशास्त्र का अवलोकन करें तो विस्थापन, पुनर्वास एवं विकास के पक्षों पर भी हमारा ध्यान अधिक नहीं गया है। खनन व्यवसाय की अध्ययन सम्बन्धी उपेक्षा आर्थिक समाजशास्त्र से संबंधित समझ को एकपक्षीय बनाती है। श्रम सुधार कानूनों के अध्ययनों की उपेक्षा एक अन्य महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। पर्यटन एवं अवकाश प्रक्रियाओं पर अनेक शोध हर्ष का विषय है, पर ऐतिहासिक इमारतों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा के केन्द्रों के रूप में चर्चा कहीं भी नजर नहीं आती। सामन्ती एवं पूंजीवादी पुरुष–सत्ता के अध्ययनों पर भी बल नहीं है। समाजशास्त्र अनेक 'सोशॅल स्पेसेज' का प्रतिनिधित्व करता है पर मीरा से लेकर गायत्री देवी तक कोई भी इस 'स्पेस' में नहीं है। पेटिंग्स, गीत, प्रतिरोधी गीत, नाटक एवं कला के विभिन्न पक्षों पर भी समाजशास्त्रीय विमर्श का लगभग अभाव नजर आता है।

उपर्युक्त विश्लेषण सम्भवतया पाठकों को अटपटा लगे पर लेखक का मत है कि समाजशास्त्र मूलतः अन्तःअनुशासनात्मक एवं संस्थापन विरोधी समाज विज्ञान है। संस्थापन विरोधी इसलिए क्योंकि सामाजिक व्यवस्थाओं की आलोचनात्मक–आनुभाविक व्याख्या और तदुपरान्त सम्भावित विकल्पों की 'मॉडल', 'पैराडिम' या सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्रस्तुति सामाजिक विज्ञानों विशेषतः समाजशा़स्त्र का मुख्य गुण है। अधिकांश समाजशास्त्री अपने दृष्टिकोण एवं राजनीतिक चेतना के संदर्भ में उदारवादी एवं आलोचनात्मक रहे हैं। समाजशास्त्र एक विषय के रूप में 'कक्षाओं' एवं 'परिसरों' के बाहर यदि सक्रिय है तो इसका विकास सम्भव है क्योंकि ये प्रघटनाएं ही समाजशास्त्र की विषयवस्तु एवं पद्धतिशास्त्र में परिवर्तन व विस्तार में सहायक हैं। आनुभाविकतावाद पर दिए गए बल ने न केवल समाजशास्त्र में

'ठहराव' उत्पन्न किया है अपितु शोध प्रक्रिया के क्षेत्र को एक सीमा तक 'निराशावादी' बनाया है। शोध के विषय आनुभाविकता को ध्यान में रखकर 'सिलेक्टिव' हुए है और समूचे प्रयास में सिद्धान्त एवं विचारधारा(ओं) की उपेक्षा हो रही है। एक 'परीक्षक' के रूप में यह स्थिति न केवल लेखक को निराशावादी बनाती है अपितु शोध प्रक्रिया को समाज, विशेषतः हाशिये पर खड़े समूहों से पृथक करती है। यह स्थिति 'नवउदारवाद' की परोक्ष समर्थक है परन्तु 'नवउदारवाद' को यह शोध प्रक्रिया वैचारिकी का समर्थन देने में असमर्थ है, परिणामस्वरूप समाजशास्त्र को इस प्रक्रिया ने अकादमिक क्षेत्र में भी 'हाशिये' पर धकेलने का काम किया है। सामाजिक व आय से सम्बद्ध असमानताओं में पारिवारिक व गैर–पारिवारिक स्पेस में हिंसा व भय जनित आक्रामकता के सामाजिक सम्बन्धों पर प्रभाव और नव्य उदारवाद की संस्कृति के संदर्भ जैसे पक्षों पर शोध कार्यों की लगभग अनुपस्थिति और पाठ्यक्रमों में इन पक्षों पर विवेचन के अभाव हम 'समाजशास्त्र के विद्यार्थियों' के कितने हिस्से को उत्तेजित या परेशान करते हैं, के सवाल भारतीय समाजशास्त्र एवं भारत में समाजशास्त्र के सम्मुख वे चुनौतियां हैं, जिनसे राजस्थान से सम्बद्ध समाजशास्त्र भी अछूता नहीं है।

मध्यवर्ग सम्बन्धी अध्ययनों पर भी बल रहा हुआ है। श्रमिक वर्ग की जीवनशैली के विमर्श भी उपेक्षित हैं, परिणामस्वरूप सम्भव है कि स्नातक, स्नातकोत्तर और शोध के साथ जुड़े विद्यार्थियों का प्रवेश सम्बन्धी आंकड़ा बढ़ा हो, पर उच्च प्रतिशत पाने वाले विद्यार्थियों का समाजशास्त्र के प्रति रूझान कम हुआ है। आलोचनात्मक समाजशास्त्र का अभाव 'समाजशास्त्र के पेशे' पर राजस्थान सहित भारत में प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है क्योंकि कॉर्पोरेट्स से जुड़े सामाजिक दायित्व (सी. एस. आर.) आदि की हम अध्ययन के रूप में चर्चा नहीं करते। 'राज्य सेवाओं' से भी समाजशास्त्र लगभग बाहर है क्योंकि राज्य के चरित्र का मूल्यांकन हम करना ही नहीं चाहते। क्या समाजशास्त्र के शिक्षक, इण्डियन सोश्योलॉजिकल सोसायटी एवं राजस्थान सोश्योलॉजिकल ॲसोसिएशॅन इन चुनौतियों का उत्तर देने हेतु सजग और सक्षम हैं?

Reference

Swingewood, Alan. 1991. A Short History of Sociology, Britain: Palgrave Macmillan

राजस्थान में समाजशास्त्र : मुद्दों की तलाश

नरेश भार्गव

लगभग सात दशक पहले राजस्थान में समाजशास्त्र एक विषय के रूप में नया था, और कुछ ही स्थानों तक सीमित था। एम. बी. कॉलेज, उदयपुर और एस. डी. गवर्नमेंट कॉलेज, ब्यावर विषय स्थापना में अग्रणीय थे। बाद में जयपुर और उसके बाद उदयपुर विश्वविद्यालय में इसे परिवेश मिला। तब से अब तक आकार और शिक्षक संख्या में समाजशास्त्र आगे बढ़ा है और विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में इसने एक लोकप्रिय विषय के रूप में अपना स्थान प्राप्त कर लिया है। प्रारम्भ में इसकी छवि सरल तथा आम आदमी के संस्थात्मक स्वरूपों को देखने की थी। सारे भारत में जिन आधारों को समाजशास्त्र के लिए स्वीकार किया जा रहा था, उन्हें राजस्थान में भी स्वीकार कर लिया गया था। उस समय, विशेष रूप से पचास और साठ के दशक में समाजशास्त्र की जो विषय वस्तु भारत के अन्य भागों में थी, उसे ही राजस्थान में भी स्वीकार कर लिया गया। यह स्वाभाविक भी था। देश के अन्य भागों में भी कुछ अपवादों के साथ यही हो रहा था। मानवशास्त्र भी उस समय के समाजशास्त्र का एक भाग था, पर वह शास्त्रीय था। राजस्थान की जनजातियों के विस्तृत वर्णन मौजूद नहीं थे। कुछ छोटी–मोटी व्याख्याएं थीं,

जिनका वर्णन किया जाता था। समाजशास्त्र राजस्थान में अवश्य मौजूद था, पर उसके आदर्श और अंतर्वस्तु अखिल भारतीय थे। शायद प्रारम्भिक आधारों के लिए यह आवश्यक भी नहीं था। राजस्थान में समाजशास्त्र इसी परिवेश में उपजा और विकसित हुआ। आज की तस्वीर दूसरी है। शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनों को ही स्थिति बदली है और शोध की महत्ता बढ़ी है। योग्यता का चाहे जो पैमाना हो, भारतीय शिक्षा जगत के इस परिवेश में परिवर्तन हुए हैं, राजस्थान उसका अपवाद नहीं है। किसी भी विषय के मूल्यांकन के लिए अपने–अपने आधार हो सकते हैं, और इन आधारों को तय करना कठिन कार्य है।

एक बड़ा सवाल राजस्थान के समाजशास्त्र के लिए यही है कि वह अपने–आपको पचास, साठ सत्तर के दशकों के समाजशास्त्र तक ही सीमित रखे या उससे आगे बढ़ जाए। स्वयं समाजशास्त्री यह मानते हैं कि सामाजिक तत्त्वों को यथास्थितिवाद में सीमित नहीं रखा जा सकता। बदलते परिवेशों और परिस्थितियों को तो हमें अपनाना ही पड़ेगा। नई परिस्थितियों को पुरानी पद्धतियों से नहीं समझा जा सकता। आनुभविक आधारों पर कहीं न कहीं बदलाव की आवश्यकता है। इसी विषय पर समाजशास्त्रीय चिन्तन की आवश्यकता है कि बदलते परिवेशों को समझा जाए और किन्हीं नई सृष्टियों का परीक्षण किया जाए, चाहे वे पद्धतीय हों या सैद्धान्तिक। जो हुआ उसके परीक्षण की आवश्यकता है और नए सन्दर्भों को परखना जरूरी है। समाज के बदलते परिवेश और रूपान्तरण वर्तमान में जटिल हैं। यदि यह माना जाए कि समाजशास्त्र समाज की नब्ज पकड़ने में समर्थ है तो इस कार्य को कैसे किया जाए। राजस्थान एक विशिष्ट क्षेत्र है और कहीं इसकी समसामयिकता की व्यापक परख आवश्यक है। हम ऐसा नहीं मानते कि राजस्थान के स्वयं के विशिष्ट समाजशास्त्र को बनाए जाने की आवश्यकता है। यह संभवतः इस शास्त्र को कुंठित भी कर देगा, पर क्षेत्र विशेष की समाजशास्त्रीय विशेषताओं के संयोजन को तो ऐसा प्रयास पूरा कर ही सकता है। सामाजिक विविधताओं का समाजशास्त्रीय संयोजन समझ, विश्लेषण तथा शोध के लिए उभरते समाजशास्त्र में यह योगदान तो दे ही सकता है। तुलनात्मक समाजशास्त्र का यह रूप भी स्थापित हो सकता है। यह गंभीर चिन्तन का एक विवादास्पद विषय है, जिस पर विचार किया जा सकता है।

सवाल यही नहीं है। एक बहस यह भी है कि राजस्थान के समाजशास्त्रीय समाज के लिए क्या कुछ छूट गया है ? प्रत्येक शास्त्र में ज्ञान के लिए नई परिस्थितियां पैदा होती हैं और उसी के आधार पर नई संरचनाएं बनती हैं। संभवतः कुछ ऐसे प्रश्न या आधार छूट गए हैं, जो राजस्थान के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों के लिए आवश्यक थे। जैसे, यह सर्वमान्य है कि राजस्थान में सामंतवादी परिवेश की व्यवस्था रही है। सामाजिक व्यवस्था, संरचना और जीवनशैली, गैर–बराबरी, तथा जीवन दर्शन के प्रसंग सामंतवाद के साथ जुड़े रहे हैं। सामंती छाया अब समाज की सामाजिकता, राजनीति और अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करती है ? सामंतवाद की समाजशास्त्रीय व्यवस्था पर कम लोगों का ध्यान गया है। प्रवासी राजस्थानियों के मूल राजस्थान से साथ क्या संबंध हैं ? राजस्थान की क्षेत्रीय और भाषायी विविधताएं कैसे जुड़ी हुई हैं ? लघु परंपराएं और देवता, राजस्थान के किन आधारों को बनाए हुए हैं ? महिला शक्ति के अपने प्रयास हैं, पर स्त्री हत्या, अपमान और शक्तिवान स्त्रियों के समाजशास्त्रीय स्वरूप क्या हैं ? क्या शिक्षा स्वयं राजस्थान के परिवेशों का परिचय देती हैं ? ये प्रश्न बहुत से प्रश्नों में से कुछ हैं जिन पर समाजशास्त्रियों को राजस्थान में झांकना चाहिए। परिवर्तन एक मुद्दा है, पर रूपान्तरण ? ये मुद्दे राजस्थान के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। ये मुद्दे संभवतः उस समझ को पैदा कर सकते हैं जो राजस्थान की योजना के लिए आवश्यक भी हैं। जो कुछ भी तथ्य नौकरशाहों ने पैदा किए हैं, वे नाकाफी हैं, और जो भी तथ्य एकत्र किए गए हैं वे उनकी आवश्यकता के लिए हैं। समाजशास्त्र की अपनी आवश्यकताएं हैं और उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति करना समाजशास्त्र के लिए आवश्यक है।

राजस्थान में कहीं इन आवश्यकताओं के संदर्भ टटोलने पड़ेंगे और उन्हीं आधारों पर विश्लेषणात्मक आधार स्थापित करने पड़ेंगे।

राजस्थान के सन्दर्भ की यह सूची लंबी हो सकती है, पर प्रासंगिक मुद्दों की खोज शायद अधिक प्रासंगिक है। समाजशास्त्र को सम्पन्न करना और राजस्थान की समाजशास्त्रीय व्याख्या का विश्लेषण, दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। वैसे भी राजस्थान की समझ के लिए तथ्यों के एकत्रीकरण, खोज और विश्लेषण तीनों के समन्वय की आवश्यकता है। उत्तर और पूर्व को समझने का प्रयास किया गया है और भारत के अन्य भागों से भी महत्वपूर्ण सन्दर्भ एकत्र किए गए हैं। राजस्थान अपने–आपको क्यों उभार नहीं सकता?

Book Reviews

Ashutosh Vyas: *Sociological Analysis of MGNREGA.*

Jaipur: Book Enclave, Jaipur, 2018, 153; Rs 995, ISBN: 978-81-8152-458-4

Reviewed by Kirti Rajimwale
Retd. Professor and Head, Department of Sociology, Jai Narain Vyas University, Jodhpur.

Development denote attempt to enrich quality of life of all. When we talk of rural development, we mean a strategy designed to improve the social and economic life of people in rural setting, specially of the rural poor and marginalized people. Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (2005), commonly known as MGNREGA, is an ambitious scheme launched by the Ministry of Rural Development, Government of India to enhance livelihood security of household in rural areas of the country by providing at least one hundred days of guaranteed wage employment in a financial year to every household whose adult members volunteer to do unskilled manual work (p.23). The present work, 'Sociological Analysis of MGNREGA' is an attempt to study the scheme and its impact on rural poor.

The theme of the book subsumes two major sub-themes. The first sub-theme, comprising chapters 1 to 3, gives a brief account of rural development in independent India in terms of various development programmes, undertaken by the Government, in general, and MGNREGA in particular. The second sub-theme (chapters 4 to 7) presents analysis of empirical data pertaining to implementation of MGNREGA and its impact on rural livelihood, migration and the challenges and opportunities towards transforming rural India and women empowerment.

The first half of this book starts with a brief introduction of various rural development programmes, ranging from Community Development Programme (1952) to National Rural Livelihood Mission (2010). The scheme of Rural Employment Guarantee is presented at length in chapter two, including mandate of the Act, its organizational structure, planning, process, execution of work, vigilance, monitoring, finance and audit, quality management and convergence of MGNREGA and other programmes.

Reviewing the status of MGNREGA in India and Rajasthan (chapter 3), the author holds the view that the present national scenario is not conducive to villagers and rural employment. Poverty, unemployment and migration are the main gigantic problems of rural society and to provide employment at doorstep of rural masses, at least for 100 days in a year, is the main objective of the government in order to reduce these problems. The author has provided ample data, mostly collected from secondary sources such as National sample Survey organizations, to show the status of MGNREGA in different states vis-à-vis in Rajasthan. He holds, rather hyperbolically, that 'MGNREGA is succeeding as a self targeting programme with high participation from marginalized groups including SCs and STs…'(p.73), 'micro level case studies indicate the positive impact of the scheme is creating sustainable livelihood…'(p.73), that this scheme is a work opportunity for women who would have otherwise remained unemployed or underemployed (p.76) and that, 'it has reduced the traditional wage discrimination in public works' (p. 76).Reports of some

researches and pilot surveys have also been made use, of whose citations find place in it (though without proper references),with a view to show that water related assets have increased the availability and amount of water in given area and hence, also the growth rate of agricultural productivity (p. 80).

The second half of the book consists of the analysis of data collected from worker and non-worker respondents, with the help of pre-tested interview schedule and non-participant observation. It is the study if 160 respondents,100 workers of MGNREGA and 60 non-workers (including villagers, mates, secretaries, Gram Sabha members and sarpanchs), selected by random sampling method from different villages of four Gram Panchayats of two districts of Rajasthan, namely Chittorgarh and Pratapgarh. Main focus of this part is on social background, awareness of MGNREGA scheme, work profile, wage structure, migration issues, rural economy and women empowerment.

It is not surprising that the majority of worker respondents, age wise, are in their 20s and 30s. Most of them belong to lower caste categories, live in kuchcha houses and are either illiterate or have a low level of education. Non-workers, on the other hand, are in a better position in all respects.

Most of the workers have sufficient knowledge of working conditions, wages, work days, available facilities at the work site etc. However, they earn less than the daily wages, depending upon the measurement of work completed. Most of them have no idea of unemployment allowance, neither have they got it.

Road construction, Pond construction, Med Bandi and Anicut are the major activities, they are engaged in. However, sustainability of the works completed is not satisfactory. Study claims that MGNREGA has lowered the migration rate but has not been able to check it completely. This scheme has increased their income and hence purchasing power. They are spending more on education, food items (groceries), health care, housing and other material assets for a comfortable life. Some families have diverted increased income to intoxicants (p. 121).

Women empowerment was not among the original targets of MGNREGA but provisions for granting priority to it in work force have increased women's participation in employment generation programmes. Monetized earning has increased consumption choices and reduced economic dependence. The adverse effect of this work participation is, however, grim in the sense that MGNREGA has radically increased the working time of women by 20-25 percent for women who were working in the labour market earlier and by 160 percent for women who were engaged only in domestic work earlier. This has radically reduced their leisure time (p.126) on the one hand and developed a tendency in adolescent girls to leave their studies so as to avail of the job opportunity under MGNREGA (p. 127). The author has concluded this study by enlisting suggestions, given by respondents, for improving the efficacy of MGNREGA programme and removing its shortcomings.

Though the book presents the scheme and provisions of MGNREGA in detail, analysis of empirical data is more in the manner of popular journalistic write-up in sweeping and generalized way than expected of a scientific analysis. For example, findings of other empirical studies and survey reports are mostly cited in text just by using the phrases like 'In a survey…', '…some studies high light…', ' A study conducted in…' without giving proper reference of author/researcher, source etc. Where authors' or researchers' name and year as references are given in parentheses, complete references of respective works have not been given either under the heading 'References' or in Bibliography (e.g. pp. 76, 88,117).

The scheme in the chapter Two has appeared as 'Mahatma Gandhi MGNREGA' many times on different pages (p. 23, 48). Further, casual use of terms and concepts and carelessness in tabulation work is evident at many places. The term 'data' has been used as singular in some explanations (e.g. p.22). As a technique of data collection pretested Schedule has been mentioned in chapter One (p.22) and Questionnaire in chapter Seven (p.128). In some places data presented in Table do not match with its text (e.g. Tables 4.1 and 4.8). Careful construction of bivariate tables, classificatory categories and presentation of data in both frequency and percentage could have made things more clear and comparable.

The difficulty in use of English language is very much seen in the recurrence of grammatical and spelling errors and incomplete sentences. 'Thus, no need to be done.'(p.93), 'respondents possessing more than card.'(p.96), 'Household small industries, besides the impact of agriculture of mechanization…' (p.133) are a few examples. Spelling errors like 'woith' (with) (p.v), 'will' (well), 'tep' (tap), (in Table 4.5), 'roll' (role) (p.93), 'there' (their) (p. 107,127) make reading a painful exercise. Proper editing could have eliminated such short comings. Nevertheless, in spite of these lapses, this book opens new areas for thorough research pertaining to different dimensions of MGNREGA and its impact on rural society.

Maitrayee Chaudhuri and Manish Thakur (eds.).
Doing Theory: Locations, Hierarchies and Disjunctions

Hyderabad: Orient BlackSwan, 2018, 378 pp. (Hardback)
Price Rs.975/-, ISBN: 9789352873647

Reviewed by Tribhu Nath Dubey

The book 'Doing Theory' is an ensemble of fifteen sociological probes traversing to question, problematize, locate and localize the making of social theory as nonwestern attempt from different vantage points of sociological and social anthropological footholds. In doing so they seek to commonly attempt to challenge 'the widely held public perception that sociology is nothing more than a statement of the obvious' and very importantly point out that 'theory matters and sociology bereft of theory ceases to be sociology'.

These fifteen academic expositions are preceded by an immaculate and elaborate introduction by the editors which orients the reader with the nuances and possibilities of different encounters of theorization and creates irresistible curiosity to jump to the chapters to gaze, feel, evaluate and admire. Admire because these theoretical persuasions are in a sense, attempts of a relatively new breed of Indian sociologists and social anthropologist except a few known and established names and gives a lot more comfort and confidence about the possibilities of debunking the theoretical hegemonies and pedigrees.

In doing so, the chapters of the volume put before us few significant understanding that:

a) No theory is ever entirely useless' nor they are 'sacrosanct and given'. Theories are 'made, critiqued, reconstituted, and deployed differentially and unequally'.

b) The institutional practice of the discipline exhibit fixed and unchanging character of established social theories and thinkers enthroned due to dominant social processes and conceptualizations.

c) The inextricable link between theory and method has become 'a miss in our dominant teaching and research'.

d) For a serious commitment to social science practice, the need for engagement with and commitment to social theory in inevitable as to question and go beyond commonsensical understanding of social reality.

e) Social theories and their persistent hegemony and 'cognitive visibility' of nonwestern theorization always have had specific historical and social context.

f) Theories emerge and travel in specific contexts as evidenced by the history of their 'varying influence' on the fields of the discipline.

g) Theories are important because some 'shape and legitimize hegemonic worldviews' upon us and some question and expose the limits of such hegemonies.

The book remarkably points out the important paradox of our time that 'social theory purportedly challenges the taken for granted' knowledge while the way social theory is done, i.e. researched and taught, reinforces commonsense knowledge. It questions the view which propagates and makes 'theories as irrelevant for the real world and stresses that this disjunction is unfortunate in the 'post truth' era of a 'commonsense theory about complex processes being the reigning ideology'.

Thus the present volume, in its attempt to bring forth and recognize 'the centrality of theory in understanding the social', structures the chapters around four important themes:

i. Theorizing the 'Indegenous', 'National', 'Local', and 'Postcolonial' in which the works of Manish Thakur, Upal Chakrabarti, Tanveen Fazal and Gyatri Nair respectively elaborate upon these theoretical categories.

ii. Disassembling Theory to understand Absences, Presences and Schisms. In this section Aardra Surendran highlights the varying influence of social theory in the context of 'renewal of industrial sociology in India' and Jesan Jayachandran explains the 'contexts, making and theorizing of Media in Indian Sociloggy'. Amites Mukhopadhyay as well as Sushree Panigrahi eloquently point out the 'rift between teaching theory and doing method in practice of sociology'.

iii. The 'disruption' of 'long held domain assumptions underlying sociology and social anthropology in Mahua Bandopadhyay's ethnographic details of prison life and sociality; 'theorizing sahajia experience' towards the 'ethnography of affect' by Sukanya Sarbadhikary and 'epistemological and ethical questions' about 'unequal knowing' by the researcher and the researched in the context of oral history form the base of discussion over 'Ethnography and Theory'.

iv. The fourth section of the book centres on the theme of 'Disjunctions, Travels and Effects' of Theory. It presents the views of Ratheesh Kumar on 'critical pedagogy and the subject matter of caste; prevalence of theoretic disjunction 'inside and outside classroom' anti caste awareness; a reflective piece by Maitrayee Chaudhuri, through 'reading theory backwards', on the way everyday discipline is taught and practiced and points out a 'given' idea of sociology which has 'laboured to focus' on the 'study of present' and in a sense ignores 'C. Wright Mills' emphasis on Sociological imagination to make sense of connections between biography and history'.

Thus, the present volume; in its attempt to pin-point the relevance to doing theory, in the classroom and research with fresh insights for 'indigenous theory' within Indian sociology and social anthropology and creating deeper awareness about the tension between the theory and commonsense and its urge to link the theory and research; is an important and compulsory reading for students, researchers and teachers of sociology. However due to the barrier of language, the book essentially communicates with the English speaking audience. The effects and dividends of the work will multiply if the book is made available in local language, particularly in Hindi.

B. S. Nagi and A. M. Khan: *Research Skill Development in Social Sciences, Communication and Management*

New Delhi: The Readers Paradise, 2017, 237, Rs. 695, 978-93-85958-87-8.

Reviewed by Gaurav Nahar, Jodhpur

Sound methodology is the first pre-requisite of any scientific study in social sciences.Quality in Research is a challenge. The authors of the book on research skills have taken up this issue and have deeply delineated common problems in the research process to help researchers, both Ph.D. students and research mentors. The introductory chapters have delineated common problems and ways of overcoming it.

The planning part of research which includes selection of area, title of research, research questions, research objectives and hypothesis has been dealt comprehensively to enrich knowledge, understanding and creative thinking of researchers for quality research. The blunders committed at planning stage affect subsequent stages of research. Therefore, understanding of every step is crucial to overcome of confusions which influence the quality of research. This has been elaborated to benefit the research scholars.The book has comprehensively dealt and explained how the common pitfalls in research process which could be prevented. It has clarified how the planning of research can be enriched.

Research skill demands considerable changes in the existing mode of research in the organizations of higher learning.The chapter 3, 4, 5 and 6 concentrate on hypothesis, design and qualitative research tools. Deliberations on these chapters with illustrations have amply simplified all the important concepts for the researchers. It would encourage researchers to carry out exercises and strengthen their research skills. Chapter 7, 8, 9 and 10 have focused on qualitative & quantitative research, its relevance & application; and how the reliability & validity could be established in both the cases. Texts in these chapters have also dealt with the prevailing myths about quantitative & qualitative research and how these two are complementary and supplementary in research.

The content analysis in 14th chapter is special to the researchers in media, communication and social research. In the quantitative research, major problems happen in sampling and data analysis and relationship between type of statistical tool & nature of data. This has been elaborated to overcome the confusion prevailing amongst researchers. Reading of these chapters (12, 13) would be highly beneficial to all the researchers. The last two chapters (14 & 15) are very crucial for quality research.

The reading of the book would enrich researchers with bulk of skills needed in quality research and publication. The book deserves special appreciation because it has really focused on most common problems and confusions prevailing amongst researchers. Its contribution will be everlasting in the form of a text book for post graduate students of Sociology and Ph.D. Scholars. It will also be very useful for social scientists working on various research projects.

Madhu Nagla: *Sociology of Health and Medicine.*

Jaipur: Rawat Publications, 2018, p. 514, Rs.450/- (Paperback) ISBN 978-81-316-0934-7.

Reviewed by Supriya Seth, Government College, Kota

Medical Sociology is a promising new branch of sociology with growing significance in the field of sociology as well as Clinical Psychology, Medical Ethics, Bioethics and Health Studies. Finding its root in mid 20th century in the interactional studies on sick persons by Talcott Parsons and getting support and momentum through key contributions of Peter Conard, Jack Douglas, David Silverman, Carl May, Anne Rogers, Debabar Banerji, Anselm Strauss, Imrana Quadeer and the likes; the field has been gaining ground as an important branch of knowledge in west as well as in India. It has also been so with growing concern for public health and efficacy of medical delivery systems.

Hence it is not only becoming a full-fledged independent course of study, it is also grown to be recognized and included as an important component of Sociology teaching at post graduate level as well as courses on Health and its allied areas. As a relatively new branch of knowledge with many isolated excellences in different sub-areas of expertise and knowledge creation; a holistic and exhaustive volume on the subject was very much needed, particularly in India; for the students, teachers and followers of the field.

As the concept of health is dynamic and has undergone multifarious changes, so is the discipline of medical sociology. In this sense, the book under review is a significant contribution as a text book because it truly tries to map the broader as well as latest picture of Health and medicine in India and tries to cover all significant aspects and subfields of the subject.

The book running into more than 500 pages consists of 32 chapters categorized into six sections giving distinct focus to the major areas of present day medical sociology. It also provides a peep into the breadth of the coverage of various issues. The broad disciplinary areas captioned as section headings in the book are:

a) Theories and Methods in Sociology of Health and Medicine,

b) Concept and Management in Health care

c) Systems of Medicine, Hospital and Social Relationship

d) Health Delivery Systems in India

e) Health Policy, Planning and Development

f) Emerging Issues in Health care

First section evidently discusses and introduces the reader to the idea and development

of sociology of health and medicine, its scope, approaches, methodologies and various dimensions of health spread over 5 separate chapters. The section on Health Care Management discusses the concept and issues of social and preventive medicine, Public health, Community health, social epidemiology, Health promoters and Health Care Communication.

Section third carries and documents much needed discussion of Medical Pluralism in India with elaborate focus on Indigenous and Alternate systems of medicine with its history, types, practice and acceptance. It also discusses Hospital as a social system, various aspects of doctor-patient relationship as well as drug policy and pharmaceuticals development in India.

Health care delivery is the key and central aspect of people's health and wellbeing in a country. The concerning section spread over five chapters diagnoses public health care delivery in India mired with rural-urban divide and privatization as well as highlights the role of NGOs and social workers as key facilitators in care delivery. Health sector reforms to bring about structural and organizational changes to provided sufficient preparedness and capability to the care delivery system in India is not possible without central planning and policy measures. Thus the fifth section of the book aptly reviews constitutional and policy measures taken up in India. The section is also rightfully supplemented with impact of globalization and issues of ethics in health care.

The last section discusses some important emerging Health Care issues in India such as Reproductive health care, Relation between Environment and Health, Food and nutritional security in India, Role of Technology in Medicine and health care, adoption and critique of Health Insurance and lastly various aspects of Medical and Health tourism in India.

All the chapters in the book elaborately and lucidly deal with relevant concerning key concepts with updated and recent research contributions, which is likely to give improved clarity and generate interests among students, researchers and teachers. The extensive references appended in each of the chapters would also help sustain the interest and provide further impetus for additional reading and probe on the relevant topics.

The book can be said to be well structured and documented with meaningfully interweaving of concepts and issues. The language and explanations of the textbook is lucid with enviable academic flavour. It takes a long engagement and sustained pursuit of a determined teacher and researcher to do justice with a textbook like this which has so diverse scope and spread. Undergraduate students will find it equally enchanting and enriching as would the postgraduate students and teachers. It (paperback version) is also optimally priced in the favour of students and readers. The book meets the long awaited need of English medium students. Similar effort is needed for Hindi medium students too as their number is equally large but most often shy away from the subject due to unavailability of quality books and references in their language.

N.K.Bhargava (ed.): *Analyzing Social Change and Development in India*

Udaipur: Himanshu Publications, 2018, ISBN No. 978-81-7906-689-8

Reviewed by Sudeshna Parija

The book analyses a compilation of eleven articles based on empirical findings and as presented in Research Committee 15 of the Indian Sociological Society. The emerging complexities in social phenomenon and their dynamics with regard to five broad areas namely; Dalits/ Tribes, Gender, Students, Rural Economy and Environment/ Health have been analysed deeply.

Regarding Dalit/ Tribes, B.N Prasad points out that the attempts for elimination of social inequalities and social exclusion of Dalits through reforms have created the ground for their assertion thereby impacting on the rural social structure but the desired goal is yet to be achieved. G. Ram and Suresh Sahu have observed gradual social change among SC's in Assam manifesting in the form of educational and occupational mobility thus impacting on the institutions of marriage and family. In a similar vein, Amrisha Narayan and Chitra Bargohain have drawn attention on the identity crisis among Tai Khamyang tribals in Assam. The ideological thought processes among these tribals have undergone changes as a result of interaction with non-tribals; yet they are uncertain about their acceptance by others outside their community. Likewise, Sampat Kale observes that the vulnerable tribes of Maharashtra have become culturally distinct groups due to migration and acculturation. But new dimensions which require sociological analysis have emerged due to adoption of urban culture.

Discussing Gender issues, P.C. Jain observes that tribal women who face challenges boldly in managing their families are essentially intimidated by the supremacy of males outside their communities. Similarly, Kushal Deep maintains that widows are considering remarriage as a viable option in contemporary society while at the same time traditional norms through family and society do not allow for free decision making by widows.

Discussing the issues related to students and youth, Vinita Lal asserts that the world has shrunk due to better connectivity although traditional cultural forms are losing popularity and moral values are changing. Anirban Banerjee has analysed the nature/ role of the radical student movement in JNU New Delhi and the role of the state within democracy.

Observing changes in the rural economy, Prarthana Barua has noticed the growing popularity of tea cultivation among peasantry in Assam. Tea cultivation has offered new economic avenues with a noticed improvement in the socio-economic standards. Drawing attention to another aspect of the rural economy, G. Ram and Pinki Adhikari observe that intense land use, deforestation, cultivation and livelihood for commercial purposes have invited natural disasters like floods which have taken their toll on the rural economy.

The fifth area of change relates to health and Environment. D. K.Singh observes that adverse economic conditions adversely affect health and cleanliness. These problems can be resolved by developing awareness and consciousness among people.

The book provides a deep insight into various aspects of transformation as occurring in the structural forms in the contemporary Indian society. An overview of the impact of the policies framed and their implementation is neatly presented. The analyses of empirical data are useful for researchers, students, academicians and policy makers.

Veena Dwivedi, Avnish Nagar: *Gender Discrimination and Harassment of Women at Workplace*

Udaipur : Himanshu Publication, 2015 Rs. 1295, ISBN : 978-81-7906-518

Reviewed by Manish Yadav
Assistant Professor, Department of Sociology, University of Rajasthan, Jaipur

The present Book on 'Gender Discrimination and Harassment Of Women At Workplace ' is certainly revealing, as it is fairly a large body of work addressing the concerns pertainingto harassment and gender discrimination and the ways to make the environment free from such forms of violence.

This comprehensive collection of papers is absolutely academic in tone and is intended suitable for both general as well as specific reading audience particulaly Administrators, Policy Makers, Criminologists, Social Workers, Managers, Sociologists, Psychologists, Academicians, people working with NGO's, Teachers and even Students, as it helps to provide them with the tools to understand the scope and extent of harassment and sex discrimination. Also, the complex ways in which these can cause very long lasting effects on victims psyche.

The publication caters to the needs of both English and Hindi readers through its wide range of articles. The contents of the publication are divided into 4 parts which largely covers issues on Gender Discrimination, Women Empowerment, Harassment of Women at Workplace, Constitutional Provisions and lastly few Hindi articles dealing with issues like Gender Violence, Women Rights, Empowerment, Gender Sensitization and their Political and Social Aspects.

While Sexual Harassment exists in myriad forms, it is argued that women who transcend traditional support roles in the workplace or otherwise challenge male authority, are most likely to become conscious of sexual harassment and sex discrimination. Adding to it, the readers will also understand as to how harassment and gender discrimination is not a simple matter. It has grave consequences for both victims and the environments in which they work. The author in the article entitled “Women in the Corporate World: A Reality or a Myth” argues that globalization has brought influx of multinational corporations to India and has increased opportunities for women entering the workforce like Advertising, Banking, Civil Services, Engineering, Armed Forces, Financial Services etc which have remained the domain areas of men. These women want to become more conscious about the voice of their own identity and are particularly more capable, confident, competent and assertive.Women in corporate India are aware of the constraints they work under and obviously try to make the best of the bargain. These women bear a disproportionate amout of responsibility at workplace and home but towards the epitome of their career they bring with them both silver lining and dark clouds.

While much of the discussion here is focused on victims and their rehabilitation,one may raise questionor argue as to why the perpetrators are also not seen as psychologically disturbed and thus require treatment and/or removal from the workplace. One of the reasons why the workplace continues to remain so discrimatory is because abusive and unfair behaviour is tolerated.

Readers may find this book at times repetitive, but this is probably a virtue. Few readers

of this book will read it from cover to cover. Instead, it is likely used by most of its readers as a reference book to understand and explain the different facets of the gender perspectives and their/its concerns particularly in context of discrimination of work and working conditions in Organised and Unorganised Institutions.

Oddly, the book has no conclusion. The lack of any conclusion to this book is in my view is significant. The authors of this book care about harassment and treat it as a serious problem. They do not, for most part, aspire to a false bipolar objectivity and treat harassment as a contest between accuser and accused.

The greatest achievement of this work is its thoroughness. Readers will be benefitted on number of issuesthat have been well put on a single platter ranging from women's movement in Indian perspective to Gender Sensitization Programmes and Policies in India mainly related to Women Harassment. Also, addressing the role and functioning ofGender Harassment Committees in different organisations, assessment of social interventions for women's social security and finally assessing the problems arising due to gender discrimination and harassment at workplace and suggesting possible solutions through pragmatic action plans. This is well explained in the Chapter entitled "Are Work Place Safe for Women: A study of Various Instances of Sexual harrasment at Work Place". The author argues that most of the cases of sexual harrasment remains unreported particularly in case of Indian due to the lack of sensitivity and disencouragement to report any form of Sexual Harrasment at work place because of the patriarchal setup. The author has provided statistical references and case studies to support discrimination regarding Sexual Harrasment at workplace. The author suggests that Police and Judiciary in particular must be gender sensitised and in order to create a safe and harrasment free work environment,guidelines for sexual harrasments should be clearly laid down and redressal mechanism should be made more effective. It is also suggested by the author that at least once a year the workplace should conduct training sessions for employees involving both male and female staff including supervisors and managers so as to educate employees regarding the different aspects of Sexual Harrasment and the ways to deal with complaints.

In my humble opinion, this book provides an important startling point for anyone interested in researching and drawing their conclusion about harassment conditions and gender discrimination at workplace.

Mridula Bairwa: *Blindness among Tribals.*

Udaipur, Himanshu Publications, 2018, P. 112, Rs. 695/- ISBN: 978-81-7906-726-0.

Reviewed by Anant Sharma
MS University, Vadodra, Gujrat.

Book entitled "Blindness among Tribals" is a comprehensive work which deals in the field of anthropology, sociology of health and Medicare of sociology among the tribal's of Rajasthan. The present book has tried to explore and underline the various social, cultural, demographical, and economical aspects and factors responsible for the increasing percentage of the problem of blindness (cataract) eye diseases among the tribal population of southern Rajasthan. Present study is very significant in the light of the Right to Sight the common agenda of the WHO which aimed to eliminate avoidable blindness by 2020. Under mentioned book is modified and revised version of her Ph.D. work.

The book contains eight different chapters which explain the problem of blindness and other eye related diseases. The first chapter speaks about the concept of tribe and its related aspects like habitat, livelihood, demographic distribution, social organization of the tribes etc. Second chapter make us to understand the conceptual framework for analyzing and understanding the problem of "Blindness among Tribals" from socio-cultural perspective.

Present subject related studies are reviewed in Chapter three. This contains various studies done by the researcher which has helped to the researcher in developing conceptual framework for the present study. Chapter four focuses on the complete research design and methodology used by the researcher for collecting the primary qualitative data. Author has undertaken various case studies which have added the qualitative information so to have a deep insight into the problem.

The level of visual impairment in relation to gender, age, place of residence, duration of treatment barriers and access to eye care services with reference to distance, transportation, awareness of eye donation, vitamin A is explore in chapter fifth.

Major objectives of the study on eye care beliefs, practices, traditional Healings methods and obstacles for treating eye diseases(Cataract) and blindness is covered in chapters six & seven which help us in understanding the various responses (acceptive/ rejective/mixed) towards the problem and its treatment. These chapters also focus upon the role of govt. health care programmes and its functioning for the patients sufferings from blindness in particular and other health issues in general.

The last chapter of the book focuses upon the role of govt. health care programmes and its functioning for the patient's sufferings from blindness in particular and other health issues in general. This research work also suggested some ideas and measures which will help policy makers to understand the severity of the problem and help in executing solutions to the discussed problem.

Author has tried her best capacities and limitations to address this pertinent issue nicely in present book. This piece of work will definitely add a new framework to the existing stock of knowledge in the field of Social Anthropology, Sociology of medical & Health care. This work will also help the policy makers, students and experts of the subject to understand and address the health related issues among the tribal's.

ज्योति गौतमः *भारतीय समाज में जेन्डर संरचना*

उदयपुर, हिमांशु पब्लिकेशन, 2017, पृष्ठ 169, मूल्य रू., 450/–ISBN: 978-81-7906-660-7

समीक्षकः मोनिका नागोरी,
समाजशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रस्तुत पुस्तक जेन्डर के प्रश्नों से संबंधित है। जेन्डर से संबंधित कई प्रश्न पुस्तक में सम्मिलित किए गए हैं। विभिन्न अध्यायों के विषय इस ओर इंगित करते हैं कि पुस्तक का मुख्य केन्द्र जेन्डर संरचना पर है। जैविकीय सामाजिक वृद्वि से जेन्डर शब्द कैसे उभरा ? उसके विविध आयाम क्या हैं ? भारतीय समाज में महिलाओं की क्या स्थिति है ? इस विभेद को कैसे समझा जा सकता है ? पिछले कुछ समय से क्या इसमें कोई परिवर्तन आया है ? ये सब वे बिन्दु हैं, जिनका समावेश इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक को भारत में और विशेष रूप से हिन्दी में जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, वह एक सफल प्रस्तुति है।

जैविकीय और सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से दो परस्पर विरोधी यौन प्रतीक सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से परस्पर संबधित हैं, लेकिन दूसरी और इनमें विभिनताएं भी हैं। दोनों के बीच के अंतरों की व्याख्याएं भी बहुत की गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन अंतरों की भी व्याख्या है जो वर्तमान में विद्यामान हैं। पुस्तक में इन अंतरों के विश्लेषण की भी व्याख्या है।

जैविकीय दृष्टि से समाज को निरन्तर चलाए रखने के लिए केवल पुरुष की ही आवश्यकता नहीं होती वरन् महिला की भी उतनी ही आवश्यकता होती है। स्वतन्त्र भारत में महिलाएं पुरुष से कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही हैं और देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक विकास में महत्वपर्ण भूमिका निभा रही हैं।

ज्योति गौतम ने अपनी पुस्तक में जेन्डर का विश्लेषण, नारीवादी विचारों की उत्पति, महिलाओं के कार्य, महिला सशक्तीकरण में कानून का योगदान तथा महिलाओं के आन्दोलन की व्याख्या करते हुए महिलाओं की परिवर्तित प्रस्थिति की व्याख्या की है। दस अध्यायों के अन्तर्गत जेन्डर संरचना का विश्लेषण किया गया है। सामाजिक सन्दर्भ में जेन्डर की बात करते समय लिंग और लिंग की भूमिका के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। लिंग की भूमिका में महिलाओं को आर्थिक रूप में श्रम की व्याख्या से जोड़ा गया। इसके अतिरिक्त धर्म, संस्कृति, विवाह, सम्पत्ति, पर्दा प्रथा, विधवा महिलाएं, महिला आरक्षण आदि लैगिंक असमानता में मुख्य भूमिका अदा करते हैं। जेन्डर संरचना को जानने के लिए उस समाज में महिलाओं की ऐतिहासिक प्रगति और नारी जागृति के लिए विभिन्न समाज सुधारकों के प्रयासों की व्याख्या की गई है। साथ ही सामाजिक संस्थाओं जैसे परिवार और धर्म में प्रकार्यवादी उपागम एवं मार्क्सवादी उपागम् और नारीवाद को समझने के लिए अन्य अध्ययन उपागमों का विश्लेषण किया गया है। महिलाओं में सशक्तीकरण के परिप्रेक्ष्य को जानने के लिए कार्य सहभागिता एवं कार्य सहभागिता दर के आंकड़ों को प्रस्तुत करते हुए समय के आधार पर अलग–अलग वर्षों की तुलनात्मक जानकारी दी गई है।

महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया एवं सरकारी–प्रयासों की विवेचना करते हुए महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं एवं सम्बन्धित अधिनियम जैसे सम्पत्ति उत्तराधिकार, भरण–पोषण, विवाह–विच्छेद, बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह, शरीयत अधिनियम, महिलाओं एवं कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम आदि का उल्लेख किया है। भारत में महिला आन्दोलन को चार चरणों में स्पष्ट किया गया है। प्रथम चरण स्वत्रन्ता के पहले एवं द्वितीय, तृतीय चरण व चतुर्थ चरण स्वतन्त्रता के बाद के आन्दोलन के दिए हैं। पुस्तक के अन्त में भारत में महिलाओं की परिवर्तित प्रस्थिति दी गयी है। स्वाधीनता के पहले एवं स्वाधीनता के बाद की स्थिति और बदलाव की विभिन्न एजेन्सियों को बताते हुए

जनसंख्यात्मक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के साथ देश की महत्त्वपूर्ण महिलाओं की सूची भी दी गई है।

पुस्तक की समीक्षा में कहा जा सकता है कि प्रत्येक अध्याय के बाद यदि सन्दर्भ दिए जाते तो अधिक उपयोगी होता। अध्यायों के अन्त में केवल पुस्तकों की सूची ही दी गई, कॉपी राइट के तहत पुस्तक की पृष्ठ संख्या दी जानी चाहिए थी। साथ ही, जेन्डर सरंचना मे पितृसत्तात्मक परिवार, समाजीकरण की व्याख्या एंव आन्दोलन की कमियों की ओर ध्यान केन्द्रित कर विषय समाग्री में इन्हें सम्मिलित करना चाहिए था। महिला सशक्तीकरण में विकास नीतियां, उदारवाद, एवं वैश्वीकरण की व्याख्या की जानी चाहिए थी, जिससे एक नई दिशा प्राप्त होती। भारत में महिलाओं की परिवर्तित स्थिति में जेन्डर विलम्बना, जाति एवं जेन्डर, वर्ग एवं जेन्डर और हर राज्य में स्वंयसेवी संस्थाओं की भूमिका का उल्लेख होना चाहिए था। महिलाओं की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारक स्वास्थ्य, शिक्षा, सम्प्रदायवाद, मीडिया की विवेचना, जेन्डर संरचना और विकास में आवश्यक है। इनके विश्लेषण का अभाव पुस्तक में देखा गया।

पुस्तक के अन्त में यदि शिक्षाशास्त्र या अध्ययनशास्त्र का उल्लेख होता कि महिलाएं ही नहीं पुरुष भी जेन्डर का विषय पढ़ें और नारीवाद तथा महिलाओं की शक्ति पर बातचीत, विमर्श अर्थात् 'डिसकोर्स' होते तो अधिक उचित रहता। यह विवेचन आवश्यक है कि हर क्षेत्र, संस्कृति, वर्ग व धार्मिक समुदाय में महिलाओं के लिए असामानता का दृष्टिकोण क्यों है? जेन्डर के मुद्दों को प्रत्येक पाठयक्रम में जोड़ने की भी आवश्यकता है, जिससे जागरूकता एवं जनचेतना आ पाएगी, परन्तु सैद्धान्तिक जागृति ही पर्याप्त नहीं है, व्यवहारिक रूप में भी समानता का दृष्टिकोण लाने की आवश्यकता है, जिसके लिए शिक्षाविदों और समाज सुधारकों को और प्रयास करने होंगे।

बरदी चन्द ऐरवालः *अनुसूचित जातियों पर छात्रवृत्ति का प्रभाव.*

जयपुर, साहित्यागार, शीतल ऑफसेट, जयपुर, 2018, पृ. 288, मूल्य–600रू.,
ISBN-978-81-7711-606-9

समीक्षकः सुमित्रा शर्मा,
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रस्तुत पुस्तक बरदी चन्द ऐरवाल के पीएच.डी. शोध प्रबन्ध का परिष्कृत स्वरूप है। इस पुस्तक में लेखक ने अनुसूचित जातियों पर छात्रवृत्ति के प्रभाव का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। मानव जीवन में शिक्षा का बहुत अधिक महत्त्व है। शिक्षा मनुष्य को जहां विनय, पात्रता एवं धन उपलब्ध करवाती है, वहीं उसमें उद्यमशीलता, साहचर्य एवं उत्साह का संचार भी करती है। भारतीय समाज में अनुसूचित जाति समूह वंचित समूह है, इसका प्रमुख कारण सामाजिक एवं भौगोलिक पृथक्करण तथा सामाजिक और आर्थिक आधार पर उन्हें उपेक्षित किया जाना रहा है। अतः अनुसूचित जातियों के कल्याण व विकास के लिए कई संवैधानिक सुरक्षा के उपाय भी किए गए। अनुसूचित जातियों के लिए भारतीय संविधान में शिक्षा एवं रोजगार में आरक्षण एवं छात्रवृत्तियों का प्रावधान किया गया जिससे यह वर्ग अपनी क्षमताओं को पहचान कर उत्साह से समाज के सामाजिक विकास में सहभागिता प्रदान कर सके।

पुस्तक में मुख्य रूप से नौ अध्याय हैं और अंत में परिशिष्ठ एवं ग्रन्थ सूची संदर्भिका है। यह पुस्तक लेखक द्वारा राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के राजकीय महाविद्यालयों के विद्यार्थियों पर किए गए आनुभाविक अध्ययन पर आधारित है। समाज के कमज़ोर वर्ग के लिए शिक्षा का विशेष महत्त्व है, क्योंकि सदियों से उनकी निरक्षरता एवं सामाजिक पिछड़ेपन को उनके आर्थिक शोषण, पीड़ा और अवमानना के

लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है। अनुसूचित जाति समूह की समस्याएं परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों रूपों में सवर्ण जातियों से पृथक हैं, अतः इस पुस्तक में लेखक ने सर्वप्रथम जाति आधारित समाज में विकास एवं संरचित निर्योग्यताओं के साथ ही जातिगत परम्पराओं एवं रूढ़ियों का विवेचन किया है। इसी क्रम में स्वतंत्रता के पश्चात् अनुसूचित जातियों को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों, सुविधाओं, रियायतों एवं आरक्षण संबंधी प्रावधानों का भी समीचीन विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन में भीलवाड़ा जिले के चार राजकीय महाविद्यालयों के अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का स्तरीकृत निदर्शन विधि एवं तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के द्वारा अध्ययन किया गया है। महाविद्यालयों के विद्यार्थियों का संकाय के आधार पर, ग्रामीण एवं नगरीय आधार पर, अनुसूचित जाति एवं गैर अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के आधार पर, अनुसूचित जाति के अन्तर्गत लैंगिक आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। लेखक द्वारा अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को देय विभिन्न छात्रवृत्तियों का विस्तृत विवरण दिया गया है, जो अध्ययन विषय की गहनता एवं उसके महत्त्व को प्रकट करता है। राज्य सरकार द्वारा सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग के माध्यम से शैक्षणिक विकास हेतु अनेक योजनाएं संचालित की गई हैं, जिनमें छात्रवृत्ति योजना, अनुप्रति योजना, बुक बैंक योजना आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, अनुसूचित जातियों के शैक्षणिक विकास, सामाजिक न्याय एवं सशक्तीकरण हेतु केन्द्र प्रवर्तित विविध योजनाओं, शीर्ष स्तर की शिक्षा के लिए दी जाने वाली छात्रवृत्ति, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्तियां जैसे राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप, पोस्ट डॉक्टरल फैलोशिप आदि की विस्तृत जानकारी दी गई है, जो कि अनुसूचित जातियों के शैक्षणिक स्तर को उच्च करने की दिशा में उठाया गया सराहनीय कदम है।

लेखक ने उत्तरदाताओं की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक पष्ठभूमि पर प्रकाश डाला व पाया कि अनुसूचित जाति में छात्रवृत्ति के लाभार्थियों में खटीक जाति के विद्यार्थियों की संख्या तुलनात्मक रूप से अधिक है। छात्रवृत्ति प्राप्त करने के संदर्भ में ग्रामीण क्षेत्र के अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की संख्या नगरीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है। कस्बों व नगरीय क्षेत्रों में पुरूष विद्यार्थियों की तुलना में महिला विद्यार्थियों का प्रतिशत अधिक है। आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवारों के विद्यार्थियों की संख्या अधिक है। संकाय के आधार पर विद्यार्थियों की संख्या में कोई बड़ा अन्तर नहीं है।

विद्यार्थियों की पारिवारिक स्थिति व शिक्षा के साथ ही विद्यार्थियों को अध्ययन में आने वाली कठिनाइयों की भी लेखक ने चर्चा की है। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के अधिकतर परिवारों में अशिक्षा होने से वे आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर हैं। निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति होने के कारण उन्हें कई प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें अध्ययन के पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं हो पाते। आर्थिक स्थिति कमज़ोर होने के कारण उन्हें व्यवसाय में लगना पड़ता है। सबसे बड़ा मुद्दा अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को शहर व कस्बे में किराये का मकान मिलने के संदर्भ में है। कमज़ोर आर्थिक स्थिति, घर–परिवार का अशैक्षणिक वातावरण, निवास स्थान से शिक्षण संस्थानों की दूरी, अध्ययन सामग्री की अनुपलब्धता, प्रशासनिक स्तर पर छात्रवृत्ति संबंधी समस्याएं आदि कठिनाईयों का अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी शिक्षा पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

अनुसूचित जाति एवं गैर अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का तुलनात्मक अध्ययन विषय की गंभीरता को प्रकट करता है, जिसके आधार पर विभिन्न सामाजिक विभेदकारी व्यवहार एवं प्रस्थितियों के मूल को आसानी से समझा गया है। गैर अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की संख्या की तुलना में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। अनुसूचित जाति की महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है, लेकिन इस दिशा में अभी और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है।

शिक्षा के कारण विद्यार्थियों के जीवन में कई तरह के परिवर्तन आते हैं जैसे, रहन–सहन, खान–पान, पहनावा, बोलचाल की भाषा आदि में तथा शिक्षा के कारण विद्यार्थियों की महत्त्वाकांक्षाओं में भी वृद्धि हो जाती है। अनुसूचित जाति के विद्यार्थी अपने पैतृक व्यवसायों को त्यागकर सरकारी एवं निजी क्षेत्रों में नौकरी करने लगे हैं या स्वयं का व्यवसाय करने लगे हैं, जिससे उनकी सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति में परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है। वे भेदभावों के प्रति जागरूक तो हो ही रहे हैं, साथ ही भेदभावों का विरोध भी करने लगे हैं। सामाजिक–आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने से उच्च जातियों से सामाजिक दूरी कम हो रही है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी छुआछूत की भावना विद्यमान है।

छात्रवृत्ति की उपयोगिता के संदर्भ में लेखक का मत है कि अनुसूचित जाति के कई परिवार अभी भी आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर हैं, अतः सरकार द्वारा केन्द्र प्रायोजित उत्तर मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना द्वारा उन्हें आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है। जिससे वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। यह आर्थिक सहायता सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग के माध्यम से नियमित अध्ययनरत विद्यार्थियों को दी जा रही है। छात्रवृत्ति के कारण उच्च शिक्षा पूर्ण कर ये विद्यार्थी सरकारी नौकरी प्राप्त कर रहे हैं व सरकारी योजनाओं का लाभ भी उठा रहे हैं। अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति शिक्षा तक उनकी पहुंच को सरल व सुगम बना रही है। छात्रवृत्ति प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों को लेखक ने तीन श्रेणियां में विभाजित किया है प्रथम, वे विद्यार्थी जिन्हें अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति की आवश्यकता है, द्वितीय, वे विद्यार्थी जो छात्रवृत्ति की राशि को अतिरिक्त खर्चे के रूप में व्यय करते हैं और तृतीय, वे विद्यार्थी जिन्हें छात्रवृत्ति की आवश्यकता नहीं है फिर भी वे छात्रवृत्ति प्राप्त कर रहे हैं और उसका दुरूपयोग करते हैं। लेखक ने अन्त में छात्रवृत्ति के संदर्भ में आने वाली कठिनाईयों, उसके उचित उपयोग के लिए एवं जरूरतमंद विद्यार्थियों को इसका उचित लाभ मिल सके इसके लिए अपने बहुमूल्य सुझाव भी दिए हैं जो इस अध्ययन की सार्थकता को सिद्ध करते हैं। इस पुस्तक में लेखक का अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों पर छात्रवृत्ति के प्रभावों का अध्ययन उसकी ईमानदारी एवं अथक प्रयासों को दर्शाता है, जो इस दिशा में एक सार्थक प्रयास है।

श्याम एस. कुमावतः *सामाजिक विचारक एवं विचारधारा–कार्ल मार्क्स.*

उदयपुर, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2018, पृष्ठ 164, मूल्य रू.695,
ISBN 978-81-7906-671-0

समीक्षकः श्रुति टण्डन,
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

मार्क्स तब तक याद किए जाते रहेंगे, जब तक उनका विरोधी अर्थात् 'पूंजीवाद' अस्तित्व में है। लेखक श्याम एस. कुमावत की पुस्तक सामाजिक विचारक एवं विधारधारा – कार्ल मार्क्स में उनकी ये पंक्तियां पाठकगण का ध्यान बरबस ही आकर्षित करती हैं। यों तो वैज्ञानिक साम्यवाद के संस्थापक एवं आधुनिक समाजवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, दर्शनशास्त्री और राजनीति विज्ञानी के रूप में प्रतिष्ठित नाम है, परन्तु इस पुस्तक में लेखक ने उनके जीवन के उन अप्रकट पक्षों को भी उजागर करने का प्रयास किया है, जिन्होने उन्हें 'श्रमिकों का मसीहा' बनाया। लेखक ने मार्क्स के इस आधार वाक्य को स्वीकारा कि मनुष्य के समूचे चिंतन और कर्म का नियमन उसके जीवन की भौतिक आवश्यकताएं करती हैं और इसी विश्वास को समर्पित करते हुए उन्होने इस रचना को पूर्ण किया।

नौ अध्यायों और 164 पृष्ठों में लिखी गई यह पुस्तक कार्ल मार्क्स के जीवन और चिन्तन से प्रारम्भ होकर वर्तमान सदी में मार्क्सवादी विमर्श की बात करती है। मार्क्स के जीवन और चिन्तन पर घटित हुई परिस्थिति की जानकारी प्रथम अध्याय में प्राप्त करने के बाद आगे के अध्यायों में उनके द्वारा प्रतिपादित सद्धान्तों की विस्तृत चर्चा को समझना सरल हो जाता है, चाहे वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से जुड़ी हो, ऐतिहासिक भौतिकवाद से, पूंजीवाद से या वर्ग संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन से। पुस्तक में लेखक ने मार्क्स के धर्म पर, भारत पर एवं समाजवादी समाजों में वर्ग पर प्रकाश डालते हुए वर्तमान सदी में मार्क्सवादी विमर्श की भी बात रखी है।

अध्याय 'एक' के अन्तर्गत कार्ल मार्क्स के जीवन और चिन्तन पर प्रकाश डाला गया है। इस खण्ड में लेखक ने उनके जन्म से मृत्यु तक के सफर की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को सिलसिलेवार लिखा है। इस अध्याय में मार्क्स की विकास यात्रा में हीगल के विचारों का प्रभाव और ऐन्जिल्स से मित्रता का और उनकी रचनाओं होली फैमिली और 'जर्मन आइडियोलॉजी' का बड़ा ही रोचक वर्णन है। 'कम्युनिस्ट संवाद समिति' की स्थापना और कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो का वर्णन स्पष्ट करता है कि इस घोषणा पत्र से ही वैज्ञानिक समाजवाद का युग प्रारम्भ होता है। दास कैपिटल तथा उनकी अन्य प्रकाशित पुस्तकों, पत्रों और लेखों का भी वर्णन सिलेसिलेवार इस अध्याय में किया गया है। इस अध्याय का विशेष आकर्षण उन 14 महत्वपूर्ण रचनाओं का सार है जो मार्क्स की वैचारिक दृढता को स्पष्ट करती हैं।

कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो वस्तुतः मार्क्स के विचारों का व्यावहारिक प्रारुप है। मार्क्स की व्यवस्था का समाज कैसे स्थापित होगा? एकता, संघर्ष और समाज की स्थापना को इन संदर्भों में स्पष्ट किया गया है।

अध्याय 'दो' में मार्क्स के प्रतिष्ठित सिद्धान्त द्वन्द्ववाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विस्तार से चर्चा की गई है। मार्क्स के अनुसार समाज के विकास का स्वरूप भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी है। वे कहते हैं कि समाज की सामाजिक संरचना आर्थिक दृष्टिकोण से ही निर्धारित होती है। उन्होंने हीगल के द्वन्द्ववाद; वाद–प्रतिवाद और संवाद को तो उसी रूप में स्वीकार किया परन्तु मार्क्स हीगल के इस तर्क से असहमत थे कि विचार ईश्वर भेजता है। इस प्रकार से लेखक ने बड़े ही सरल रूप में मार्क्स के इन सिद्धान्तों को स्पष्ट करने का प्रयास किया जिसमें उन्होने चित्र भी बनाए हैं। हालांकि इन्हें समझाने के लिए अंग्रेजी के साथ ही हिन्दी का प्रयोग भी होता तो अधिक उचित रहता।

अध्याय 'तीन' में लेखक ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की विस्तार से चर्चा करते हुए बताया है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद वह वैज्ञानिक सिद्धान्त है जो सामाजिक विकास के सर्वमान्य नियमों का अध्ययन करता है। इस अध्याय में उन्होने ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त, आर्थिक सम्बन्ध, समाज की आर्थिक संरचना – उत्पादक शक्तियां तथा उत्पादन सम्बन्धों की द्वन्द्वात्मकता पर प्रकाश डाला है। समाज में ऐतिहासिक विकास की अवस्थाओं को चार्ट द्वारा समझाते हुए लेखक ने स्पष्ट किया है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास का वह सामान्य नियम है जो आर्थिक आधार एवं अधिसंरचना के बीच सम्बन्ध, सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष, सामाजिक उद्विकास में क्रांतिकारी परिवर्तन एवं सामाजिक प्रगति आदि मान्यताओं पर आधारित है।

अध्याय 'चार' में 'पूंजीवाद और वर्ग' और अध्याय 'पांच' में 'वर्ग संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन' के सिद्धान्तों का वर्णन है। मार्क्स के विचारों में वर्ग की धारणा का केन्द्रीय स्थान है परन्तु उन्होने कहीं भी बहुत विस्तार से यह नहीं लिखा है कि वर्ग किसे कहते हैं ? वर्ग पर मार्क्स का दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा कि उत्पादन की संरचना समाज को दो विभिन्न वर्गों में विभाजित कर देती है। अध्याय 'चार' में पूंजीवाद की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए लेखक ने पूंजीवादी समाज में वर्ग को स्पष्ट किया और अध्याय 'पांच' में पूंजीवादी समाज में वर्ग संघर्ष के अनिवार्य कारणों को बताते हुए अतिरिक्त मूल्य, स्वत्वहरण की प्रक्रिया और अलगाव को समझाया है। वर्ग संघर्ष का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत कर लेखक ने वर्ग विहीन समाज की चर्चा को आगे बढ़ाया है। हालांकि लेखक ने पुनः चित्र का प्रयोग

कर समझाने का प्रयास किया पर कहीं–कहीं हिन्दी शब्दों का प्रयोग नहीं होना सिर्फ हिन्दी भाषी पाठकों के लिए कठिन होगा।

यूं तो वर्ग और मार्क्स कहने से ही मार्क्स का चिन्तन प्रकट हो जाता है लेकिन लेखक ने इससे आगे बढ़ते हुए अध्याय 'छः' में धर्म के बारे में और अध्याय 'सात' में भारत के बारे में मार्क्स को विचारों से भी अवगत कराया है। अध्याय 'छः' में उस घटना का वर्णन है, जिसके कारण उन्होने धर्म को अफीम की संज्ञा दी थी। लेखक ने इस अध्याय में यह स्पष्ट किया कि 'धर्म' उनके लिए आर्थिक संरचना पर आधारित एक वैचारिक अधि संरचना है। लेखक का मानना है कि मार्क्स ने धर्म के खिलाफ बल प्रयोग करने से सम्बन्धित अराजकतावादियों के प्रयासों की भर्त्सना की। साथ ही धर्म के स्थान पर विज्ञान को महत्त्व दिया।

भारत पर मार्क्स के विचारों को अध्याय 'सात' में स्पष्ट करते हुए लेखक कहते हैं कि उन्होने भारत में साम्राज्यवाद की भूमिका को समझने के लिए पहले उसका ऐतिहासिक विवेचन किया। लेखक के अनुसार भारत पर अधिकार कर लेने के बाद अंग्रेजों ने भारतीय समाज के सम्पूर्ण ढांचे को ही तोड़ डाला और उसका पुनर्गठन नहीं हो सका। मार्क्स ने यातायात और संचार के साधनों के क्षेत्र में की गई प्रगति को महत्त्वपूर्ण बताया। उनके अनुसार यद्यपि इनका पूर्णतया विकास पूंजीवाद की एक अनिवार्य आवश्यकता है, लेकिन दूसरी ओर ये परिस्थितियां अंततः भारत में एकता लाने में सहायक होंगी। लेखक द्वारा भारत पर मार्क्स के विचारों को प्रकट करने का एक सफल प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

अध्याय 'आठ' में समाजवादी समाजों में वर्ग की चर्चा करते हुए लेखक स्वीकारते हैं कि प्रकृति में निरन्तर द्वन्द्वात्मकता एवं परिवर्तन का नियम शाश्वत है और साम्यवादी समाजों में नए वर्गो का उभारना यह प्रमाणित करता है कि वर्ग विहीन समाज की मार्क्स की अवधारणा मात्र एक आदर्शवादी अवधारणा है। अंत में लेखक का मानना है कि समाज में असमानताएं और वर्ण व्यवस्था समाप्त नहीं हो सकतीं, इनके स्वरूपों में बदलाव अवश्य आ सकता है, जो कि पाठकों के लिए समसामयिक अनुभव है।

लेखक बेबाकी से अपनी बात रखते हुए कहते हैं कि समाजशास्त्रीय अध्ययनों में आज भी मार्क्स के विचार एक ऐसी चुनौती बने हुए हैं कि कोई भी विचारक इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। शायद इसी कारण उन्होने अंतिम अध्याय 'नौ' समर्पित किया वर्तमान सदी में मार्क्सवादी विमर्श को। लेखक के अनुसार बीसवीं सदी के आखिरी दशक में हुए सोवियत संघ के ध्वंस और पूर्वी यूरोप की कम्युनिस्ट सरकारों के पतन के बीस साल बाद मार्क्सवादी विमर्श ने एक बार फिर पूंजीवाद का विकल्प खोजने के लिए उत्सुक लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचना आरम्भ कर दिया, जिसमें विभिन्न अनुशासनों के विद्वान सम्मिलित हुए, जिन्होने मार्क्स के कुछ ऐसे पहलुओं का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से सार–संक्षिप्त विवेचन इस अध्याय में किया जिसके कारण लेखक ने वर्तमान सदी में मार्क्सवादी विमर्श को समझने में एक सफल योगदान दिया।

इस पुस्तक के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वर्तमान में भी समाजशास्त्र की मुख्यधारा का एक प्रमुख स्रोत मार्क्सवादी दृष्टि भी है। मार्क्स की वैचारिक दृष्टि के आधार पर अनेक आंदोलन और क्रांतियां चल रही हैं। मार्क्सवादी विचारक आज भी नवीन घटनाओं, परिवर्तनकारी परिस्थितियों, नव–सामाजिक आन्दोलनों आदि को मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य से देखने समझने का प्रयास करते हैं। अतः यह कहना सही है कि कार्ल मार्क्स के विचारों की निंदा की जा सकती है या उनकी प्रशंसा की जा सकती है परन्तु उन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

सामाजिक विचारक एवं विचारधारा – कार्ल मार्क्स को समर्पित लेखक का यह योगदान सराहनीय है। पुस्तक की भाषा सरल है तथा लम्बी सन्दर्भ सूची मार्क्स सम्बन्धित अध्ययनों के लिए सहायक है। उन्होने आरेखों का प्रयोग कर इसे अधिक सरल बनाने का प्रयास किया है।

श्रद्धांजली

योगेश अटल (1937–2018): एक बौद्धिक यात्रा

अरुण चतुर्वेदी

13 अप्रैल 2018 को प्रोफेसर योगेश अटल के निधन का समाचार, सही रूप में यादों में खो जाने का समय था। मेरी अपनी यादों में अटल 1965 से लेकर अपने अंतिम समय तक बने रहे। मेरे पिता नन्द चतुर्वेदी, जिन्हें वे नन्दबाबू कहते थे, के कारण हमारा पारिवारिक सम्पर्क 1950 से था, जब अटल 'जागृत साहित्य समिति' संस्था से जुड़े थे और लगातार साहित्यिक और राजनीतिक सम्पर्कों में रहे, जिनमें जयप्रकाश नारायण और यशपाल, दोनों ही सम्मिलित रहे। मुझे अच्छी तरह से याद है कि अटल, मेरी पहली दिल्ली यात्रा के निदेशक और संरक्षक थे, क्योंकि नन्दबाबू ने उन्हें लिखा था, कि अरुण पहली बार दिल्ली आ रहा है। अटल साहब से मिलने का क्रम कभी रूका ही नहीं। चाहे अलवर हो, जयपुर हो, उदयपुर हो या उज्जैन, जहां अटल मानद प्रोफेसर रहे, उनकी मुस्कान, गरमाहट और बड़प्पन हमेशा याद रहने वाली सम्पदा है।

अटल ने बहुत लिखा है और लम्बे समय तक लिखा है, अपने अन्तिम दिनों तक। अटल की पुस्तकों की सूची लम्बी है और आकर्षित इसलिए करती है कि उन्होंने विभिन्न विषयों पर अधिकारपूर्ण तरीके से लिखा और कई बार अपनी पैनी दृष्टि का परिचय ही नहीं दिया वरन् विचारक्रम के बदलने के संकेत भी दिए। उनकी पुस्तकों पर बातचीत गलत नहीं है। उनकी पुस्तक इंडियन सोश्योलॉजी फ्राम वेयर टू वेयरः फुटनोट टू द हिस्ट्री ऑफ द डिसिप्लिन (2003) उनके लम्बे शोध और अध्यापन का परिणाम रही है। उन्हें शोध प्रशासन का अनुभव भी था। यह अध्ययन भारत में समाजशास्त्र के विकास और उसकी दृष्टि पर विचारपूर्ण लेखन है। अटल ने यहां एशियाई समाज विज्ञान की दृष्टि से भी बात की है, जिसे विकसित करने का उन्हें अनूठा अवसर प्राप्त हुआ था।

अटल की एक अन्य पुस्तक द पावर्टी क्वेस्चनः सर्च फार सोल्यूशन (2002) मूलतः गरीबी की समाप्ति के लिए किए गए प्रयासों का आकलन है और यह स्वीकृति भी कि इन प्रयासों के बावजूद देशों में गरीबी बनी हुई है, चाहे वे विकास के किसी भी स्तर पर क्यों न हों। यह पुस्तक विश्व सामाजिक विकास सम्मेलन के समय तैयार की गई सामग्री पर आधारित थी, जिसमें गरीबी का बहुआयामी आकलन किया गया है।

उनकी पुस्तक एनटरिंग दी ग्लोबल विलेजः एसेज ऑन द सोश्योलॉजी ऑफ कम्यूनिकेशन (2008) अटल के प्रिय और नए विकसित हो रहे अध्ययन क्षेत्र पर आधारित पुस्तक थी। यह उनके लेखों का संकलन है, जो उन्होंने विभिन्न समूहों के लिए लिखे थे। यहां निरन्तर चलने वाली जनसंचार क्रान्ति का समाजशास्त्रीय विवेचन है और वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण और साथ ही साथ राष्ट्र निर्माण की प्रक्रियाओं का भारतीय और एशियाई देशों पर प्रभाव का आकलन भी। अटल का तर्क है कि विश्व ग्राम बनने का अर्थ यह नहीं है कि विभिन्न संस्कृतियों की पहचानों का क्षरण हो गया है। विश्व ग्राम केवल उन्हीं संदर्भों का उल्लेख नहीं है, जहां राष्ट्र और संस्कृतियां एक दूसरे के नज़दीक आई हैं, वरन् इससे सांस्कृतिक बहुलवाद की प्रक्रिया को भी अधिक बल मिला है।

चेंजिंग इंडियन सोसायटी (2006) भारतीय समाज के बदलते हुए स्वरूप का आकड़ों और आनुभाविक अध्ययनों का बिना शब्दजाल का प्रस्तुतीकरण है। उन्होंने भारतीय समाज को सांस्कृतिक बहुलवाद के संदर्भ में देखा है, जहां विभिन्न नस्लीय समूह हैं, धर्म हैं, भाषाएं हैं, किन्तु ये सब एकता के सूत्र में बंधे हैं।

वे ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों को एकता के सूत्र में बांधते हैं, उनसे परिचय भी करवाते हैं और भारतीय समाज की विभिन्न संस्थाओं का मूल्यांकन भी करते हैं।

अटल की लिखी भिन्न विषयों से सम्बन्धित पुस्तकों की चर्चा ऑन एड्यूकेशन एण्ड डवलपमेन्टः ऐसेज ऑन सोश्योलॉजी ऑफ एड्यूकेशन (2007) से शुरु की जा सकती है। यह पुस्तक शिक्षा और विकास के प्रश्न का समाज विज्ञान के दृष्टिकोण से विश्लेषण करती है। यों भी शिक्षा और विकास एक जटिल प्रश्न है। शिक्षा का अर्थ वे व्यक्तियों का नई गत्यात्मकता के साथ अनुकूलन के तरीके के रूप में स्वीकारते हैं, न कि निराशा और असन्तोष में डूबने के माध्यम के रूप में। वे शिक्षा को व्यापक समाज व्यवस्था की उपव्यवस्था मानते हैं। वे नई पीढ़ी के लिए, जिनका अनिश्चित भविष्य है, ऐसे प्रशिक्षण की सिफारिश करते हैं, जो दक्षता को भूलने व फिर से सीखने की क्षमताओं का विकास कर सके। वे शिक्षा के विकास के लिए नई रणनीतियों को विकसित करने की बात बार–बार कहते हैं।

भारतीय राजनीति पर विचार के क्रम में अटल की दो पुस्तकों का उल्लेख अवश्य ही होना चाहिए। पहली, राइट टर्न इन इंडियन पॉलिटीः मोदी ऑन बीजेपी'ज़ चेरियट (2015) जो भारतीय राजनीति के आधारों को समझने के लिए उनकी व्याख्या है। अटल अपने आरम्भिक दिनों में समाजवादी तथा उदारवादी रुझानों के लिए जाने जाते रहे। इस बदलाव की व्याख्या के क्रम में उन्होंने राजनीति में हो रहे लगातार बदलावों को समझने की प्रक्रिया का हिस्सा माना और वांछित परिणामों के अभाव में विभिन्न विकल्पों की चर्चा का माध्यम भी। यह बात अटल ने एक बार अपने मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन की भेंट में कही, जो व्यापक संदर्भों को समझने के उनके विश्लेषण का परिणाम अधिक लगता है। इसी दृष्टि से उनकी एक अन्य पुस्तक मैन्डेट फॉर पॉलिटिकल ट्रैनज़िशनः री इमर्जेन्स ऑफ वाजपेयी (2000) का उल्लेख भी आवश्यक है।

सम्मान ग्रन्थों के सिलसिले में अटल और डी. सी. शाह द्वारा सम्पादित पुस्तक इक्सप्लॉरिंग द सोशॅल फ्रन्टियर (2007) का प्रसंग विशेष रूप से उठाना प्रासंगिक है। यह सम्मान ग्रन्थ राम सखा गौतम के लिए है, जिसमें विभिन्न समाज विज्ञानों से जुड़े गौतम के मित्रों, सहयोगियों और शिष्यों के आलेख हैं। इस पुस्तक में संस्मरण हैं और भारतीय समाज के विकास से जुड़ी चिन्ताएं और विश्लेषण हैं। यहां अटल का गौतम के लिए विस्तृत आत्मीय और दृष्टि सम्पन्न विश्लेषण है। वे गौतम को समाज विज्ञान संगठनकर्ता के रूप में मानते हैं, जिन्होंने दिल्ली से दूर उज्जैन जैसे एक नगर को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया और समाज विज्ञानों पर चर्चा का नया मंच दिया। अटल लम्बे समय तक यहां मानद आचार्य रहे और यहां संपन्न होने वाली वैचारिक गतिविधियों, व्याख्यानों और गोष्ठियों के मुख्य आकर्षण रहे।

अटल को सम्मान देने के एक और अनूठे तरीके के उल्लेख का लालच छोड़ पाना कठिन है। अटल को जिन ख्यातनाम समाजशास्त्रियों ने दीक्षा दी, उनमें सबसे पहला नाम श्यामाचरण दुबे का है। दुबे हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, आकर्षक व्यक्तित्व के धनी, जिनका स्पष्ट प्रभाव अटल की जीवनशैली पर था। वे अटल को योगेश कहते थे। दुबे से उनके संबंध जीवन पर्यन्त रहे और दुबे की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी लीला दुबे से उनका लगाव निरन्तर बना रहा। दुबे से जुड़े ग्रन्थ, जिसका सम्पादन लीला दुबे ने किया था, उसमें सबसे मार्मिक लेखन तो अटल का था। अपने अध्यापक, अपने शिल्पी की इतनी यादें, गुरु–शिष्य परम्परा के नए आयामों को स्पष्ट करती हैं। सम्बन्धों की इन गहराईयों को देखने का अवसर मुझे लीला दुबे के आवास पर अपने पिता नन्दबाबू के साथ मिला, जो अटल के व्यक्तित्व का नया आयाम था। इसी क्रम में बी. आर. चौहान का जिक्र भी किया जाना आवश्यक है। चौहान ने अटल को उदयपुर के महाराणा भोपाल कॉलेज में पढ़ाया। चौहान राजस्थान में समाजशास्त्र के पहले आचार्य थे और क्रिकेट के शानदार खिलाड़ी और रणनीतिकार। चौहान समाजशास्त्र की परम्पराओं में अनुसंधान के लिए फील्ड की गहरी पकड़ और निरन्तर आग्रह के लिए

जाने जाते थे। वे कुछ वर्ष दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय में भी रहे और दक्षिण एशिया को समझने की अपनी दृष्टि की बात करते रहे। अटल को फील्ड में जाने का आरम्भिक प्रशिक्षण तो चौहान ने ही दिया। अपने आरम्भिक गुरू को याद करने के लिए अटल ने उदयपुर में अखिल भारतीय समाजशास्त्र परिषद् 2005 का आयोजन किया। अटल इस आयोजन की हर प्रकार की चिन्ता में व्यस्त रहे और इस शानदार आयोजन को उदयपुर और उदयपुर से बाहर लम्बे समय तक याद किया जाता रहा। चौहान की पुस्तक इंडियन विलेज रीविजिटेडः रानावतों की सादड़ी 1955–2005, उनके देहान्त के बाद प्रकाशित हुई। यह भारत में ग्रामीण अध्ययनों के शुरुआती दौर का अध्ययन था। रानावतों की सादड़ी का नए संदर्भों का अध्ययन, इस गांव में हुए नए बदलावों का आकलन, भारतीय गांवों की संरचना और बदलावों को समझने का प्रामाणिक अध्ययन है। इस अध्ययन का सम्पादन अटल ने किया, यही नहीं, चौहान के समाजशास्त्र को योगदान का आकलन भी। चौहान के साथ उनके सम्बन्धों की गरमाहट हमेशा बनी रही, जिसका अनुभव मुझे हमेशा होता रहा।

अटल के लेखन पर फिर से लौटा जाए, क्योंकि यहां उनमें अभूतपूर्व क्षमताएं हैं। अटल ने हिन्दी में जानबूझकर लिखा और बहुत स्तरीय लिखा। समाजशास्त्र की पुस्तक समाजशास्त्र की समझ (2014) समाज को समझने के लिए तथ्यात्मक आधार पर वर्तमान की समझ और भविष्य की दिशाओं को तय करने में मदद करती है। वे विषय की सतही समझ के विरुद्ध थे और हिन्दी में स्तरीय शोध और अध्ययन सामग्री की तैयारी के लिए कटिबद्ध। यह ग्रन्थ उसी श्रृंखला में है, जहां भारत के ही उदाहरण और भारतीय व्याख्याएं दोनों महत्वपूर्ण हैं। अटल की एक और हिन्दी पुस्तक भारतीय समाजः बदलता परिवेश (2003) उनके धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान और हिन्दू में प्रकाशित लेखों का संग्रह है, जहां वे भारत में हो रहे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलावों को पैनी दृष्टि से ही नहीं देखते वरन समाज पर उनके प्रभावों की शास्त्रीय व्याख्या भी करते हैं। पुस्तक का आमुख विवेक मिश्र ने लिखा है, जो उनसे आयु में छोटे हैं और उन्हें यह अवसर देना अटल के लिए ही सम्भव था। हिन्दी में लिखी अटल की पुस्तक दौलत दरबार (1995), जिसका बाद में उन्होंने अंग्रेजी अनुवाद भी किया, अपने पिता, जिन्हें यह शहर दौलत दरबार कह कर सम्बोधित करता था, की जीवनी है। अटल के पिता स्टेशन मास्टर थे। उनकी जीवनी को अटल ने समाजशास्त्रीय परम्परा के अध्ययन के तहत् लिखा है, अपने पिता का यथार्थवादी अध्ययन और सटीक मूल्यांकन। अटल यह कहते थे कि नन्द बाबू उनकी इस किताब का आकलन करें और रिव्यू प्रकाशित हो, किन्तु मेरे पिता के परम्परागत मन और दृष्टि ने अटल के इस कार्य को नहीं स्वीकारा। व्यक्तिगत तौर पर मेरा यह मानना रहा है कि इस अध्ययन में अटल ने जिस साफगोई का परिचय दिया और विषय के मानकों को स्थापित किया, वह प्रशसंनीय है।

अटल ने हिन्दी कविता भी की। उनके कई संग्रह प्रकाशित हुए, जिन्हें देखने का अवसर मुझे अपने पिता के घर हुआ। 2005 में अटल ने मुझे भी वे संग्रह भेंट में दिए। उनके एक संग्रह का उल्लेख रुका हूं, झुका नहीं (2011) करना अच्छा लग रहा है। अटल का स्वर उनका पीढ़ी के सरोकारों, चिन्ताओं और निश्चयों को बार–बार दोहराता है। अटल का साहित्य के प्रति अनुराग लगातार बना रहा। यह अनुराग उनकी प्रेरणा और ऊर्जा का स्त्रोत तो रहा ही है।

योगेश अटल का अध्यापन और समाज विज्ञान शोध प्रशासक का औपचारिक कार्यकाल तीस वर्ष से भी अधिक का रहा है, जिसका आरम्भ पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में सामाजिक मानवशास्त्र के सहायक आचार्य पद पर नियुक्ति से हुआ। वहां से आगरा के सोशॅल साइन्स इन्स्टिट्यूट, आई आई टी, दिल्ली, भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद् में शोध निदेशक और फिर 23 वर्षों तक यूनेस्को में समाज विज्ञान शोध परियोजना के निदेशक के रूप में जकार्ता, बैंकाक और पेरिस का कार्यकाल रहा। यूनेस्को से लौटने के बाद अटल पूना के सुप्रसिद्ध संस्थान और बाद में मध्यप्रदेश सामाजिक शोध

संस्थान, उज्जैन से जुड़े रहे। हम अपने लिए अटल के भारतीय समाज विज्ञानों को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर स्थापित करने के लिए याद करना चाहते हैं। यहां अटल की भूमिका समाज विज्ञानों के एशियाई स्वरूप को विकसित करने, उसके अध्ययन के लिए मसविदा बनाने, उसके सरोकारों में महिला, विकास, आर्थिक विषमताओं और वंचनाओं से जुड़े प्रश्नों पर प्रतिवेदन लेखन और गोष्ठियों में मुख्य रूप से थी। अटल के अन्तर्राष्ट्रीय समाज विज्ञान सम्पर्क, उनकी शोध दृष्टि और विचारों को आगे बढ़ाने की क्षमता से अत्यधिक प्रभावित थे। यहां यह उल्लेख करना होगा कि उनका सम्पर्क विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों को निर्धारित करने में और शोध को प्रासंगिक और तथ्यपूर्ण बनाने में तो हमेशा रहा, किन्तु अध्यापन की दृष्टि सें पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ का उनका कार्यकाल एक वर्ष का ही रहा, अन्यथा वे विश्वविद्यालयों की राजनीति के दूर के ही दर्शक रहे, जो उनका नहीं अपितु विश्वविद्यालयों का ही नुकसान रहा।

अटल एक शानदार अध्यापक रहे, जिनकी कई यादों का उल्लेख उनके शिष्य सुरेन्द्र के. गुप्ता ने अपनी पुस्तक इमर्जिंग सोशॅल साइन्स कन्सर्स (2004) में किया है। यह ग्रन्थ अटल के सम्मान में प्रकाशित है। गुप्ता के अनुसार, अटल ने सामाजिक मानवशास्त्र में स्नातकोत्तर कक्षाओं का उत्तरदायित्व आते ही सम्भाल लिया। अपने अथक श्रम और छात्रों के साथ आत्मीयता के कारण अटल न केवल लोकप्रिय रहे, वरन् चण्डीगढ़ छोड़ने के बाद वे अपने लम्बे पत्रों के द्वारा छात्रों का मार्गदर्शन भी करते रहे। गुप्ता यह याद करने से भी नहीं चूकते कि कैसे अटल ने हिमाचल प्रदेश में आ रही फील्ड की बाधाओं को अपने संवादों और वार्ताशैली से दूर किया और शोध क्षेत्र में उत्पन्न तनावों को दूर किया। अटल द्वारा अपने छात्रों की चिन्ताओं को दूर करने के भी अनेक प्रसंग हैं, जिन्हें गुप्ता बार–बार याद करते हैं। यों भी अटल एक शानदार गुरु–शिष्य परम्परा के भारतीय संस्करण तो थे ही।

अटल को अमेरिकी बायोग्राफिकल इन्स्टिट्यूट ने वर्ष 1990 में वर्ष के श्रेष्ठ समाज–विज्ञानवेत्ता का सम्मान, उनके एशियाई समाज विज्ञानों में योगदान के लिए दिया। इसी सम्मान के लिए वर्ष 2014 में उन्हें फिर नामित किया गया। कोरिया सरकार और समाज विज्ञानों की एशियाई परिषद् ने उनके एशियाई समाज विज्ञानों में योगदान के लिए उन्हें सम्मानित किया। अटल की यादों में जो सम्मान लगातार बसा रहा, वह महाराणा मेवाड़ सम्मान (1993) था। उदयपुर उनकी स्मृति में हमेशा रहा और इस सम्मान को उन्होंने उसी स्नेह का प्रतिफल माना। अटल की यात्रा उदयपुर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय ऊंचाईयों तक रही।

अटल के साथ जुड़ी अपनी, अपने पिता नन्दबाबू और परिवार की तथा हम सबकी यादों का सिलसिला, उनकी स्वयं की कविता की इन पंक्तियों के साथ किया जा सकता है–

चुभाकर कृतघ्नता की कटार मेरे वक्ष में
वे सब चले गए हैं, अपने-अपने कक्ष में
मैं उनकी अनुकम्पाओं का अहसान बन्द हूं
चुपचाप छात्रों को सहलाता कोठरी में बंद हूं
उन्हें जो कुछ लेना था, मुझसे ले गए
उन्हें जो कुछ देना था, मुझको, दे गए।

(19 फरवरी 2010)

प्रोफेसर अरुण चतुर्वेदी, पानेरी उपवन, बेदला रोड, उदयपुर

Guidelines For Contributors

Rajasthan Journal of Sociology invites original articles in English or Hindi. The article should be limited between 6000- 8000 words. The article must be typed on one side of paper in double space with wide margins on all four sides. An abstract and key words must be inserted at the top of the article. In the first stage only hard copy should be sent. Only after getting intimation send soft copy. Please also send your Name, Postal address, Mobile number, Email Id and a small biographical note on separate paper along with the article. please mention Life Membership Number of the RSA which is mandatory. In the absence of the required information the article will be returned back.

The articles on Rajasthan studies will be preferred. After acceptance the contributors will be required to send the soft copy as an email attachment processed in MS Word document format (with body text in Arial font size 12 for English and Kriti Dev 010 size 16 for Hindi). Please follow ASA style of writing research papers. In text adopt author, date method of citation (Sharma, 2004) and use standardized formats. Bibliographic details of cited work should be listed under reference as (i) Books: name(s) of author(s), year of publication, title of the book (italicised), name of the publisher and place of publication; (ii) Paper in an edited book: name(s) of author(s), year of publication, title of the paper (within single inverted commas), the name(s) of the editor(s), title of the book (italics), pp., name of the publisher, place of the publication; (iii) Article: name(s) of author(s), year of publication, title of the article (within single inverted commas), Name of the Journal (italics), Volume, number, pp.

Editorial Board has a right to reject or to get revised an article sent for publication. Before publication the articles are sent to reviewers. The decision of publication is based on such reviews.

This journal is an annual publication. It is published in October every year. The articles for each issue must reach to the Editor by 15 th June positively.

The books and articles should be sent to the Editor, Dr. Naresh Kumar Bhargava, 91, Gokul Nagar, Near Bohra Ganesh Temple, Udaipur-313001 (Rajasthan)

E-mail : naresh.bhargava@gmail.com.

ASA Style: In-Text Citations

ASA style follows the author-date format used by The Chicago Manual of Style for in-text citations. After a quotation or reference, add parentheses containing the author's last name and the year of publication of the work being cited. The page number may also be noted following a colon.

Example: "The quick brown fox jumped over the lazy dog" (Seuss 2007:7).

If you use more than one work by the same author published in the same year, use the letters a, b, etc., after the year.

Example: "The quick brown fox jumped over the lazy dog" (Seuss 2007a:7).

If a reference list includes more than one author with the same last name, add the first initials to in-text citations.

Example: "The quick brown fox jumped over the lazy dog" (D. Seuss 2007:7).

If two or more authors wrote the work, see the "Basic ASA Citations" table below.

If using the author's name in your text, do not include it in the parentheses.

Example: In his scholarly study, Dr. Seuss (2007) observed that "the quick brown fox jumped over the lazy dog."

If no author name is available, use the first few words of the reference list entry (usually the title) and the year. Use quotation marks around titles of articles or web pages and italicize titles of books, periodicals, or reports. Treat in-text citations to legal materials such as court cases, statutes, and legislation the same as works with no author.

Example: "The quick brown fox jumped over the lazy dog" (Fox in Socks 2007:12).

For additional examples, see ASA's Style Guide (2010).

Published by Tribhu Nath Dubey , Secretary on behalf of Rajasthan Sociological Association

Printed at : www.choudharyoffset.com